भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है। ससार के अन्य प्राचीन देशो—जैसे यूनान, ईरान आदि मे भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते है, जिनको वहाँ का पुराण कहा जाता है, पर वे प्राय वीर लोगो के अद्भुत साहस तथा भयकर सकटो का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने की कथायें-मात्र है। पर भारतीय पुराणो का मुख्य उद्देश्य साधारण जन-समाज मे धार्मिक भावो का सचार करना है। यद्यपि उनमे भी सत्य, अर्द्ध सत्य और काल्पनिक कथायें है, रूपक, अलकार और अतिशयोक्तियो का भी बाहुल्य है, पर लेखको का लक्ष्य लोगो को सदैव धर्म प्रेरणा देने का ही रहा है। यह ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ अनेक स्थानो पर सीमा को पार कर जाती है, उन्होने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर विरोधी बातें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यो के हृदय मे धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सासारिक सुखो के लालच से ही सही, वे धर्माचरण को अपनावें। उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन करेगा उसकी रक्षा भी धर्म करेगा। ससार मे जितनी उन्नति, उत्कर्ष, कल्याण है वह सब धर्म पर ही आधारित है। इसलिए लोगो को किसी भी प्रकार से धर्म की प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा।

जन-साधारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणो के मुख्य विषय सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, मन्वन्तर और युगो का वर्णन, देव, ऋषि तथा राजाओ के वशो का वर्णन कहा गया है। पर इनका विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भजन, देवोपासना को भी उनमे सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, उपाख्यान, गाथामें एक यही दृष्टि-बिन्दु रक्खा है कि लोगो को धर्म के प्रति आकर्षण हो और वे अपनी बुद्धि, शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अशो मे धार्मिकता की तरफ अग्रसर हों। हो सकता है कि जिन लोगो ने अपने धर्म-विषयक विचार बहुत ऊँचे तथा तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले बना रक्खे हैं,

उनको पुराणो के धर्म सम्बन्धी विवेचन से निराशा हो उनमे त्रुटियाँ नजर आवें पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियो के लिये उत्तम मध्यम धर्माचरण की आवश्यकता को व्यवहारिक समझते हैं वे पुराणो के मत को ठीक ही बतलावेंगे एक धर्मशास्त्र मे कहा गया है—

अप्सु देवता बालानाम दिव देवता मनीषिणाम् ।

बालको का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनता का देवता गङ्गा यमुना आदि तीर्थ स्थान हैं। विद्वानो के देवता भगवान की दवी शक्तियाँ जसे—सूर्य इन्द्र रुद्र विष्णु आदि हैं और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनका देवता केवल आत्मा ही होता है।

समाज मे सभी श्र णियो के व्यक्ति पाये जाते हैं। उसमे वेद और उपनिषदो के अध्यात्म ज्ञान को समझने वाले आत्मज्ञानी और योगी भी होते है यज्ञ और अन्य कर्मकाण्डो मे सलग्न पण्डितजन भी हाते हैं और केवल जीवन निर्वाह के कार्यों मे ही लगे रहने वाले व्यापारी किसान मजदूर आदि भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्र णियाँ समाज मे अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मानी जाती है पर अधिकता सदैव तीसरी श्र णी की ही होती है। तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन-साधारणके लिये धार्मिक नतिक चारित्रिक नियमो की जानकारी कराने और उन पर आचरण कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगो को धार्मिक शिक्षा देने के साधन हैं। इन लोगो को यदि उपनिषदो के निराकार ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बडे कर्मकाण्ड को शिक्षा दी जाय तो वे उसे क्या समझ सकते है और कहाँ तक उस पर आचरण कर सकते हैं ? पर पुराणो की सरल कथाओं और रोचक दृष्टान्तो को वे भी कौतूहलपूर्वक सुनते रहते हैं और अन्त मे इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म पुण्य सत्कर्म करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक मे सुख मिलता है इसलिये जहाँ तक बन पडे मनुष्य को वसा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल मे पुराणो की कथा बाँचने वाले पुराणी और 'व्यासों' ने उनमे बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण हो सकते हैं।

अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये है। राज्यो मे, शासन-सस्था मे जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगो के रहन-सहन और विचारो मे परिवर्तन हुये और कथा वाचको ने उनके अनुकूल बातें बढादी। भिन्न-भिन्न प्रदेशो की परिस्थितियो के प्रभाव से जिन पुराणो का जहाँ अधिक प्रचार था उनमे वहाँ की बातो को विशेष स्थान दे दिया गया। साम्प्रदायिकता के बढने पर उनके आचार्यों और विद्वानो ने अपने सिद्धान्तो की पुष्टि करने वाले उपाख्यान और विवरण पुराणो मे सम्मिलित कर दिये। अन्तिम पर एक बडा कारण कथावाचको की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे उन्होने व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, दान के प्रकरणो को खूब बढाया और अधिक से अधिक दान देने की महिमा का प्रतिपादन किया। इस श्रेणी की मिलावट क्रमश इतनी अधिक बढ गई और विभिन्न प्रकार के दानो के परिमाण तथा उनके पुण्य फल को इतना बढा-चढा कर कहा गया कि श्रोताओ को उससे विरक्ति होने लगी। पुराणो मे जिन ब्रह्माडदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-सागर दान, रत्नमयी धेनुदान आदि का जो वर्णन किया गया उनकी सामग्री की लागत कई लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान मे सोने की मूर्तियो और रत्नो का विधान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानो के वर्णनो को पढकर कभी-कभी तो ऐसा जान पडता है जैसे कोई आधुनिक काल का बढिया विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफो का पुल बाँध रहा हो।"

इस मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान समय मे अधिकाश शिक्षित व्यक्तियो ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पो का खजाना मान लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणो को और उनकी तमाम बातो को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह अवस्था समाज तथा धर्म के लिये अवाछनीय ही कही जायगी। इसके फल-स्वरूप हम उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वचित रह जायेंगे जो पुराणों मे पर्याप्त परिमाण मे सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पहलुओ पर विचार करके एक पुराणो के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार व्यक्त किये है—

पुराणों में इन अनेक गुणों के होते हुये भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची लगन थी पुराणों को सर्वथा त्याज्य माना है उनकी भरपेट निन्दा की है मार्मिक दुष्ट स्थलों को तर्क के चाकू से चीरफाड़ कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। हम मानते हैं कि उन्होंने यह कार्य किसी दुराग्रह वश नहीं किया है वरन् त्याज्य दुष्टः प्रियोऽप्यासीदंगुली वोरगक्षता (अर्थात् सांप की काटी हुई उंगुली की तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणों को सर्वथा बहिष्कृत बतलाया है। उनकी धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के लायक नहीं रह गये हैं सामान्य जनता इन में वर्णित आदर्शों पर चलकर सुखी नहीं हो सकेगी अपना वास्तविक कर्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश में सत्य है, पर यदि औषधि करने से सर्वथा विष उतर जाय तो अँगुली को काटकर फेंक देना समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव और एक विशेष परिस्थिति में अंगुली का काट देना भी एक अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस अँगुली ने इतने जीवन तक अनेक दुखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासंभव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी वंश परम्परागत पवित्र भावनायें उनके साथ जुड़ी हुई हैं, इन सब बातों को देखते हुये उनको एक दम बहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोड़ी सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र बना देती है। नितान्त अनर्गल कथाओं तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों से अलग करके आप उनकी उपादेयता से इनकार नहीं कर सकते। सुनारों की दुकानों की मिट्टी को बटोरकर धोने वालों को भी जीवन-यापन के लिये पर्याप्त सोना-चाँदी मिल जाता है, फिर पुराण तो अनेक रत्नों के भण्डार हैं, दृष्टि फैलाइये विवेक के बल से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित प्रसङ्गों को जिनमें निन्दा कुत्सा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है स्वच्छ कीजिये सहानुभूति एवं विश्वास का सम्बल रखिये उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणों की बहुमूल्य सामग्री को

परिमार्जित संस्करण के रूप मे प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अंशो के अतिरिक्त पुराणो के अनावश्यक रूप से बडे हो जाने का एक कारण यह भी है कि कितने ही विषयो की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो पाठक को खटकती है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारो वर्णों और चारो आश्रमो के आचार-विचार, पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब मे एक से ही दिये गये हैं। कही-कही तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के अध्याय एक दूसरे मिलते हुये है। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते शब्दो मे पढ़ने से पाठक को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी पढा था, फिर ज्यो का त्यो कैसे आ गया ? ऐसे विषयो को एक जगह पूरे रूप में दिया जाय तो यह पुनरुक्ति दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह पुराणो में बहुसख्यक जीवनोपयोगी और उच्चकोटि के धार्मिक विषयो की शिक्षा दी गई है, पर इस मिलावट और नकलखोरी, की भीडभाड मे वे खो जाते हैं और सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नही पडती। इसलिए जैसा उपर्युक्त उद्धरण मे सकेत किया गया है यदि पुराणो मे पक्षपात या स्वार्थवश जो अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनावश्यक रूप से बढाये गये अंशो को सूक्ष्म करके पुराणो को प्रकाशित और प्रचारित किया जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय सस्कृति की बहुत बड़ी सेवा होगी।

'वायु-पुराण' सम्बन्धी विवाद—

पौराणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' मे वर्णित पाठ्य-सामग्री पर विचार करने से पूर्व हमको अनेक विद्वानो द्वारा उठाई इस शका पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महा-पुराणो' मे है या नही ? इस सम्बन्ध मे आधुनिक विद्वानो में भी मतभेद पाया जाता है। कुछ आलोचको ने इसे 'शिव महापुराण' मे 'वायवीय सहिता' नामक एक खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि अन्य विद्वानो ने दोनो पुराणो की विषय सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान् अन्तर के आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

मे हमने विविध पुराणो के अन्तगत पाई जाने वाली १८ पुराणों की सूचियों का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि 'वायु-पुराण' को अधिकाश ने १८ पुराणो मे ही माना है। पाठको की जानकारी के लिये हम उन सूचियो को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बडी है। उसमे प्रत्येक पुराण के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पराण के मुख्य-मुख्य विषयो की सूची के साथ उनकी दान करने की विधि भी बतलाई है। उसमे दिये गये अठारह पुराणो की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपराण १ ० श्लोक (२) पद्मपुराण ५५० (३) विष्णु-पराण २३ (४) वायु पुराण २४ (५) भागवत पुराण १८० (६) नारदपुराण २५ (७) मार्कण्डेय पुराण ९ (८) अग्निपुराण १२ (९) भविष्यपुराण १४ (१) ब्रह्मववत पुराण १८ ० (११) लिङ्गपुराण ११० (१२) वाराह पुराण २४ ० (१३) स्कन्द पुराण ८१ (१४) वामन पुराण १० (१५) कूर्म पुराण १७०० (१६) मत्स्य पुराण १४ (१७) गरुड पराण १९ ०० (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२ ।

(२) मत्स्य पुराण मे भी पुराण सूची काफी विस्तार से दी गई है। उसमे विभिन्न पुराणो के श्लोको की जो सख्या दी गई है वह कई स्थानों पर नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमें भी पराणों के दान की विधि सक्षेप मे दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३ (२) पद्मपुराण ५५ (३) वष्णव [विष्णु] पुराण २३ (४) वायवीय पुराण २४ (५) भागवत पराण १८ (६) नारद पुराण २५ (७) मार्कण्डेय पुराण ९ ० (८) अग्निपराण १२ (९) भविष्य पुराण १४५ (१) ब्रह्मवैवर्तपुराण १८ (११) लिङ्ग पुराण ११ (१२) वाराह पुराण २४ (१३) स्कन्द पुराण ८१ (१४) वामन पुराण १ (१५) कूर्म पराण १८ (१६) मत्स्य पुराण १४ (१७) गरुड पुराण १९ (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२ ।

(३) स्वय वायु पुराण के अध्याय १०४ मे पुराण-सूची दी गई है। पर उसमे अठारह पुराणो का उल्लेख करने पर भी वास्तव मे १६ पुराणो के ही नाम मिलते है। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी तरह लिखने से रह गया है। इसकी क्रम सख्या भी अन्य पुराणो से बहुत भिन्न है—

(१) मत्स्य पुराण १४०००,(२)भविष्य पुराण १४५००, (३)मार्कण्डेय पुराण ६०००, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००, (८) वामनपुराण १००००, (९) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण २३००० (११) नारदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड पुराण १९०००, (१३) पद्म पुराण ५५०००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर (वाराह) पुराण २४०००, (१६) स्कन्द पुराण ८१०००।

इस सूची मे विष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणो के नाम नहीं हैं। लेखक की भूल मानकर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से दो पुराणो का नाम रह गया है। तो भी इस सूची मे आदि पुराण को शामिल किया गया है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८ पुराणो मे से किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।

(४) अग्नि पुराण की सूची की क्रम-सख्या अन्य पुराणो से मिलती है, पर इसमे जो श्लोक सख्या दी है उसमे अन्य पुराणो से बहुत अधिक अन्तर है। पाठक स्वय मिलान करके देखें—

(१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००, (१४) वामनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १३०००, (१७) गरुड पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(५) वामन पुराण मे पुराण-सूची केवल एक श्लोक मे दे दी है और

वह भी बडे अद्भुत ढग से अन्यथा अठारह पुराणो का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना समव न था—

मद्वय भद्वय चव ब्रत्रय वचतुष्टय ।
अनापलिगकूस्कानि पुराणानि पृथक पृथक ॥

अर्थात् १८ पुराणो मे से दो के नाम म से आरम्भ होते है (मत्स्य और मार्कण्डेय) दो भ से आरम्भ होते है (भागवत और भविष्य) तीन ब्र से है (ब्रह्म ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त) चार व से है (वाराह वायु वामन और विष्णु) शेष सात पुराणो के प्रथम अक्षर इस प्रकार है—अ=अग्नि ना=नारद प=पद्म लि=लिङ्ग ग=गरुड कू=कूर्म स्क=स्कन्द ।

(६) विष्णु पुराण मे यह सूची सक्षेप मे दी गई है पर उसने क्रम—सख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

ब्राह्म पाद्म वष्णव च शव भागवत तथा ।
तथा न्यन्नारदीय च माकण्डेय च सप्तमम् ॥
आग्नेय मष्टम चव भविष्यन्नवम स्मृतम् ।
दशम चव ब्रह्मवत लङ्गमेकादश स्मृतम् ॥
वाराह द्वादश चव स्का द चात्र त्रयोदशम् ।
चतुदश वामन च कौम पचदश तथा ॥
मात्स्यच गारुड चव ब्रह्माड च तत परम ।
महापुराण न्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥

(वि पु ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानो का मत है कि विष्णु पुराण मे जो क्रम सख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है । इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अ तिम समय का रचित कहा जायगा ।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १३४ व अध्याय मे ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारो श्लोक ज्यो के त्यो उद्धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवा स्थान स्वय स्वीकृत किया है ।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड में १८ पुराणो की उपयु क्त सूची

को देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमे कहा गया है कि "१८ पुराणो मे से दस शैव, चार वैष्णव, दो ब्राह्म और दो अन्यो के हैं। शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और गरुड—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण अग्नि की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण है।"

पुराणो की इन विभिन्न सूचियो मे 'वायु-पुराण' को स्पष्टत' १८ पुराणो मे माना गया है और उसकी श्लोक सख्या २३ या २४ हजार बतलाई गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोको का ही मिलता है। 'मत्स्य पुराण' के मतानुसार इस पुराण मे 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसग मे अनेकानेक धर्म प्रसगो के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण तथा शिवपुराण के अन्त मे दी गई 'वायवीय सहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब कि वायवीय सहिता के अधिकाश मे वही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-दीक्षा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिग पूजा से महापापो का नाश, शैवावरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं, वायुपुराण मे पुराणो के लक्षणो के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग वर्णन, मन्वन्तरो का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओ के वशो आदि विषयो का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमे यह कहने मे कुछ भी सकोच नही कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और उसके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणो के तत्सम्बन्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसगत है और यदि उसकी रूपक तथा अलकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से की जाय तो उसमे कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तत्वो का पता लग सकता है। पुराणो की सबसे बडी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई है कि वे वेदो के गूढ तत्वो और रहस्यवादी वर्णनो को विशद व्याख्या के साथ रोचक कथाशैली मे उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

ही पुराणों की अपेक्षा उच्च—श्रेणी मे रखे जाने योग्य है।

वायुपुराण की तर्क संगतता —

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए वायुपुराण के आरम्भ मे उसे भी ब्रह्माजी वायुदेव व्यास जी सूत जी आदि का रचा हुआ कहा है पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है तो रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह पुराण अन्य ग्रंथो की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है। सृष्टि रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के प्रथम श्लोक में उन्होने स्पष्ट रूप से कह दिया है—

प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्याच पुनः प्रवृत्तिः ॥
तच्छास्त्र युक्तया स्वमतिप्रयुक्तात् समस्तमविक्लृत धी पुरितेभ्य ॥
विप्रा ऋषिभ्य समुदाहृतम् यथयातथ तच्छृणुतोच्यमानम् ॥

अर्थात् प्रकृति की मूल अवस्था मे कारणों की कैसी स्थिति रहती है तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है ये सब बातें हुए शास्त्र के मतानुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानो के लिये प्रकाशित कर रहे है। हे विप्रो! पूर्वकाल मे ऋषियो ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह रहा हूँ आप लोग ध्यान से सुनिये ॥

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओ के सम्बन्ध मे कोई लेखक यह तो कह नही सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर या गढ़ कर कह रहा हूँ। उनका तो कोई न कोई आधार ढूढना और बतलाना पड़ेगा। लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यो को अपनी विशेष शैली व अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठको या श्रोताओ के सम्मुख उपस्थित करे। इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नही लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न मान्नीय शास्त्रो और प्राचीन विद्वानो द्वारा रची गाथाओ आदि से एकत्रित की गई है। इस बात को प्रकट करके तथ्यो की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रो पर और वर्णनशैली तथा विवेचन प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है।

आगे जहाँ राजवशो का वर्णन आया है वहाँ भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुपङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय मे पाण्डवो की आगामी पीढियो का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

"राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेघदत्त हुआ। अश्वमेघदत्त से शत्रुओ के किलो को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द ! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। उसी के राज्य काल मे आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृपद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यो जनता की धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थो को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर 'वायु-पुराणकार' ने उस परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थो की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थो में से अधिकाश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, सस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढने से ऐसा भाव उत्पन्न नही होता। प्रकट मे उन्होने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियो का जो कुछ चित्रण किया है, उसे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था मे थे और उस समय वे मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नही। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

"उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतो के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीडा नही

होती थी। वे इच्छानुसार इधर उधर घूमते रहते थे। पृथ्वी से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले पदार्थों को खाते थे। उस समय मूल फल पुष्प का अभाव था पर उनको पृथ्वी के रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको धर्म-अधर्म का विचार न था कोई भेदभाव भी न था। वे सब आयु, रूप और अनुभूति में समान थे। उनमें किसी प्रकार का संघर्ष प्रतिद्वन्द्विता और क्रम का प्रश्न नहीं था। वे समुद्रों और पर्वतों के निकट रहा करते थे। उनका कोई स्थायी घर नहीं था। उस समय अधर्म करने वाले कोई नारकीय जीव न थे न कोई उद्भिज पदार्थ था। यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) नहीं करते थे तो भी स्थिर यौवन थे। वे जन्म और आकृति में समान थे मृत्यु भी साथ ही होती थी। उनके सब व्यवहार स्वाभाविक होते थे बुद्धि-पूर्वक नहीं। उनकी प्रवृत्ति शुभ और अशुभ कर्मों में नहीं होती थी क्योंकि उस समय शुभ और अशुभ का विभाजन था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी न संकर-दोष ही था। वे परस्पर अकाम और अनिच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। उनमें लाभ अलाभ मित्र अमित्र प्रिय-अप्रिय न थे वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे। एक दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा या स्वार्थ न था न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी।

यों कल्पना और भावुकता का संयोग करके इन प्राणियों को देवता और योगियों के समान बतलाया जा सकता है पर यदि प्रकृति के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो बुद्धि-तत्व का जिसके द्वारा मनुष्य वास्तव में मनुष्य बन सका है उनमें सर्वथा अभाव था और वे उसी अवस्था में रहते थे जिसमें इस समय छोटे पशुओं या कीड़े मकोड़ों को रहते देखते हैं। जीव-सृष्टि के आरम्भ में इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती।

त्रेतायुग का वर्णन करते हुये पुराणकार ने लिखा है कि 'उसमें स्थूल जल वृष्टि के आरम्भ हो जाने से वृक्ष उत्पन्न हो गये और उन्हीं से प्राणी अपना निर्वाह करने लगे। उन पेड़ों से एक प्रकार का रस या मधु निकलता था उसी को खाकर वे जीवित रहते थे। अब उनमें राग-द्वेष लोभ के भाव भी उत्पन्न होने लगे और उन्होंने जबर्दस्ती उन वृक्षों पर अधिकार जमाना आरम्भ किया। इससे अनेक स्थानों पर वे वृक्ष नष्ट हो गये और लोग भूख-प्यास का कष्ट पाने

लगे। अब उनको शीत और गर्मी से भी कष्ट होने लगा, इससे उन्होंने घर बनाने आरम्भ किये। वृक्ष की शाखायें जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और इधर-उधर फैली रहती हैं उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगो ने घर बनाये। वृक्ष-शाखाओ की तरह बनाये जाने के कारण ही उनका नाम 'शाला' पड गया। जब वृष्टि से नदी, नाले, गड्ढे भर गये तो पृथ्वी रसवती होकर शस्य-शालिनी हो गई। बिना जोते बोये चौदह प्रकारकी वनस्पतियाँ गाँवो के समीप और जङ्गलो मे उग आई। उन्ही का उपयोग करके उस समय के लोग निर्वाह करने लगे। पर जब उनमे भेदभाव और स्वार्थपरता का भाव बढा तो लोग फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पते भी तोड लेते थे। इससे वे सब वनस्पतियाँ भी क्रमश नष्ट हो गई और लोग फिर भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। तब लोगो ने प्रयत्न करके वनस्पतियो के बीजो का पता लगाया और स्वयम् उनको जोत-बोकर उत्पन्न करने लगे। फिर उनमे कर्म-विभाग भी होने लगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न वर्णो की स्थापना की गई।"

वैदिक तत्वो और पौराणिक उपाख्यानों का समन्वय—

पुराणो मे देवताओ, ऋषियो, राजाओ के सम्बन्ध मे जो घटनायें और कथानक दिए गये हैं, वे एक निष्पक्ष पाठक को बहुत ही अतिरंजित और अनेक बार असम्भव से ही प्रतीत होते है। इसका कारण अन्वेषण करने वाले विद्वानो ने यही बतलाया है कि पुराणकारो ने अलौकिक वैदिक तत्वो को रूपक तथा अलकार की शैली में ढालकर लौकिक कथाओ का रूप दे दिया है। देवासुर-सग्राम की कथायें इसका स्पष्ट प्रमाण है। इन्द्र और वृत्रासुर के सघर्ष को वेदो मे भी कुछ अशो मे घटनात्मक ढङ्ग से लिया है, पर उनके विभिन्न स्थलो का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका आशय सूर्य की शक्ति द्वारा बादलो से वर्षा कराने के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता। 'शतपथ ब्राह्मण' मे एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दो मे प्रकट कर दिया गया है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रु न नु पुरा युयुत्स ॥

अर्थात् हे इन्द्र ! तुम कभी किसी से भी नहीं लड़े तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। तुम्हारे युद्धों का जो वर्णन किया जाता है। वह सब माया बनावटी या काल्पनिक है। न आज कोई तुम्हारा शत्रु है और न पहले कोई तुम से लड़ा था।

पर पुराणकारों ने तो उसका वर्णन दो राजाओं के सांगोपांग युद्ध की तरह इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया कि वे सब वास्तविक व्यक्ति ही जान पड़ने लगे। यही बात महिषासुर और दुर्गा के संग्राम की है जिसका वर्णन सप्तशती मे बड़ी मनोमोहक लच्छेदार भाषा मे किया गया है। उसमे कहा गया है कि महिषासुर ने अत्यंत प्रबल होकर देवों को भगाकर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। फिर समस्त देवताओं की शक्ति को देवी के रूप मे प्रकट करके उसके द्वारा महिष वध कराया गया। पर वैदिक सूक्तो में 'महिष' को एक तम आवरण माना गया है जो आरम्भिक अवस्था मे सूर्य के तेज को रोके रहता है और जब केन्द्र मे सौर शक्ति पूर्ण रूपेण एकत्रित होकर परिधि की ओर बढ़ती है तो वह तम-आवरण या 'महिष' स्वयं ही नष्ट हो जाता है। ऋग्वेद मे कहा है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदपानती ।
व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥ [१।१८९।२]

अर्थात् सूर्य के भीतर से ज्योति या प्रकाश निकलता है वह प्रकाश इनके प्राण-अपान से प्रकट हुआ है। उसके निकलने से महिष [अन्धकार] नष्ट हो जाता है और सूर्य भगवान समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।

इसी प्रकार पुराणों मे पुरुरवा उर्वशी नहुष ययाति तुर्वश आदि राजाओं की बड़ी बड़ी विचित्र कथायें दी गई हैं और उन्ही को बाद के समस्त प्रमुख भारतीय राजवंशो का स्रोत बतलाया गया है। पर वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि ये सब आकाशीय पदार्थ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रो मे बार-बार इन सब के नाम आये हैं। पुराणो के लेखानुसार ययाति के पाँच पुत्र थे जिनके नाम यदु तुर्वसु द्रुह्यु अनु और पुरु थे। इन्ही से भारत के चन्द्रवंश यादव कौरव आदि चले हैं। इन सब नामो को ऋग्वेद के एक मन्त्र मे आकाशीय नक्षत्र बतलाया गया है—

यश्चिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यष्वनुषु पूरुषस्थ । [१।१०८।८]

अर्थात् 'जो इन्द्र और अग्नि यदु, तुर्वश, द्रुह्य, अनु और पुरु मे स्थित करते हैं ।'

इन्द्रो मायाभि पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्य शता दश । [६।४०।१८]

अर्थात् "इन्द्र माया से पुरु बन जाते हैं । उनके रथ मे सहस्रो अश्व जुते होते हैं ।"

"उत्त्वा तुर्वशायदु अस्नातारा शचीपति ।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् । (४-३०-१७)

अर्थात् "तुर्वश और यदु को शचीपति इन्द्र पार कर गया ।"

इस प्रकार के मिलते-जुलते प्रसग वेद-पुराणो मे अनगिनती मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि या तो पुराणकारो ने वेदो के ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी विवरणो को राजवशो का रूप दे दिया है अथवा उन्होने अपने राजवशो के वर्णन के लिये वैदिक नक्षत्रो की नामावली की नकल की है । जो कुछ भी हो विद्वानो की दृष्टि मे इसमे कोई दोष नही है । पुराण-रचना का उद्देश्य ही वेदो के गूढ तत्वो को कथा और दृष्टान्तो का सरल रूप प्रदान करके उसका साधारण जनता मे प्रचार करना है । इस सम्बन्ध मे वेदो और पुराणो के एक मननशील विद्वान ने लिखा है—

"कहा गया है कि जैसे ही अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये उनके मुखो से वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्वों का आविर्भाव हुआ । वेद निगम तथा पुराण आगम है । वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्व है । वह अति गूढ विवेचन के रूप मे सगृहीत होता है । महर्षियो ने उसे वैदिक सहिताओ के रूप में प्राप्त किया है । दूसरा वह ज्ञान है जो लोकव्यापी-जीवन से सम्बन्ध रखता है, जिसका उद्भव लोक-जीवन की महती व्याख्या से होता है । वही पुराण या आगम है । पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा गया है—'पुरा नव भवति ।' अर्थात् जो वाङ्मय एक ओर पुरा या पुरातन सृष्टि विद्या (वेदाविद्या) से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये-नये रूप मे जन्म लेने वाले लोक-जीवन से भी सम्बन्ध जोडे रहता है, वही पुराण या आगमशास्त्र है । भारतीय साहित्य मे पुराण वाङ्मय की विचित्र स्थिति

है। लोकतन्त्र और लोकजीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

वायु-पुराण मे योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और सभी श्रेणियो के मनुष्यो को उसकी प्रेरणा दी है। उसमे कहा गया है— जितनी तरह की तपस्याए व्रत नियम और यज्ञफल आदि है प्राणायाम का फल भी उनमे से किसी से कम नही है। सौ सम्वतसर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिंदु पान करने का जो फल होता है वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषो का नाश होता है धारणा से पापो का प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणो का नाश होता है।

आगे चलकर कहा है—' शान्ति प्रशान्ति दीप्ति और प्रसाद इन चारों को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का आशय है इस काल अथवा परकाल मे देहधारियो द्वारा स्वय किये हुए अथवा पिता माता द्वारा किंवा भाइयो द्वारा किये हुये भयकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते है जिससे इस लोक और परलोक मे हित के लिये लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियो का सयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियो की तरह चन्द्र सूर्य ग्रह, तारकादि और भूत भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते है। इन्द्रिय इन्द्रियार्थ मन और पंच-वायु जिससे प्रसन्न हो उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम धर्म हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल भय का निवारक है।

इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्व दिया है और यथा समय उसको व्यवहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्होने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता बहिरापन मूकत्व अन्धापन स्मृति-लोप, वृद्धता आदि अनेक प्रकार के रोग

उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म मे प्रवृत्त होने से होते है। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थो मे भी देखने में आती है, पर इस पुराण मे इन रोगो की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने मे नही आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषो की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषो को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीडित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे कष्ट न मिटे तो मस्तक मे धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग मे कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन मे किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश मे वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन मे और बहरापन हो तो कानो मे धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओ के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगो मे सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान मे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकडी की कील रखकर धीरे-धीरे खटखटावे। इससे उसकी सज्ञा लौट आती है। अगर साँप ने काट लिया हो तो हृदय और उदर मे धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने मे आ गया हो, तो हृदय मे विशल्या धारणा करे। मन मे पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार घडे तक से स्नान करते है। कण्ठ तक जल मे घुसकर मस्तक मे धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की दोनियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषो की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास मे भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषो की बात। योग मे शारीरिक क्रियाओ की अपेक्षा मानसिक भाव-

भावों का महत्व अधिक है इसलिये उसके दोषों की चिकित्सा भी मानसिक ढग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निस्सन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर संलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायों से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा भी मानसिक विकार बडे अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते है। शरीर के कष्टो को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमो को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है पर मनोविकारो मे ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियन्त्रण ही हट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध मे विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते हैं—

तत्व दृष्टि से योगियो के उपसर्गों (व्याधियों) पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना स्त्री प्रसग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा विद्यादान अग्निहोत्र हवियज्ञ आदि तपस्याए कपट धना जन स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओ मे योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति देवताओं का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या कवित्व शिल्प नैपुण्य सब भाषाओ का बोध विद्या का तत्वज्ञान सुनने योग्य शब्दो को सौ योजन दूर से भी सुन लेना यक्ष राक्षस गन्धर्व आदि का दिव्य दर्शन आदि योगियो के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओं मे देव दानव गन्धर्व ऋषि पितरों को देखने लगते हैं तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियो की आठ प्रकार की सिद्धियाँ कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्व पचभूतात्मक है निरवद्य भी पचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय मन और अहकार एव सूक्ष्म इन्द्रिय मन और अहकार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यों की यह

त्रिविधि प्रवृत्ति है। त्रैलोक्य मे जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश मे होते हैं। वे तीनो लोको के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियो के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, सयोग क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्ही मे लिप्त हो जाते हैं। उनमे से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुन भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारो मे शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नही आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नही हो सकती। थोडे समय तक हठपूर्वक इन्द्रियो को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्त करण को क्रमश बिलकुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोडे समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नही सकती। इतना ही नही ऐसे व्यक्तियो मे से कितने ही बाद मे स्वार्थ और विषयो की लालसा मे फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता मे कहा है—

कर्मेन्द्रिय सयम्य य आस्ते मनसास्मरन।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावो से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

कामनाएं रखकर साधन भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त में गिरना ही पड़ता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन में हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और 'जीवो जीवस्य भोजनम्' की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियों के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्व प्रदान नहीं किया है। पर जिस मनुष्य प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है। जब समस्त संसार में एक ही आत्म-तत्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व-व्यापी चैतन्य तत्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यों ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि में हिंसा का प्रतिपादन किया है पर उनकी इस अनीतिमूलक प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त में ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ-प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' में इस समस्या की गम्भीरपूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय किया है कि यज्ञादि में जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नहीं हो सकती। त्रेता युग में यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुबलि के सम्बन्ध में उसमें यह कथानक मिलता है—

जब त्रेता में वृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं लोग घर द्वार आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे तो विश्वात्मा देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिये वेद संहिताओं और मंत्रों का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमें सम्मिलित हो गये और मेध्य पशुओं के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुनकर सभी लोग धर्मार्थ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म में व्यस्त हो गये यज्ञ में भाग लेने वाले देवता और महात्मागण आवाहित होने लगे ठीक उसी समय यज्ञ-मंडप में समागत महर्षिगण

अध्वर्युगण को पशुओ के स्नानादि मे समुद्यत देखकर उन पशुओ की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म काय कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नही है। इन दीन पशुओ की हिंसा से तुम अपने सचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नही है, हिंसा कभी भी धर्म नही कहा जा सकता। यदि तुम्हे यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ बीजो से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नही है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल मे बीस वर्ष पुराने रखे हुये बीजो द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन है।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह सशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जगम इन दो प्रकार के उपकरणो मे से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद मे पडे उन मुनियो ने यह समझौता किया कि इस विषय मे राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा वसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वय महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगो के इस सशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञो की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित-अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थो के यज्ञ विषयक वचनो को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशो के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रो का कथन है कि मेध्य पशुओ द्वारा अथवा बीजो और फलो द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यो मे मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियो के द्वारा अविष्कृत मन्त्र-समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनो द्वारा भी यज्ञो का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा वसु की ऐसी बातो से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियो ने कहा—'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा अब तू रसातल मे प्रवेश कर। मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था वसुधा तल पर आ गया। अत पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने मे बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ है। महर्षियो ने जीव हिंसा को धम का द्वार नही माना है।

यद्यपि अधोगति मे पडे जीवो के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्श का पालन बड़ा कठिन है तोभी धम कार्यों मे हिंसा का प्रवेश कदापि वाछनीय नही कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोडे लोगो पर ही पड़ता है और उसे कोई महत्व नही दिया जाता, पर धम काय मे हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अत यज्ञो के रूप मे जीव हिंसा का विधान निस्सन्देह क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियो को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

प्राचीन समय में ज्ञान विज्ञान के सम्बन्ध मे जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी आविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इजिन बनाकर रेल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है पर जिन मनुष्यो ने दावानल के भयकर अग्निकाण्ड मे से थोडी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप मे प्रयोग किया वह भी कम प्रशसा के पात्र नही है। इसी प्रकार वर्तमान युग मे अणु-बम एक युग परिवर्तनकारी आविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियो ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि ससार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु है और यही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। वायु-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रो को

देवता मानकर उनके रथो, घोडो, महलो और दरबारियो का मनोरजक वर्णन किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हो, पर साथ ही बीच-बीच मे विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यो का परिचय भी दे दिया है। यद्यपि सूर्य को उन्होने सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट किया है और लोकरजन के निमित्त उसमे मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातुधान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान पर यह भी प्रकट कर दिया है ससार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य ही है। उसमें कहा गया है—

"तीनो लोको का मूलकारण सूर्य ही है इसमे सन्देह नही। देवता, असुर और मनुष्यो से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवो का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और सूर्य मे ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल मे लोको की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, सवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमे लय को प्राप्त होते हैं, वह सूर्य ही है। सूर्य को छोडकर और किसी साधन से काल की गणना नही की जा सकती। और बिना काल तथा समय के न शास्त्र, न दीक्षा, न दैनिक कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओ का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढेंगी। ससार को प्रतप्त करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग मे भी देवो का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल हैं, अग्नि है और द्वादशात्म प्रजापति है। ये ही तीनो लोकों के चराचर को प्रतप्त किया करते हैं। सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक पालो के आत्मा है ये उत्तम वायु-मार्ग का अवलम्बन करके किरणो द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी जगहो मे ताप-दान करते हैं।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय मे जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान की खोज से प्रकट हुआ है। सूर्य से ही समस्त ग्रहों और उपग्रहो की उत्पत्ति होती है, वही इनमे जीवन और प्राणतत्त्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

उनकी चर्चा आई है सम्मान युक्त भाषा का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारो के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियों ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

सूतजी! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते है? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एव क्षत्रिय जाति मे वे किस लिये उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि मे किस लिये जन्म धारण करते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु सहार कारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो जो कर्म सम्पन्न होते हैं उन सबको हम भली भाँति सुनकर चाहते है। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बताइये उसी प्रकार उनके अवतारो के विषय मे भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय मे भी हमे जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भगवान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल मे उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं? देवताओ और मनुष्यो को उचित मार्ग पर लगाने वाले भूभु व आदि लोकों के उत्पत्तिकर्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि मे समाविष्ट करते हैं? चक्र धारण करने वालो मे श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही ससार के मानव मात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं उन्हे मानव-योनि मे उत्पन्न होने की इच्छा क्यो हुई? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओं का पालन करते हैं।

जो भूतात्मा भगवान ससार के समस्त भूतों (पृथ्वी जल अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ मे क्यों लिये आते हैं। जिन्होने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरों को श्राद्ध भोक्ता बनाया जो स्वयं यज्ञादि शुभ कार्यों मे विधि के अनुसार भोग के लिए

महिषासुर के उपाख्यान मे उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महा देव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनो बाहु बनी। चन्द्रमा के तेज से दोनो स्तन इन्द्र के तेज से मध्यदेश वरुण के तेज से जघा और उरु पृथ्वी के तेज से नितम्ब ब्रह्मा के तेज से दोनो चरण सूर्य के तेज से पैरो की अगुली और वसुगणो के तेज से हाथो की अगुली बनी। कुबेर से नासिका प्रजापति से दाँत पावक के तेज से तीनो नेत्र वायु के तेज से दोनो कान बने। इस प्रकार वह मगलमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओ ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा सग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

वायु पुराण' मे भी मधु कटभ के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बडे सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमे कहा गया है—

भगवान शकर के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल मे घुस गये। तब पद्म जन्मा ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु कटभ नामक दो अतुल वीर्य बलशाली भ्राताओ ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनो की आखें अधकार मे चमक रही थी और वे दोनो ही वीर हस-हँस निर्भयभाव से पद्म पत्रो को तोड रहे थे। उन दोनो ने ब्रह्मा से कहा तुम हमारे भक्ष्य बनो। यह कहकर वे दोनो अन्तर्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को जानना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे सीधे रसातल म उतर गये। वहाँ उन्होने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होने उनको जगाया और जगने पर कहा—"देव! हमे भूतों से भय हो रहा है उठिये हमे बचाइये हमारा कल्याण कीजिये।

शत्रु को दमन करने वाले स्वय भगवान विष्णु हँसते हुये बोले— कुछ चिन्ता नही डरने की कोई बात नही। ब्रह्मा जी के चले जाने पर उन अनन्त भगवान ने अपने मुख से विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओ को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनो ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु जिष्णु के आवागमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बनालिया। उन्होने

जल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम क ने लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से म उनमे से कोई भी युद्ध से विरत नही हुआ। उनका आकार-प्रकार और सस्थानादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनो का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। तब उन्होने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बाँध दिया और मन्त्रों का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रम्ह को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो ? कन्या ने कहा आप मुझे विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु कैटभ थक गये और विष्णु-जिष्णु ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र कथानक—

वायु-पुराणमे दक्ष-यज्ञके विध्वस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त पुराणो से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढने मे आया था कि शिव-पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ मे शकर का भाग न देखकर योगाग्नि मे जल कर आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थी पर दक्ष ने उसका सम्मान नही किया जिससे उसने स्वत आत्मघात कर लिया। तब शिव ने दक्ष को श्राप दिया कि तुम अगले जन्म मे एक वृक्ष-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होगे और तब भी तुम्हारा नाम दक्ष ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ है और उस जन्म मे भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमे नही बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी ने उसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे बहुत रुष्ट हुई और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस कार्य मे पूर्ण सहयोग दिया।

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने का वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है।

सम्भवतः पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प भेद' बतलावें पर जब और सब कथायें इसी समय की हों और अन्य ग्रन्थों से मिलती हों तो किसी एक को ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नहीं है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणों में अनेक स्थलों पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्भव की कथा दी गई है और एकाध पुराण में इस प्रसंग में ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखाया गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बहुत हीन प्रकट किया गया है। पर 'वायु-पुराण' में इस कथा को भी बहुत स्वाभाविक रूप में दिया गया है और शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओं में श्रेष्ठ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूं। पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बांये हाथ हैं। इस कथानक में और अन्य पुराणों में ब्रह्मा को झूठा बनाने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने के अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों में जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त में पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार और साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया है कि परब्रह्म का स्वरूप वेदों के कथनानुसार अक्षर अव्यय अतीन्द्रिय और चिन्मात्र है, अथवा जैसा भक्ति प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह नाना प्रकार के आभरण धारण करके वेणु वादन करते हुए गोपियों संग रासलीला हास विलास रतिक्रीड़ा आदि के प्रेमी ग्वालों की रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये राधा विलासी के रूप में है। भक्तगणों ने उस परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलोक धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं।

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस समस्या का निराकरण नही कर सके तो उन्होंने एकान्त मे बैठकर आहार, चित्त एव आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदो का आवाहन किया। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्तिमान वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि—"अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरो से आप लोगो ने अधिकारियों मे भेद बनाकर कर्म और ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओ से घिरे हुये चित्त वाले मनुष्यो के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उसका फल स्वर्ग कहा गया है। और ईश्वर मे ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गई है। चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एव आनन्द स्वरूप हैं। यह सब जान लेने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदो के कथन से व्यास जी को जो कुछ जान पडा उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणो का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एव गन्ध की भांति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप हैं, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दो द्वारा गम्य नही है।"

अधिकांश पुराणो मे जिस प्रकार अवतारो के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, वह बात 'वायु पुराण' मे देखने मे नही आती। इसमे ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त मे व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओ पर ध्यान देने पर उसे 'महा-पुराणो' की सूची मे स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव मे पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

और मध्यकाल में उसका बहुत अधिक विस्तार किया गया है। उसमें केवल १८ महापुराणों का ही समावेश नहीं है, वरन् १८ उप-पुराण १८ अति-पुराण और १८ लघु-पुराणों का समावेश भी उनमें कर दिया गया है। इन सब ग्रन्थों की विषय-सूची और वर्णन शैली पर जब दृष्टिपात करते हैं तो 'वायु पुराण' का दर्जा बहुत ऊँचा जान पड़ता है। उसमें सृष्टि रचना जीव-जगत का विस्तार, मानवीय सभ्यता का विकास समाज व्यवस्था शासन व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था का क्रमश उद्भव आदि विषयों का अन्य कितने ही पुराणों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा बुद्धिसंगत ढंग से वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इस पुराण का अध्ययन करके अनेक प्राचीन युग सम्बन्धी तथ्यों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। धर्म के स्वरूप और उपासना का भी इसने जिस रूप में वर्णन किया गया है उससे विवादग्रस्त प्रश्न उपस्थित करने के बजाय धर्म के उन मूल तत्वों पर प्रकाश पड़ता है जो मानव जीवन की सार्थकता के लिये मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

१.	मुनियों द्वारा पुराण जिज्ञासा	...	४१
२.	द्वादश वर्षीय सत्र निरूपण	...	४६
३	प्रजापति सृष्टि-कथन	...	५६
४	हिरण्य-गर्भ के रूप मे विभिन्न तत्वो की उत्पत्ति तथा आदि सृष्टि वर्णन	...	६०
५	सृष्टि-रचना और दैवी शक्तियाँ	...	७४
६.	सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग, वाराह रूप से पृथ्वी की स्थापना	...	८२
७.	वर्तमान कल्प में मानुषी-सृष्टि, दो कल्पों के बीच की प्रति सन्धि का वर्णन, प्रलय-वर्णन	...	९४
८.	मानव सभ्यता का आरम्भ, विभिन्न युगों में मनुष्य का विकास क्रम	...	१०६
९	देव-सृष्टि, देव, पितर, असुर, दानव, आदि की उत्पत्ति	...	१३७
१०.	मन्वन्तर वर्णन—स्वायम्भुव मनु तथा दक्षप्रजापति की सन्तति	...	१५५
११.	पाशुपत योग—प्राणायाम आदि योग के अङ्गों का वर्णन	...	१६८

१२ योगमार्ग में विघ्न—सिद्धियों के कारण
पतन की सम्भावना — १७८
१३ योगमार्ग के ऐश्वर्य — १८४
१४ पाशुपतयोग का स्वरूप १८७
१५. पाशुपत-योग महिमा — १९४
१६ शौचाचार द्वारा मनुष्य की सद्गति १९७
१७ परमाश्रय प्राप्ति — २ १
१८ प्रायश्चित विधि — २०२
१९. अरिष्ट वर्णन—मृत्यु का समय जानने के लक्षण २ ५
२० ओङ्कार प्राप्ति के लक्षण — २१२
२१ कल्प निरूपण २१८
२२ कल्प-संख्या निरूपण २२९
२३ महेश्वरावतार-योग — २३४
२४ पापस्तोत्र २४३
२५ मधुकैटभ उत्पत्ति चक्रद्वारा उनका वध
और सृष्टि रचना — २६९
२६ स्वरोत्पत्ति ओङ्कार और वेदों का आविर्भाव — २८४
२७ ऋषिवंश कीर्तन—भृगु मरीचि अत्रि आदि की संतति २९१
२८ अग्नि-वंश वर्णन — २९७
२९. देव वंश वर्णन — ३ ५
३ युग धर्म निरूपण ३१६
३१ स्वायम्भुव वंश कीर्तन—सात द्वीप के
अधिपतियों का वर्णन ३२६

३२ भुवन-विन्यास—भारत के विभिन्न प्रदेशो का वर्णन ... ३३६

३३. ज्योतिप प्रचार (१) चौदह लोक, सप्तद्वीप,
सूर्य, चन्द्र ग्रह, नक्षत्रो का स्वरूप वर्णन ... ३४८

३४. ज्योतिप प्रचार (२) सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र,
ग्रह, आदि की गति, वर्पा करने वाले
मेघो का वर्णन ... ३८१

३५ ध्रुव-चर्या—सूर्य के रथ के देव, गन्धर्व आदि,
समस्त ग्रहो के रथ व घोडो का वर्णन, ध्रुव
द्वारा सबका धारण किया जाना ... ३६३

३५ (क) ज्योतिप मण्डल का विस्तार—त्रिविधि अग्नि,
मगल आदि ग्रहो की सूर्य से उत्पत्ति, ज्योतिष
शास्त्र का आधार ... ४०८

३६ नीलकण्ठ स्तुति, समुद्र मन्थन मे विष के
निकलने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान शिव की
स्तुति और उनका गरल-पान ... ४२७

३७ लिंगोद्भव स्तुति, ब्रह्मा और विष्णु के सम्मुख
ज्योतिर्लिंग का प्रकट होना और दोनो के द्वारा
उसकी स्तुति ... ४३८

३८ पितर-वर्णन—पुरवा द्वारा पितरों का तर्पण,
विभिन्न प्रकार के पितरो और उनकी श्राद्ध
विधि का वर्णन ... ४४८

३६, यज्ञ-प्रथा का वर्णन—चारों युगों के धर्म कथन में
यज्ञ का महत्व, हिंसारूप यज्ञ का निषेध राजा
वसु का पतन ... ४६२

४ चारों युगों का व्याख्यान—चारों युगों का परिमाण युगभेद युगधर्म युगसन्धि युगांश और युग-संधान का तत्त्व राज्य तथा समाज की दशा — ४८१

४१ ऋषि-लक्षण—साधुओं के लक्षण तपस्या का रूप युगानुरूप व्यवहार महर्षि ऋषि ऋषीक के भेद प्राचीनकाल के मुख्य ऋषिवर्गों की गणना ५००

४२ महास्थान तीर्थ वर्णन—वेदों की शाखाओं का विभाजन और उनके प्रवर्तक ऋषियों का परिचय राजा जनक के यज्ञ में शाकल्य का विनाश ५१७

वायु-महापुराण

।। मुनियों द्वारा पुराण-जिज्ञासा ।।

नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ।
जयति पराशरसूनु सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यास ।
यस्यास्यकमलगलित वाङ्मयममृत जगत् पिवति ।

प्रपद्ये देवमीशान शाश्वत ध्रुवमव्ययम् ।
महादेव महात्मान सर्वस्य जगत पतिम् ।।१
ब्रह्माण लोककर्त्तार सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभु भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ।।२

ज्ञानमप्रतिम यस्य वैराग्य च जगत्पते ।
ऐश्वर्यञ्चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टय ।।३
य इमान् पश्यते भावान्नित्य सदसदात्मकान् ।
आविशन्ति पुनस्त वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ।।४

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।५
तमज विश्वकर्माण चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरण प्रभुम् ।।६

श्री मन्नारायण को नमस्कार करके और नरो मे उत्तम नर को नमस्कार करे। इसी प्रकार देवी सरस्वती को नमस्कार करके इसके पश्चात् 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए। सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशर ऋषि के पुत्र व्यास मुनि की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से नि सृत

अमृत का यह समस्त जगत् पान करता है। निश्चल अविनाशी शाश्वत महान् आत्मा वाले समस्त जगत् के पति देव ईशान महेश की शरण गति मे जाता हूँ ॥१॥ इस लोक की रचना करने वाले सब विषयों के ज्ञाता पराजित न होने वाले भूत काल और भविष्य काल के पति तथा वर्तमान समय के उत्पत्ति ब्रह्माजी की शरण मे जाता हूँ ॥२॥ जिस जगत् के पति का अनुपम ज्ञान और वैराग्य है तथा चारो सिद्धियों के साथ धर्म और ऐश्वर्य भी अद्भुत है ॥ ३ ॥ जो इस सत् और असत् स्वरूप वाले भावों को नित्य देखते हैं वे क्रिया भाव के अर्थ रूप ईश्वर मे फिर प्रवेश कर जाते हैं ॥ ४ ॥ लोकों का सृजन करने वाले और लोकों के तत्त्व को जानने वाले तत्त्व-वेत्ता ने योग मे स्थिर होकर स्थावर और चर समस्त प्राणियों की सृष्टि की है ॥ ५ ॥ पुराण के आख्यानों को जानने की इच्छा रखने वाला मैं उस अजन्मा विश्वकर्मा अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की रचना वाले ज्ञान के पति लोकों के साक्षी प्रभु की शरण मे जाता हूँ ॥६॥

ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः ।
ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥७
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णाय चर्षये ।
वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥८
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ।
धर्मार्थन्यायसंयुक्तं रागमैः सुविभूषितम् ॥९
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि ।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥१०
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥१२
दृष्ट्वा तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ।
लोमानि हृष्टमानसः श्रोतृणां यत् सुभाषितैः ।

कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिल्लोमहर्षण ॥१३
तप' श्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमत ।
शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥१४

समाहित अर्थात् सावधान होकर ब्रह्म, वायु और महेन्द्र के लिये नमस्कार करके, ऋषियो मे सर्वश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के लिये, अत्यन्त यशस्वी उनके नाती जातूकर्ण ऋषि के लिये परम पवित्र वसिष्ठ के लिये तथा कृष्णद्वैपायन के लिये नमस्कार करके धर्म, अर्थ और न्याय से सङ्गत अर्थात् सयुक्त आगमों से सुशोभित वेदो की सम्मति से युक्त ब्रह्मोक्त पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥७–८–९॥ अनुपम कान्ति वाले, परम विक्रमशाली, समस्त नृप मण्डल मे अति श्रेष्ठ असीमकृष्ण नामक राजा के द्वारा इस भू मण्डल पर शासन करने के समय मे सत्य के व्रत मे तत्पर, परम सरल रजोगुण से हीन, शान्त प्रकृति वाले दमनशील और इन्द्रियो को जीतने वाले ऋषि लोग सशित आत्मा वाले होकर धर्म के धाम कुरुक्षेत्र मे पवित्र तट वाली परम पवित्र दृषद्वती नदी के तट पर दीर्घ-सत्र का यजन करने लगे। सभी ऋषि लोग शास्त्र की विधि के अनुसार दीक्षा प्राप्त करने वाले और नैमिषारण्य के भ्रमण करने वाले थे ॥१०–११–१०॥ महान् तीव्र बुद्धि वाले, पुराणो के ज्ञाता तथा वक्ताओ मे परमश्रेष्ठ सूतजी ने उन ऋषियो को देखने के लिये वहाँ आकर अपनी सुन्दर उक्तियों के द्वारा लोगो को हर्षित कर दिया अर्थात् सबको पुलकित बना दिया। इसी सत्कर्म से अर्थात् पुलकायमान बना देने के काम से ससार में वे लोम-हर्षण' इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥१३॥ वे तपस्या, शास्त्रो का श्रवण और आचार की निधि अत्यन्त बुद्धिमान् व्यास मुनि के श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी शिष्य थे और लोको मे बहुत ही प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

पुराण वेदो ह्यखिलो यस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठित ।
भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥१५
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।
सूक्ता सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ॥१६
स तान् न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।

अभिगम्योपससृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलि ।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानषीन् ॥१७
ते चापि सत्रिण प्रीता ससदस्या महौजस ।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावत प्रतिपेदिरे ॥१८

अथ तेषा पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्त विद्वास लोमहर्षणम् ॥१९
तस्मिन् सत्रे गृहपति सर्वशास्त्रविशारद ।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषा सूतमनोदयत् ॥२०

त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तम ।
इतिहासपुराणार्थं व्यास सम्यगुपासित ।
दुदोह त्व मति तस्य त्व पुराणा श्रया कथाम् ॥२१

समस्त पुराण और सम्पूर्ण वेद जिसमे भली भाँति प्रतिष्ठित थे और महाभारत के बढाने वाली प्रचुर सरस्वती विराजमान थी ॥ १५ ॥ धर्म अर्थ काम और मोक्ष के प्रयोजन वाली अनेक कथाएं जिसमे प्रतिष्ठित थी । सूक्त और अच्छी परिभाषाएं भूमि मे औषधियो के तुल्य जिनमे विद्यमान थीं ॥ १६ ॥ ऐसे न्याय के ज्ञाता उन सतजी ने न्याय से अच्छी बुद्धि वाले उन सब मुनियो के समीप आकर और निकट मे पहुँच कर हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया और उन समस्त महर्षियो को अपने प्रणिपात तथा विनम्र व्यवहार से सन्तुष्ट किया ॥१७॥ सत्र का यजन करने वाले महान् ओज वाले सदस्यो के सहित वे सब भी उस समय बहुत ही प्रसन्न हुए और वे भी उन सूतजी का अर्चनार्चन यथा विधि करने म तत्पर हुए ॥१८॥ इसके अनन्तर उन समस्त ऋषियो के हृदय मे पुराण के श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई क्योकि उन्होने अत्यन्त विश्वास के पात्र और महान् विद्वान् लोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥१९॥ उस सत्र म समस्त शास्त्रो के पण्डित गृहपति ने उन सब महर्षियो के हार्दिक भाव को इङ्गितो के द्वारा लक्ष्य करके श्री सूतजी को प्रेरित किया ॥ २० ॥ गृहपति ने कहा—हे सूतजी ! आपने ब्रह्म के ज्ञाताओं मे श्रेष्ठ महान् बुद्धि वाले भगवान् व्यासजी की इतिहास और पुराणो के ज्ञान प्राप्त करने के लिये

भली-भाँति उपासना की है और आपने पुराणों में आश्रित कथा वालों उनकी बुद्धि का अच्छी तरह दोहन किया है अर्थात् आपने अच्छा पौराणिक ज्ञान उनसे प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

एषाञ्च ऋषिमुख्यानां पुराण प्रति धीमताम् ।
शुश्रूषाशित महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२
सर्वे हीमे महात्मानो नाना गोत्रा समागता ।
स्वान् स्वान् वशान् पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिन ॥२३
सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिञ्छ्रवयेथा मुनीनथ ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभि स्तेन प्रागसि सस्मृत ॥२४
इति सन्नोदित सूतस्तैरेव मुनिभि पुरा ।
पुराणार्थं पुराणज्ञै सत्यव्रतपरायणैः ॥२५
स्वधर्म एप सूतस्य सद्भिर्दृष्ट पुरातनै ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥२६
वशाना धारण कार्य श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभि ॥२७
न हि वेदेष्वधीकार कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मन ।
सुत्यायामभवत् सूत प्रथम वर्णवैकृत ॥२८

हे महाबुद्धे ! इन बुद्धिमान् मुख्य ऋषियो की पुराण के प्रति श्रवण करने की अत्यन्त हार्दिक इच्छा है सो आप इन्हें वह सुनाने को योग्य होते हैं ॥ २२ ॥ ये सब महान् आत्मा वाले है और अनेक गोत्र वाले यहाँ एकत्रित हुए हैं। ये सब ब्रह्मवादी लोग पुराणो के द्वारा अपने-अपने वशो का श्रवण करें ॥ २३ ॥ इस दीर्घ सत्र मे पुत्रो के सहित इन मुनियो को श्रवण कराइये। उसके द्वारा दीक्षिष्यमान हम सबके द्वारा आप पहिले ही सस्मृत हुए हो ॥२४॥ इस प्रकार से सत्यव्रत में परायण पुराणो के ज्ञाता उन्ही मुनियो के द्वारा पहिले पुराण के लिये सूतजी से सत् नही कहा गया ॥ २५ ॥ प्राचीन सत्पुरुषो ने यह सूत का अपना धर्म देखा है कि देवताओं का ऋषियों का और अपरिमित तेज

वाले राजाओं का तथा महात्माओं के श्रुत वंशों का धारण करना चाहिए जो कि ब्रह्म वादियों ने इतिहास और पुराणों में दिष्ट किये हैं ॥ २६–२७ ॥ किन्तु सूत का वेदों में कहीं भी कोई अधिकार नहीं दिखाई देता है क्योंकि महात्मा राजा वेन के पुत्र पृथु के वर्तमान यज्ञ में सुत्या में प्रथम मिश्रित वर्ण वाले सूत की उत्पत्ति हुई थी ॥ २८ ॥

ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च कर्मसु ॥२९
शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥३०
यच्च क्षत्रात् समभवद्ब्राह्मण्यावरयोनितः ।
ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः ॥३१
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥३२
तत स्वधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
कस्मात् सम्यङ् न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥३३
पितॄणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ॥ ४
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः ।
तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ॥ ५

वहाँ पर इन्द्र सम्बन्धी हवि से पृक्त बृहस्पति की हवि को इन्द्र देव के लिये के लिये हुत किया था । इससे सूत की उत्पत्ति हुई । वहाँ प्रमाद से कर्मों में प्रायश्चित्त किया ॥ २९ ॥ जो शिष्य के हव्य से गुरु का हवि पृक्त होकर अभिभूत हो गया और इस अधरोत्तर चार से ही यह वर्ण वैकृत उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ और जो क्षत्रिय से ब्राह्मण की अवर योनि से हुआ वह पहिले के साथ साधर्म्य होने के कारण तुल्य धर्म वाला कहा गया है ॥ ३१ ॥ रथ नाग और अश्व का चरित्र क्षत्रियों का उपजीवन यह सूत का मध्यम श्रेणी का धर्म होता

है तथा चिकित्सा करना जघन्य श्रेणी का धर्म है ।। ३२ ।। सो ब्रह्म-वादी आप लोगो ने मुझसे मेरे धर्म के अनुकूल ही पूछा है। मैं ऋषियो के द्वारा समर्चित पुराण को भली-भाँति क्यो नही कहूँगा अर्थात् अवश्य ही कहूँगा ।।३३।। पितरो की वासवी नामक मानसी कन्या हुई थी वह पितरो के द्वारा अपध्यात होकर मत्स्य योनि मे हुई थी ।। ३४ ।। जिस तरह अग्नि की उत्पत्ति का निमित्त अरनी होती है उसी भाँति वेदो के ज्ञाताओ मे सर्वश्रेष्ठ महान् योगी व्यास मुनि उसमे उत्पन्न हुए ।। ३५ ।।

तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाया भृगुवाक्यप्रवर्त्तिने ।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।।३६
जातमात्रञ्च य वेद उपतस्थे ससङ्ग्रह ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्णादवाप तम् ।।३७
मति मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाश जनितो लोके महाभारतचन्द्रमा· ।।३८
वेदद्रुमश्च य प्राप्य सशाख समपद्यत ।
भूमिकालगुणान् प्राप्य बाहुशाखो यथा द्रुम ।।३९
तस्मादहमुप श्रुत्य पुराण ब्रह्मवादिन ।
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजिताद्दीप्ततेजस· ।।४०
पुराण सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्त मातरिश्वना ।
पृष्टेन मुनिभि पूर्वं नैमिषीयै महात्मभि ।।४१

उन पुराण पुरुष, भृगु के वाक्य प्रवृर्त्ती, विद्वान्, छद्म से मनुष्य का रूप धारण करने वाले, होनहार विष्णु भगवान् व्यासजी के लिये नमस्कार करके जिनके उत्पन्न होते ही सग्रह सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गये थे, किन्तु धर्म की ही मर्यादा का पालन कर जातूकर्ण से उसको प्राप्त किया था ।। ३६-३७ ।। जिसने श्रुति रूपी सागर से बुद्धि रूपी मन्थन करने वाले से मथ कर ससार मे महाभारत रूपी चन्द्रमा को प्रगट कर दिखलाया है ।। ३८ ।। जिस तरह भूमि के तथा काल के गुणो को प्राप्त कर वृक्ष बहुत सी शाखाओ से युक्त

हो जाता है उसी तरह् वेद रूपी वृक्ष भी वेद व्यास मुनि को प्राप्त कर अनेक शाखाओं से युक्त हो गया ॥ ६ ॥ उन ही दीप्त तेज वाले समस्त वेदों मे पूजित, सर्वज्ञ और ब्रह्म के वक्ता से मैंने उप श्रवण करके पहिले महात्मा और नमिषारण्य मे निवास करने वाले मुनियों के द्वारा पूछे गये वायु देव ने जो पुराण कहा था उस वायु-पुराण को मैं अब आप लोगो के समक्ष मे कहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥४२
अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं सम्प्रचक्ष्यते ।
सुखमर्थं समासेन महानप्युपलभ्यते ।
तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥४३
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं तत् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४४
यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥४५
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥४६
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात् प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥४७
यस्मात् पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४८
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥४९
अतश्च सन्क्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥५०

सूतजी ने कहा—जिस वायु पुराण मे ब्रह्मवादी वायु देव के द्वारा विप्रों

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र तत्र सौम्योऽभवत् सुत ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठ समभवद्वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धत्या सुता यत्र शतमुत्तमतेजस ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैर समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयो ॥१०
अदृश्यन्त्या समभवन्मुनिर्यत्र पराशर ।
पराभवो वसिष्ठस्य य स्मिन् जातेऽप्यवर्त्तत ॥११
तत्र ते ईजिरे सत्र नैमिषे ब्रह्मवादिन ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषयास्तत स्मृता ॥१२
तत्सत्रमभवत्तेषा समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा ।
तुतोष नैव रत्नाना लोभादिति हि न श्रुतम् ॥१४

शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत् कालं यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ।
सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥५
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम् ।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥६
विबुधा ईजिरे यत्र सहस्रं प्रतिवत्सरान् ।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।
कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥७

श्री शुकदेवजी ने कहा—तपश्चर्या के ही धन वाले उन ऋषियों ने सूतजी से फिर कहा कि यह सत्र कहाँ पर हुआ जो कि अद्भुत कर्म करने वाले उन ऋषियों ने किया था ? ॥ १ ॥ इस सत्र को कितने समय तक और किस प्रकार से किया था और प्रभञ्जन (वायु) ने उनको किस तरह यह पुराण कहा यह सब आप कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें क्योंकि हम सबको इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है। इस तरह से ऋषियों के द्वारा पूछे गये सूतजी यह शुभ वचन बोले ॥ २-३ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप लोग श्रवण करें मैं बतलाता हूँ जहाँ पर उन परम धीर ऋषियों ने इस उत्तम सत्र का यजन किया था जिस प्रकार से और जितने समय तक किया था ॥ ४ ॥ पहिले जहाँ पर इस विश्व के सृजन करने वालों ने विश्व का सृजन करते हुए एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इस परम पवित्र सत्र का यजन किया था ॥ ५ ॥ जिस स्थान पर तप गृह का पति ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुआ जिस स्थान पर इला का पत्नीत्व हुआ और महान् तेज वाले मृत्यु ने जहाँ पर शामित्र (पशु बाँधने का स्थान) किया था उन महात्माओं के सत्र में देवों ने एक सहस्र प्रति वत्सर वहाँ यजन किया था। जहाँ पर धर्म चक्र के भ्रमण करते हुए नेमि विशीर्ण हो गई थी इस कर्म के कारण वह मुनियों के द्वारा परम पूजित यह स्थान नैमिष—इस नाम से विख्यात हुआ है ॥ ६-७ ॥

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र तत्र सौम्योऽभवत् सुत ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठ समभवद्वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धत्या सुता यत्र शतमुत्तमतेजस ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैर समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयो ॥१०
अदृश्यन्त्या समभवन्मुनिर्यत्र पराशर ।
पराभवो वसिष्ठस्य य स्मन् जातेऽप्रवर्त्तत ॥११
तत्र ते ईजिरे सत्र नैमिषे ब्रह्मवादिन ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्तत स्मृता ॥१२
तत्सत्रमभवत्तेषा समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा ।
तुतोष नैव रत्नाना लोभादिति हि न श्रुतम् ॥१४

जिस स्थान पर बडे बडे सिद्धो तथा चारणों के द्वारा सेवित परम पवित्र गोमती है वहाँ पर रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया जोकि परम सौम्य हुआ ।।८।। जहाँ पर महात्मा वसिष्ठ के अरुन्धती से अत्युत्तम तेज वाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें शक्ति नाम वाला सबसे बडा पुत्र था ॥ ९ ॥ उस वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा कल्माषपाद नामक राजा को शाप दिया गया था और जिस स्थान में विश्वामित्र और वसिष्ठ का पारस्परिक वैर हो गया था ॥ १० ॥ जहाँ पर दृश्यमान न होती हुई में पराशर मुनि हुए जिनके उत्पन्न होने पर भी वसिष्ठजी का पराभव हुआ था ॥ ११ ॥ वहाँ पर नैमिष नामक स्थान मे ब्रह्मवादी उन ऋषियो ने सत्र का यजन किया था क्योंकि वह सत्र उन्होंने नैमिष नाम वाले स्थान मे किया था अतएव तभी से वे सब नैमिषेय इस नाम से कहे गये हैं ॥१२॥ उन धीमान् ऋषियो का वह सत्र बारह वर्ष पर्यन्त हुआ जबकि विक्रमशील पुरुरवा राजा इस भू-मण्डल का शासन करता था ॥ १३ ॥ पुरुरवा राजा को समुद्र के अठारह द्वीपो को अपने अधिकार मे रखते हुए भी रत्नों के लोभ की अधिकता होने के कारण सन्तोष नही हुआ था, ऐसा हमने सुना है ॥ १४ ॥

उर्वशी चकमे य च नैवहूतिप्रणोदिता ।
आजहार च तत्सत्र स्वर्वेश्यामङ्गमम् ॥१५
तस्मिन्नरपतौ सत्र नैमिषेया प्रचक्रिरे ।
य गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ।
तदुल्ब पर्वते न्यस्त हिरण्य प्रत्यपद्यत ॥१६
हिरण्मय ततश्चक्र यज्ञवाट महात्मनाम् ।
विश्वकर्मा स्वय देवो भावयन् लोकभावनम् ॥१७
बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेषाममिततेजसाम् ।
ऐल पुरूरवा भेजे त देश मृगया चरन् ॥१८
त दृष्ट्वा महदाश्चर्य यज्ञवाट हिरण्मयम् ।
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातु प्रचक्रमे ॥१९
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुकुपुर्नृपतेर्भृशम् ।
निजघ्नुश्चापि सक्रुद्धा कुशवज्रैर्मनीषिण ।
ततो निशान्ते राजान मुनयो दैवनोदिता ॥२०
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्ट स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेय ततस्तस्य पुत्रश्चक्रुर्नृप भुवि ॥२१

देवहूति के द्वारा प्रेरित की हुई उर्वशी उसके समीप मे गई और उस स्वर्ग की वेश्या के साथ में सङ्गति करने वाले अपने उस सत्र का आहरण कर लिया था ॥१५॥ उस राजा के होने के समय मे नैमिषेय ऋषियो मे इस सत्र को किया था जिस उद्दीप्त तेज वाले को अग्नि से गङ्गा ने गर्भ मे प्रसूत किया था वह गर्भ पर्वत पर रख दिया गया जो कि सुवर्ण हो गया था ॥१६॥ लोकों की भावना को हृदय मे विचारते हुए देव विश्वकर्मा ने स्वय महात्माओ के उस यज्ञवाट को उससे हिरण्मय कर दिया था ॥१७॥ इसके अनन्तर अपरिमित तेज के धारण करने वाले उनमे बृहस्पति हुए । एक बार शिकार करते हुए पुरूरवा ऐल वहाँ पर उस देश मे पहुँच गया था ॥१८॥ उसने उस यज्ञ वाट को हिरण्मय देखकर बहुत अधिक आश्चर्य किया और लालच के कारण ज्ञान हीन होकर उसे ग्रहण करने की इच्छा की ॥१९॥ इसके अनन्तर नैमिषेय

ऋषियो ने उस राजा पर अत्यन्त क्रोध किया और दैव से प्रेरित उन मनीषी ऋषियो ने विशेष क्रोधित होकर प्रात काल मे कुशा रूपी वज्रो से उस राजा का हनन भी किया था ॥२०॥ डाभ के वज्रो से विशेष रूप से पिसे हुए उस राजा ने अपने शरीर का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् भूमि पर उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न उसके पुत्र को राजा बना दिया गया ॥२१॥

नहुषस्य महात्मान पितर य प्रचक्षते।
स तेषु वर्त्तते सम्यग धर्मशीलो महीपति ।
आयुरारोग्यमत्युग्र तस्मिन् स नरसत्तम ॥२२
सान्त्वयित्वा च राजान ततो ब्रह्मविदा वरा ।
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं यथावद्धर्मभूतये ॥२३
बभूव सत्र तत्तेषा बह्वाश्चर्य महात्मनाम्।
विश्व सिसृक्षमाणाना पुरा विश्वसृजामिव ॥२४
वैखानसै प्रियसखैर्वालखिल्यमरीचिभि ।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्ट सूर्यवैश्वानरप्रभै ॥२५
पितृदेवाप्सर सिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणै ।
सम्भारैस्तु शुभैर्जुष्ट तैरेवेन्द्रसदो यथा ॥२६
स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान् पितृन् पित्र्यैश्च कर्मभि ।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि ॥२७
आराधयितु मिच्छन्तस्तत्र कर्मान्तरेष्वथ।
जगु सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२८

जिस महान् आत्मा वाले को नहुष का पिता कहते हैं, वह धर्मशील राजा उन सबके साथ बहुत ही अच्छा बरताव करता था। वह एक परमश्रेष्ठ नृप था, इसलिये उसमें अत्युग्र आरोग्य और आयु सभी कुछ था ॥२२॥ ब्रह्म-वादियो मे परमश्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उस राजा की सान्त्वना करके यथारीति धर्म की विभूति की वृद्धि के लिये अपने सत्र के करने का आरम्भ कर दिया ॥२३॥ पहिले समय मे इस विश्व की सृष्टि करने की इच्छा वाले विश्व सृष्टाओ की भांति उन महान् आत्मा वाले ऋषियो का वह सत्र अत्यन्त आश्चर्य से पूर्ण

हुआ था ॥ ४॥ प्यारे सदा वैखानसों के द्वारा बाल खिल्यों के मरीचिकों के और सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले अन्य अनेक मुनियों के द्वारा उस सत्र का सेवन किया गया था ॥२५। पितर देव अप्सरागण सिद्ध गन्धर्व उरग और चारणों के द्वारा अनेकानेक शुभ सम्भारों से युक्त होकर इन्द्रदेव के निवास स्थान (स्वर्ग) की भाँति इस सत्र का सेवन किया गया था ॥२६॥ स्तोत्र सत्र ग्रहों से देवताओं का तथा पित्र्य कर्मों के द्वारा पितृगण का और अन्य समस्त गन्धर्व आदि का उनकी जाति एवं स्वभाव के अनुसार विधि विधान के साथ वहाँ अर्चन किया था ॥२७। इसके अनन्तर अन्य कर्मों में आराधना की इच्छा करते हुए गन्धर्वों ने साम का गायन किया और अप्सरागणों ने वहाँ नृत्य किया ॥२८॥

व्याजह्रुर्मुनयो वाच चित्राक्षरपदा शुभाम् ।
मन्त्रादितत्त्वविद्वांसो जगदुश्च परस्परम् ॥२९
वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नु प्रतिवादिन ।
ऋषयस्तत्र विद्वांस शाब्दन्यायेन्यायकोविदा ॥३०
न तत्र दुरितं किञ्चिद्दिवषुत्र ह्यराक्षसा ।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुरा ॥३१
प्रायश्चित्त दुरिष्ट वा न तत्र समजायत ।
शक्तिप्रज्ञा क्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठित ॥३२
एव वितेनिरे सत्र द्वादशाब्द मनीषिण ।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक पृथक ।
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्वानयुतदक्षिणान् ॥३३
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ।
पप्रच्छुरमितात्मान भवद्भिर्नयदह द्विजा ।
प्रणोदितश्च यथार्थं स च तानब्रवीत्प्रभु ॥३४
शिष्य स्वयम्भुवो देव सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यै: समन्वित ॥३५

मन्त्र आदि के तत्त्व के ज्ञाता परम विद्वान् मुनिगण अति विचित्र पदों

वलि वाली शुभ कल्याणकारिणी वाणी का उच्चारण करने लगे और परस्पर मे बोलने लगे ॥२६॥ वहाँ पर साख्य दर्शन के अर्थ तथा न्याय-दर्शन-शास्त्र के अर्थ के जानने वाले परम विद्वान् कुछ ऋषि लोग वितण्डायुक्त वचन बोलते हुए अपने प्रतिवादियो पर वाक्प्रहार करने लगे ॥३०॥ वहाँ उस दीर्घ सत्र में ब्रह्मराक्षसो ने कोई दुरित (पाप) कर्म नही किया था। दैत्य लोगो ने भी यज्ञ का हनन करने का कोई कर्म नही किया और वहाँ यज्ञीय वस्तुओ का हरण करने वाले असुर भी नही थे ॥३१॥ वहाँ उस समय कोई भी अनभीष्ट एव प्रायश्चित्त के योग्य कर्म नही हुआ था। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के सद्योगो के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह से की गई विधि का अनुष्ठान हो रहा था ॥३२॥ परम धीर भृगु आदि मनीषी ऋषियो ने इस प्रकार से वहाँ पृथक्-पृथक् ज्योतिष्टोम किये और बारह वर्ष पर्यन्त उस सत्र को करते रहे और सभी पृष्ठ गमनो को अयुत दक्षिणा वाले किया था ॥३३॥ यज्ञ समाप्त करने वाले उन सब ने अमित आत्मा वाले महान् स्वामी वायु से ही पूछा और वायुदेव ने कहा—हे ब्राह्मणो ! यदि आप लोगो ने मुझे ही वश कथन करने के लिये प्रेरित किया है तो सुनो—ऐसा प्रभु वायुदेव ने उनसे कहा ॥३४॥ वे स्वयम्भू के शिष्य, सब को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले, अपने ही वश में रहने वाले देव हैं, जो आठ अणिमादि ऐश्वर्यो से युक्त हैं ॥३५॥

तिर्यग्योन्य' दिभिर्धर्मैं सर्वलोकान्विभर्त्ति य ।
सप्तस्कन्धादिक शश्वत् प्लवते योजनाद्वर ॥३६
विषये नियता यस्य सस्थिता सप्तका गणा ।
व्यूहास्त्र याणा भूताना कुर्वन् यश्च महाबल ।
तेजसश्चात्त्युपध्यानन्दधातीम शरीरिणम् ॥३७
प्राणाद्या वृत्तय पञ्च करणाना च वृत्तिभि ।
प्रेर्यमाणा शरीराणा कुवते यास्तु धारणम् ॥३८
आकाशयोनिर्हि गुणा शब्दस्पर्शसमन्वित ।
तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्यय भावो मनीषिभि ॥३९
तत्राभि मानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मक ।

वातारणि समाख्यात शब्दशास्त्र विशारद ॥४०
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ।
पुराणज्ञ सुमनस पुराणाश्रययुक्तया ॥४१

जो तिर्यग्योनि आदि धर्मों से समस्त लोकों का भरण करते है और श्र ष्ठ जो निरन्तर योषन मे सत स्वन्ध आदि का प्लवन करते हैं ।३६।। जिसके विषय मे नियत सप्तकगण संस्थित रहते हैं और जो महान् बल वाला तीन भूतो के व्यूहो को करता हुआ तेज के उपादान को लाता है और इस शरीर को धारण करता है ।।३७।। प्राणाख्य पाच वृत्तियाँ होती है और जो इन्द्रियो की वृत्तियो से प्रेयमाण होती हुई शरीरो को धारण करती है ।।३ ।। आकाश योनि वाला गुण शब्द और स्पर्श से समन्वित होता है । मनीषियो के द्वारा यह भाव तमस प्रकृति वाला भी कहा गया है ।।३९।। मान वाला भगवान् वायु देव अत्यधिक क्रिया के स्वरूप वाला होता है । यह शब्द शास्त्र के पण्डित तथा पुराणो के ज्ञाता ने पुराणो के आश्रय से युक्त परम मधुर वाणी के द्वारा अच्छे मन वाले समस्त मुनियो को परमाह्लाद से पूर्ण करते हुए वातारणि का वर्णन किया ।।४ ।।४१।।

।। प्रजापति सृष्टि कथन ।।

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरप्रभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ॥१
प्रजापतीन् लोकनमस्कृतां स्तथा स्वयम्भुरुद्रप्रभृतीन् महेश्वरान् ।
भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ॥२
वसिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान् रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ॥३
तपश्च शुक्रोशनमेकविंशतिं प्रजा विवृद्धयार्पितकायशासनम् ।
पुरातनानप्यपराश्च शाश्वतास्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ॥४
तथैव चान्यानपि धर्मशोभिनो मुनीन् बृहस्पत्युशनः पुरोगमान् ।
तपः शुभाचारऋषीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ॥५

प्रजापते सृष्टिमिमामनुत्तमा सुरेश देवर्षिगणैरलङ्कृताम् ।
शुभामतुल्यामनघामृषिप्रिया प्रजापतीनामपि चोल्बणाच्चिषाम् ॥६
तपोभृता ब्रह्मदिनादिकालिकी प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम् ।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृता परा पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥७

सूतजी ने कहा—समस्त देवो मे परम श्रेष्ठ, अपरिमित बुद्धि के तेज वाले, सहस्रो सूर्यों के अनल के तुल्य वर्चस वाले, उत्तम वीर्य के कर्म करने वाले महेश्वर भगवान के लिये नमस्कार है और तीनो लोको के सहार की विसृष्टि करने वालो के लिये नमस्कार है ॥१॥ समस्त लोको के वन्दनीय प्रजापतियो को तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) और रुद्र प्रभृति महान् ईश्वरो को एव भृगु, मरीचि, परमेष्ठी और रज तथा तम के धम वाले मनु को और कश्यप को भी नमस्कार है ॥२॥ वशिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य और कर्दम को और रुचि, विवस्वान् तथा क्रतु एव आगिरस मुनि तथा प्रजापति को नत-मस्तक से प्रणाम करके पुलह को भाव सहित नमस्कार है ॥३॥ उसी भाँति प्रजा की विशेष वृद्धि के लिये कार्य-शासन को अर्पित कर देने वाले इक्कीस चुक्रोश धन को नमस्कार है और दूसरे पुरातनो को, नित्य निवास करने वालो को तथा गणो के सहित अवस्थित अन्यो को नमस्कार है ॥४॥ इसी प्रकार से धैर्य की शोभा वाले बृहस्पति एव उशना जिनके अग्रेसर है, ऐसे अन्य मुनियो को, दया से युक्त तपश्चर्या एव शुभ आचार वाले ऋषियो को प्रणाम करके कलियुग के पापो के नाश करने वाली प्रजापति की सृष्टि को कहता हूँ ॥५॥ यह प्रजापति की सृष्टि सर्वोत्तम है और सुरेश तथा देवर्षियो के समूह ने अलकृत है। यह सृष्टि परम शुभ, अनुपम, निष्पाप और ऋषियो की अति प्रिय है एव अत्यन्त तीव्र कान्ति वाले प्रजापतियो की भी प्यारी है ॥६॥ जो तपस्वी लोग है,उनकी भी प्रिय है। ब्रह्मा के दिन से भी अधिक काल वाली है। यह सृष्टि ऐसी है, जिसने अत्यधिक पुरुषार्थ की श्री का आविष्कार किया है तथा श्रुति एव स्मृति मे प्रसृत एव उदाहृत है। यह परे से भी परे है और वायु के द्वारा प्रकीर्तित है ॥७॥

समासवन्धैर्निगतैर्यथातथ विशब्दनेनापि मन प्रहर्षिणीम् ।
यस्याञ्च बद्धा प्रथमा प्रवृत्ति प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥८

यत्तत् स्मृत कारणमप्रमेय ब्रह्म प्रधान प्रकृतिप्रसूति ।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षु क्षेत्र तथवामृतमक्षरञ्च ॥९
शुक्र तप सत्त्वमतिप्रकाश तदृष्टि नित्य पुरुष द्वितीयम् ।
तमप्रमेय पुरुषण युक्त स्वयम्भुवा लोकपितामहेन ॥१०
उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकात् कालस्य योगान्नियमावधेश्च ।
क्षेत्रज्ञयुक्तान् नियतान्विकारान् लाकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून् ।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥११
देवासुराद्रिद्रुमसागराणा मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम् ।
पिशाचयक्षोरगराक्षसाना ताराग्र हार्कर्क्षनिशाचराणाम् ॥१२
मासर्तु सवत्सरराश्यहाना दिक्कालयोगादियुगायनानाम् ।
वनौषधीनामपि वीरुधाञ्च जलौकसामप्सरसो पशूनाम् ॥१३
विद्युत्सरित्मेघविहङ्गमाना यत्सूक्ष्मग यद्भुवि यद्विमत्स्यम् ।
यत् स्थावर यच्च यदस्ति किञ्चित् सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्ति ॥१४

यथातथ अर्थात् समुचित रूप से नियत समास अर्थो के द्वारा बिना ध्वनि के भी मन को परम प्रहर्ष देने वाली है । जिसमे प्रधान की प्रथम प्रवृत्ति और ईश्वरत्वादिता बद्ध हो रही है ॥८॥ जो ब्रह्मा का अविषय कारण कहा गया है, वह ब्रह्म तथा प्रकृति की प्रसूति प्रधान है । गुहा की योनि वाला आत्मा चक्षु, क्षेत्र अमृत और अक्षर शुक्र तप और अति प्रकाश वाला सत्व एव वह पृथक् नित्य द्वितीय पुरुष को पुरुष के द्वारा अप्रमेय लोको के पितामह स्वयम्भू से युग उस पुरुष को उत्पादक होने से रजोगुण के अतिरेक से काल के योग से और नियम की अवधि से लोक की सन्तान की विशेष वृद्धि के हेतु स्वरूप क्षेत्रज्ञ से युक्त नियत विकारो को महेश्वर के सङ्कल्प मात्र से आठ प्रकृति की अवस्था को उत्पन्न किया ॥९॥१ ॥११॥ देव असुर अद्रि द्रुम सागरो को—मनु, प्रजा ईश ऋषि, पितृगण और द्विजो की—पिशाच, राक्षस उरग और यक्षो की—तारा ग्रह अर्क ऋक्ष और निशाचरो की—मास ऋतु सम्वत्सर रात्रि और दिवसों को—दिशा काल योगादि युग और अयनों को—वन की औषधियो की—वीरुधो की—जल मे घर वालो की—

अप्सराओं की—पशुओं की—विद्युत, सरित (नदी), मेघ और विहगमो की स्थिति मे जो सूक्ष्म गमन करने वाला है, जो भूमि मे है और जो नभ मे स्थित है तथा जो स्थावर है, जहाँ भी जो कुछ है उस सब की गति विभक्ति ही है ॥१२॥१३॥१४॥

छन्दासि वेदा· सऋचो यजू सि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञ ।
आजीव्यमेषा यदभीप्सितश्च देवस्य तस्यैव च वै प्रजापते ॥१५
वैवस्वतस्यास्य मनो. पुरस्तात् सम्भूतिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।
येषामिद पुण्यकृता प्रसूत्या लोकत्रय लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधीनामापूरितञ्चोपरिभूषितञ्च ॥१६
रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वास क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभ ॥१७
मन्वन्तराणा परिवर्त्तनानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च सप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥१८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्रक्रमशो निबद्धा ।
कल्पस्य सख्या भुवनस्य सख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य सख्या ॥१९
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजाना धर्मात्मना स्वर्गनिवासिना वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्केण तेषामपि च प्रमाणम् ॥२०
आत्यन्तिक प्राकृतिकश्च योऽय नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतु ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च ससारगति परा च ॥२१
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुन प्रवृत्ति ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात् समस्तमाविष्कृतधीधृतिभ्य ।
विप्रा ऋषिभ्य समुदाहृत यद्यथातथ तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२२

छन्द, वेद, ऋचाओ के सहित यजु, साम और सोम तथा यज्ञ इन सबका आजीव्य और जो भी इनका अभीप्सित है, वह सब उसी प्रजापति देव का निश्चित रूप से होता है ॥१५॥ पहिले इस वैवस्वत मनु की सम्भूति कही गई है और उनका प्रसव अर्थात् जन्म भी कहा गया है। ये तीनो लोक लोको के द्वारा वन्दनीय सुरेश, देवर्षि, मनु आदिको की प्रसूति से अर्थात् परम पुण्य

कालियो के जन्म से समस्त तीनो लोक परिपूरित है और भूषित भी है ।।१६।। इस मनुष्य लोक मे रुद्र के शाप से दक्ष का पनर्जन्म अथवा भूमण्डल मे निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिशाप प्राप्त हुआ ।।१७।। मन्वन्तरो का परिवर्तन युगो मे उनकी सम्भूति (उत्पत्ति) और विकल्पन तथा युगो मे ऋषित्व और आर्ष की सम्प्रवृद्धि हुई वसी ही यहाँ पर भी हुई ।।१८।। जिन व्यासदेव ने द्वापर मे वेदो का विस्तार किया वे यहाँ पर भी क्रमश निबद्ध है । कल्प की सख्या है भुवन की सख्या है और ब्रह्मा के दिन की भी सख्या होती है ।।१६।। जीवो की जो अण्डज है उद्भिज है स्वेदज है और जरायुज है धर्मात्मा है या स्वग के निवास करने वाले जीव है और जो यातना सहने के लिये यातना स्थान (नरक) मे पडे हुए है तक से उन सबका भी प्रमाण है ।।२ ।। आत्यन्तिक प्राकृतिक और नमित्तिक जो यह प्रतिसग का हेतु है तथा बन्ध और विशेष कर मोक्ष इनमे यहाँ पर परा ससार की गति बताई गई है ।।२१।। प्रकृति मे अवस्थित कारणो मे जो स्थिति होती है अथवा जो प्रवृत्ति होती है हे विप्रो ! वह शास्त्र की युक्ति से अपनी बुद्धि के प्रयत्न से समस्त धर्म और बुद्धि को आविष्कृत करने वाले ऋषियो के लिये जो भली भाँति समझा कर कहा गया है अब आप लोग कहे जाने वाले उस सबको श्रवण करो ।।२२।

।। हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति ।।

ऋषयस्तु तत श्रुत्वा नमिषारण्यवासिन ।
प्रत्यूचुस्ते तत सर्वे सूत पर्याकुलेक्षणा ।।१
भवान् व वशकुशलो व्यासात् प्रत्यक्षदर्शवान् ।
तस्मात्त्व भवन कृत्स्नं लोकस्यामुष्य वर्णय । २
यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषा पूर्वविसृष्टि च विचित्रा तां प्रजापते ।।३
असकृत्परिपृष्टस्तमहात्मा लोमहर्षण ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तम ।।४

पृष्टा चैता कथा दिव्या श्लक्ष्णा पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रा बह्वर्था श्रुतिसम्मताम् ॥५
यश्चेमाधारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषत: ॥६
शुचि पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ।
स्ववशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥७

नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियो ने यह सुनकर इसके अनन्तर पर्याकुल नेत्रो वाले उन सबने सूतजी से कहा ॥ १ ॥ महा महर्षि व्यास जी से प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण से आप निश्चय ही वश कुशल महापुरुष हैं, इसलिये आप इस लोक का सम्पूर्ण भवन का हमारे सामने वर्णन करे ॥ २ ॥ जिस जिसके जो जो अन्वय (वश) हैं और उनकी प्रजापति की विचित्र पूर्वकालीन ऋषियो की सृष्टि को तथा अन्वयो को हम जानना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर महात्मा लोमहर्षणजी, जो कि सत्पुरुषो में परमश्रेष्ठ हैं उसे विस्तार से तथा आनुपूर्वी से कहने लगे ॥ ४ ॥ लोमहर्षण जी ने कहा—मुझ से पूछी गयी यह कथा अत्यन्त दिव्य-मधुर और पापो के नाश करने वाली है और अब मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा सर्वथा श्रुति (वेद) से सम्मत, गहरे अर्थ से परिपूर्ण और अति विचित्र है । जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण करेगा अथवा कई बार श्रवण करेगा और ब्राह्मणो को श्रवण करायेगा तथा विशेष रूप से यतियो को सुनायेगा और देवायतनो मे, पर्व दिनो में पवित्र तथा समाहित होकर श्रवण करायेगा वह इस पुराण के अनुकीर्त्तन करने से दीर्घ आयु को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और अपने वश को धारण करके स्वर्गलोक मे जाकर अन्त मे प्रतिष्ठित होता है ॥ ५—६—७ ॥

विस्तारावयव तेषा यथाशब्द यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमान निबोधध्व सर्वेषा कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥८
धन्य यशस्य शत्रुघ्न स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनन् ।
कीर्त्तन स्थिरकीर्त्तीना सर्वेषा पुण्यकारिणाम् ॥९

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१०
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसम्मितम् ॥११
प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः ॥१२
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्त्तिता मया ।
वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥१४

उनके विस्तार के अङ्ग को जिन शब्दों मे जैसा भी मैंने सुना है वह अब मेरे द्वारा कीर्त्तित किया जा रहा है आप उसे समझ लेवें यह सबकी कीर्त्ति का बढ़ाने वाला है ॥ ८ ॥ परम पुण्यकारी और स्थिर कीर्त्ति वाले सबको यह कीर्त्तन धन यश के बढाने वाला है शत्रुओं का नाशक स्वर्ग प्रदान कराने वाला और आयु की वृद्धि कराने वाला है ॥ ६ ॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं पुराण मे सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँचो होते हैं तभी वह पूर्ण लक्षण सम्पन्न पुराण कहा जाता है ॥ १० ॥ कल्पों के भी जो कल्प है और शुचियों का भी जो नियत शचि है ऐसा वेद से सम्मत यह मारुत पुराण मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ प्रबोध-प्रलय स्थिति और उत्पत्ति ये प्रक्रिया प्रथम पाद है। कथन के योग्य वस्तु का परिग्रहण उपोद्घात अनुषङ्ग और उपसंहार होता है। यह धर्म से युक्त या धर्म देने वाला यश दाता आयु वर्द्धक और सब प्रकार के पापों का नाशक होता है ॥१२—१३ ॥ इस प्रकार से मैंने संक्षेप में चार पादों को बतला दिया है पुनः इनको क्रमानुसार विस्तार के साथ कहूँगा ॥ १४ ॥

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥१५

महदाद्य विशेषान्त सवैरूप्य सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाण षट्श्वेत पुरुषाधिष्ठित नुतम् ।
असशयात् प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥१६
अव्यक्त कारण यत्तु नित्य सदसदात्मकम् ।
प्रधान प्रकृति चैव यमाहुस्तत्त्व चिन्तका ॥१७
गन्धवर्णरसैर्हीन शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ।
अजात ध्रुवमक्षय्य नित्य स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८
जगद्योनि महद्भूत पर ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रह सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥१९
अनाद्यन्तमज सूक्ष्मन्त्रिगुण प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेय ब्रह्मागे समवर्त्तत ॥२०
तस्यात्मना सर्वमिद व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥२१
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥२२

उस हिरण्यगर्भ पुरुष और ईश्वर के लिये—अन्त रूप और प्रथम स्वरूप वाले के लिये - विशेषताओ से युक्त और प्रजाजन के लिये—लोकतन्त्र, स्वयम्भू ब्रह्मा जी के लिये नमस्कार करके ॥ १५ ॥ मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ इस भूत सर्ग को बिना किसी सशय के कहता हूँ जिसके आदि मे महत् है, अन्त में विशेष है, वैरूप्य से युक्त है और लक्षण के सहित है तथा पाँच प्रमाण वाला है, षट्श्वेत युक्त है एव पुरुष से अधिष्ठित है और वन्दित है ॥ १६ ॥ और जो इसका अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। तत्वो के चिन्तन करने वाले पुरुष उसे प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥ १७ ॥ अब उस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वह अव्यक्त गन्ध-वर्ण और रस से रहित है तथा शब्द और स्पर्श से भी हीन होता है। वह अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य और अपनी ही आत्मा में अर्थात् स्वरूप में अवस्थित है ॥ १८ ॥ वह अव्यक्त इस जगत् का योनि, महद्भूत, सनातन, पर और ब्रह्म है। समस्त

प्राणियों का विग्रह ऐसा अव्यक्त हुआ था ॥ १९ ॥ जिसका न आदि है और न अन्त ही है ऐसा अनन्त अजस्र त्रिगुण प्रभवाव्यय असाम्प्रत और अविज्ञय अर्थात् न जानने के योग्य अव्यक्त ब्रह्म के आगे आया ॥ २ ॥ उसकी आत्मा से अर्थात् स्वरूप से यह सब अन्धकारमय व्याप्त था। उस समय सृजन के काल मे गुण साम्य अर्थात् गुणो की समष्टि मे और तमोमय गुण भाव मे क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुण भाव से वाच्यमान महान् प्रादुर्भूत हुआ अर्थात् उत्पन्न हुआ ॥ २१—२२ ॥

सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृत ।
सत्वोद्रिक्तो महानग्र सत्वमात्रप्रकाशकम् ।
मनो महांश्च विज्ञेयो मन स्तत्कारण स्मृतम् ॥२३
लिङ्गमात्रसमुत्पन्न क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु स ।
धर्मादीनान्तु रूपाणि लोकतत्वार्थहेतव ।
महांस्तु सृष्टि कुरुते नोद्यमान सिसृक्षया ॥२४
मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धि ख्यातिरीश्वर ।
प्रज्ञा चिति स्मृति संवित् विपुर चोच्यते बुध ॥२५
मनुते सर्वभूताना यस्मा च्चेष्टाफल विभु ।
सौक्ष्मत्वेन विबुद्धाना तेन तन्मन उच्यते ॥२६
तत्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणत ।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति तत स्मृत ॥२७
बिभर्ति मान मनुते विभाग मन्यतेऽपि च ।
पुरुषो भोगसम्बन्धात् तेन चासौ मति स्मृत ॥२८

अव्यक्त और सूक्ष्म महत् से समावृत वह सत्व के उद्रेक वाला महान् आगे हुआ जो केवल सत्व का प्रकाश करने वाला था। वह महान् मन ही समझना चाहिये क्योंकि मन ही उसका कारण कहा गया है ॥ २३ ॥ वह क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित महान् लिङ्गमात्र उत्पन्न हुआ। धर्म आदि के रूप तो लोक तत्वार्थ के हेतु है। सृजन करने की इच्छा से प्रेरित किया हुआ वह महान् सृष्टि को करता है ॥ २४ ॥ विद्वानो के द्वारा यह महान् मन मति ब्रह्मा

बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संवित् और विपुर कहा जाता है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मता से विशेष बढ़े हुए समस्त भूतों की चेष्टा के फल को यह विभु अवबोधित करता है इसी कारण से यह मन कहा जाता है ॥ २६ ॥ यह समस्त अन्य तत्वों के पहिले उत्पन्न हुआ है और परिणाम में महान् अर्थात् बड़ा है तथा शेष अन्य गुणों से भी बड़ा है इसीलिये इसे महान् कहा गया है ॥ २७ ॥ मान को धारण करता है और विभाग को समझता है तथा भोग के सम्बन्ध से पुरुष भी मानता है इसलिये यह 'मति' इस नाम से कहा गया है ॥ २८ ॥

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च भावाना सलिलाश्रयात् ।
यस्माद्बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ॥२६
आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान् देहाननुग्रहै ।
तत्वाभावाश्च नियता स्तेन पूरिति चोच्यते ॥३०
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वभावान् हिताहितान् ।
यस्मादवबोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते ॥३१
ख्याति प्रत्युपभोगश्च यस्मात् संवर्त्तते तत ।
भोगश्च ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृत ॥३२
ख्यायते तद्गुणैर्वापि नामादिभिरनेकश ।
तस्माच्च महत सज्ञा ख्यातिरित्याभिधीयते ॥३३
साक्षात् सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वर ।
तस्ताज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥३४
ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च ।
चिनोति यस्माद्भोगार्थान्तेनासौ चितिरुच्यते ॥३५

बृहत् का भाव होने से और बृंहणत्व के कारण से तथा भावों के सलिलाश्रय होने से यह भावों को बृंहित करता है इसीलिये इसे ब्रह्म कहा जाता है ॥ २९ ॥ इसी कारण से कि यह अनुग्रहों के द्वारा समस्त देहों का तथा नियत तत्वभावों का आपूरण किया करता है इसका नाम 'पू'—यह कहा जाता है ॥ ३० ॥ इसमें पुरुष हित और अहित सभी भावों को जानता है और जिससे ज्ञान प्राप्त किया करता है इसलिये इसका नाम "बुद्धि"—यह कहा

जाता है ॥ ३१ ॥ ख्याति और प्रत्युपभोग जिससे होते हैं तथा ज्ञान की निष्ठता होने से भोग होता है इसीलिये यह ख्याति कहा जाता है ॥ ३२ ॥ उसके गुणों के द्वारा अनेक नामादि से यह ख्यात होता है इसीलिये इस महत् की 'ख्याति' यह संज्ञा कही जाती है ॥ ३ ॥ यह सभी कुछ को साक्षात् रूप से जानता है इसीलिये इस महात्मा का ईश्वर नाम होता है। और इससे समस्त प्रजाओं की उत्पत्ति हुई है अतएव यह प्रज्ञा—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३४ ॥ ज्ञान आदि के रूप और क्रतु कर्म के फल को तथा भोगार्थों को जो चयन करता है इसीलिये वह चिति—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३५ ॥

वर्त्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।
तस्माद्विद्वेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥३७
विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्वं तस्मिश्च विद्यते ।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरैः ॥३८
ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याहुर्भगवान् ज्ञानसंनिधिः ।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरः प्रोच्यते बुधैः ॥३९
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः ।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥४०
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः ।
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः ॥४२

वर्त्तमान भूत और अनागत समस्त कार्यों का स्मरण इसके द्वारा किया जाता है इसलिये यह स्मृति—इस नाम वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ करता है इससे माहात्म्य कहा जाता है और पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता होने से इसका नाम संवित् कहा जाता है ॥ ३७ ॥ वह सभी मे

विद्यमान रहता है और सभी कुछ इसमे विद्यमान है इसीलिय श्रेष्ठ बुद्धि वालो के द्वारा यह महान् 'सन्विद' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञान होने से इसे 'ज्ञान' यह कहा जाता है और ज्ञान की अच्छी निधि होने के कारण 'भगवान्' कहा जाता है। समस्त द्वन्द्वो के विपरीभाव होने के कारण बुधो के द्वारा इसका नाम 'विपुर'—यह कहा जाता है ॥ ३९ ॥ लोको का सबसे बड़ा ईश होने के कारणवश ही इस महत् का नाम 'ईश्वर'—यह हुआ है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा'—यह कहा गया है और भूतत्व भाव इसमे रहने से इसे 'भव'—यह कहा जाता है ॥ ४० ॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विशेष ज्ञान होने मे और एकत्व होने से उसे 'क'—यह कहा जाता है। क्योंकि वह पुरी में अनुशयन क्रिया करता है अतएव उसका नाम 'पुरुष'—यह कहा जाता है। वह किसी के द्वारा उत्पादित नही हुआ है और पूर्ववर्त्ती है इसीलिये 'स्वयम्भू'—इस नाम वाला है ॥४१॥ तत्वभाव के ज्ञाता तथा सद्भाव के चिन्तन करने वालो के द्वारा पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक द्योतक तत्व-आद्य और उत्तमम्—इन शब्दो से व्याख्या की गई है ॥ ४२ ॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमान सिसृक्षया ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वय स्मृतम् ॥४३
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतव ।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेय सत्वराजसतामस ॥४४
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
महता चावृत सर्गो भूतादिविकृतस्तु स ॥४५
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु स ॥४६
आकाश शुषिर तस्मादुद्रिक्त शब्दलक्षणम् ।
आकाश शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुन ॥४७
शब्दमात्रन्तदाकाश स्पर्शमात्र ससर्ज ह ।
भूतादिस्तु विकुर्व्वाण शब्दमात्र ससर्ज ह ॥४८
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणोमत ।
आकाश शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्र समावृणोत् ॥४९

सृजन करने की इच्छा से जब इस महान् को प्रेरणा दी जाती है तो यह इस जगत् की सृष्टि किया करता है। उसकी सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो प्रकार की वृत्ति कही गई है। मानसिक कर्म का नाम सङ्कल्प और लगातार श्रम से कार्य करने को अध्यवसाय कहते हैं ॥ ४३ ॥ धर्म आदि के रूप लोक के तत्वार्थ के हेतु होते हैं। वह सात्विक राजस और तामस प्रकार से तीन गुणों वाला समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस त्रिगुण स्वरूप से जब रजोगुण का उद्र क होता है तो उससे महङ्कार हुआ है। वह सर्ग महत् से आवृत है और भूतादि से विकृत स्वरूप वाला होता है ॥ ४५ ॥ तमोगुण के उद्रक वाले उस अहङ्कार से भूतों की तन्मात्राओं का सर्ग होता है। वह भूतादि वाला उसका तामस स्वरूप है। ४६ ॥ उससे शब्द लक्षण वाला आकाश शुषिर उत्पन्न हुआ। शब्द मात्र आकाश को फिर भूतादि ने आवृत कर लिया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर शब्द मात्र आकाश को स्पर्श मात्र सृजन किया। विकृत रूप वाले होते हुये भूतादि ने स्पर्श मात्र का सृजन किया ॥ ४८ ॥ फिर बल वाला वायु उत्पन्न होता है जिसका एक मात्र गुण स्पर्श ही कहा गया है। शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र वायु को समावृत कर लिया था ॥ ४९ ॥

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत ।
आपो रसान् विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससज्जिरे ॥५०
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः ।
रसमात्रं तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत ॥५१
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः ।
अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥५२
भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् ।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् ।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते ॥५३
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥५४

श्रोत्र त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥५५
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्द शिल्प वाक्यञ्च कर्म च ॥५६

जल केवल रस मात्र होता है जो कि रूप मात्राओं से आवृत हुआ था। जल ने रसों का विकार करते हुये गन्धमात्रा का सृजन किया ॥ ५० ॥ उससे सङ्घात की उत्पत्ति होती है जिसका गुण गन्ध होता है। रस मात्रा वाले जल ने गन्ध मात्रा वाले को समावृत कर लिया था ॥ ५१ ॥ उस उसमे जो तन्मात्रा है उससे उसकी तन्मात्रता कही गयी है। अविशेष वाचक होने से सब ये अविशेष कहे गये हैं। अशान्त, घोर और मूढ होने से फिर अविशेष कहे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार परस्पर से यह भूत तन्मात्र का सर्ग जानना चाहिये। वैकारिक अर्थात् विकारयुक्त अहङ्कार से और सत्व के उद्रेक वाले सात्विक से वह वैकारिक सर्ग एक साथ सम्प्रवृत्त होता है ॥ ५३ ॥ पाँच बुद्धीन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानार्जन करने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच साधक कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् केवल कर्म करके ज्ञानार्जन करने वाली इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इनके दश के दश ही अधिष्ठाता देव होते हैं जो वैकारिक कहे जाते हैं। उन दश उपर्युक्त इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है। वहाँ वैकारिक देव होते हैं ॥५४। अब उन समस्त उक्त इन्द्रियों के विषय मे बतलाते है। श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और पाँचवी इन्द्रिय नासिका है। ये सब शब्दादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होती है इसीलिये बुद्धीन्द्रिय कहा जाता है ॥ ५५ ॥ दोनों चरण, पायु अर्थात् गुदा-उपस्थ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय दोनों, हाथ और दशवी वाक् ये इन्द्रियाँ इस तरह हैं। इनका क्रम से कमगति-विसर्ग अर्थात् मल का त्याग, आनन्द अर्थात् रमण सुख, शिल्प अर्थात् दस्तकारी और वाक्य कथन होता है ॥५६॥

आकाश शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्र समाविशेत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायु शब्द स्पर्शात्मकोऽभवत् ॥५७
रूपन्तथैव विशत शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्नि स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥५८

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिका ॥५९
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसस्तेषु समाविशत् ।
संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूलभूतेषु दृश्यते ॥६०
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ।
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥६२
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावच्च यच्चैव तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥६३
उपलभ्याप्सु वै गन्धं केचिद्ब्रूयुरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तद्विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ॥६४

शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रा वाले वायु में समावेश करता है। अत एव वायु स्पर्श और शब्द इन दो गुणों वाला हो गया ॥ ५७ ॥ शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण उसी प्रकार से रूप में समावेश करते हैं। इसलिये अग्नि शब्द-स्पर्श और रूप इन तीन गुणों वाला हो गया ॥ ५८ ॥ इसी रीति से शब्द स्पर्श और रूप रस तन्मात्रा वाले जल में समाविष्ट हो गये। इसलिये जल शब्द स्पर्श रूप और रस इन चार गुणों वाला हो गया ॥ ५९ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस इनमें गन्ध का समावेश हो गया। किन्तु मही को केवल गन्ध से ही निर्धारित किया करते हैं। वस्तुतः यह भूमि पाँच गुणों वाली स्थूल भूतों में दिखलाई देती है ॥ ६० ॥ शान्त घोर और मूढ़ हैं अतएव ये विशेष कहे गये हैं। ये परस्पर में अनुप्रवेश करने से परस्पर को धारण किया करते हैं ॥६१॥ लोकालोक घन के आवृत यह सब भूमि के अन्दर है। विशेष इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं नियत होने से वे कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ पूर्व पूर्व के गुण उत्तर से उत्तर को प्राप्त होते हैं। उनका जितना और जो है वह उतना ही गुण कहा गया है ॥ ६३ ॥ कुछ लोग वायु के गन्ध को प्राप्त कर निपुणता के

अभाव से उसे वायु का ही गण मान लेते है किन्तु ऐसा नहीं है। इसे पृथिवी का ही समझना चाहिये और वायु मे तो केवल उसका संश्रय हो जाता है ॥ ६४ ॥

एते सप्त महावीर्या नानाभूता पृथक् पृथक् ।
नाशक्नुवन् प्रजा स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नश. ।
ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात् ॥६५
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६६
एककाल समुत्पन्न जलबुद्बुदवच्च तत् ।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् वृहत्तदुदक च यत् ।
तत्तस्मिन् कार्यकरण संसिद्ध ब्रह्मणस्तदा ॥६७
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञित ।
स वै शरीरी प्रथम· स वै पुरुष उच्यते ॥६८
आदिकर्त्ता च भूताना ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ।
हिरण्यगर्भ सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुख ।
सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञित ॥६९
करणै सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च ।
भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु ॥७०
हिरण्मयस्तुयो मेरुस्तस्योल्ब तन्महात्मन ।
गर्भोदक समुद्राश्च जराय्वस्थीनि पर्वता ॥७१

ये सात महान् वीर्य वाले हैं और पृथक् पृथक् अनेक भाँति के होते हैं। पूर्णरूप से न मिलकर प्रजा की सृष्टि करने मे समर्थ नही हुए ये सब महान् आत्मा वाले अन्यो य के अर्थात् एक दूसरे के संश्रय से मिलकर पुरुष के अधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक ये सब अण्ड को उत्पादित किया करते हैं ॥६५-६६॥ एक ही काल मे वह जल के बुदबुदे की भाँति समुत्पन्न हुआ और विशेषो से अण्ड के स्वरूप में हुआ। फिर वह और उदक वृहत् हुआ और उसमे उस समय ब्रह्मा

को कार्य करणता सिद्ध हुई ॥६७॥ प्राकृत अण्ड के विबुद्ध होने पर क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला हुआ। वही सर्वप्रथम शरीरधारी है और वही पुरुष—इस नाम से कहा जाता है ॥६८॥ भूतों का अर्थात् प्राणियों का आदिकर्त्ता अर्थात् सर्वप्रथम सृजन करने वाला पहिले ब्रह्मा हुए। यह हिरण्यगर्भ इसमें आगे चार मुखों वाला प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ। और सर्ग प्रति-सर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है ॥६९। इन्द्रियों के साथ सृजन किये जाते हैं और प्रत्याहार में त्याग देते हैं तथा फिर असमाहार सन्धियों में देहों को धारण कर लेते हैं। ॥७०॥ उस महान् आत्मा का उल्वता हिरण्मय मेरु की है समुद्र गर्भ का जल है और जरायु अस्थियाँ पर्वत है ॥७१॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त वै।
सप्तद्वीपा च पृथ्वीयं समुद्रैः सह सप्तभिः ॥७२
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः।
अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ॥७३
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना।
लोकालोकं च यत् किञ्चिदाण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥७४
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणा ह्यवन्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥७५
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥७६
आकाशेन वृतो वायुः खं च भूतादिना वृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान्।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥७७
एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥ ८

उस अण्ड में ये सातों लोक अन्तर्भूत है अर्थात् उस के अन्दर रहते हैं। सात द्वीप और सातों समुद्रों के सहित यह भूमण्डल बड़े विशाल पर्वत सहस्रों की संख्या वाली नदियाँ—ये सब उसी के अन्तर्भाग में हैं। ये सब लोक और

यह सम्पूर्ण जगत् तथा समस्त विश्व उसके ही अन्दर होते हैं ॥७२-७३॥ चन्द्रमा और सूर्य समस्त नक्षत्रो के साथ तथा सम्पूर्ण ग्रहो के सहित उसमे हैं और वायु के साथ लोकालोक जो कुछ भी है उसी अण्ड मे समर्पित है ॥७४॥ यह अण्ड बाहिर से दश गुने जल से समावृत है और फिर जल से दश गुने तेज से इसी प्रकार बाहिर से आवृत है ॥७५॥ इसी भाँति तेज जितना है उससे दश गुना वायु से आवृत होता है और वायु से दश गुना उसके बाद आकाश से आवृत होता है ॥७६॥ वायु से आकाश से आवृत है और नभ भूतादि से आवृत है। भूतादि सब महान् से तथा यह महत् अव्यक्त से आवृत होता है। इस प्रकार से यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणो से आवृत होता है ॥ ७॥ इन सब को अन्योन्य को आवृत करके आठ प्रकृतियाँ स्थित होती हैं। प्रसर्ग के काल में ये स्थित होकर परस्पर मे ग्रसती हैं ॥७८॥

एव परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ॥७९
अव्यक्त क्षेत्रमुद्दिष्ट ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
इत्येष प्राकृत सर्ग क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु स ।
अबुद्धिपूर्व प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ॥८०
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वत ।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्य प्रजावाश्च भवत्युत ॥८१
निवृत्तिकामोऽपि नर शुद्धात्मा लभते गतिम् ।
पुराणश्रवणान्नित्य सुख च क्षेममाप्नुयात् ॥८२

इस रीति से परस्पर मे उत्पन्न होती हुई परस्पर मे ही ये धारण किया करती हैं। विकार वालो मे विकार का आधार आधेय भाव होता है ॥७९॥ यहाँ इस अव्यक्त को क्षेत्र बताया गया है, ब्रह्मा इसका क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही प्राकृत-सर्ग होता है जो कि क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित होता है। यह पहिले अबुद्धि पूर्व वाला था और जिस तरह अचानक बिजली चमक कर दिखलाई दिया करती है उसी तरह यह प्रादुर्भूत हुआ ॥८०॥ इस हिरण्यगर्भ के जन्म को तत्त्व बुद्धि पूर्वक ठीक-ठीक जो जानता है वह आयु वाला-कीर्त्ति वाला-धन्य

और प्रजा वाला होता है ॥८१॥ जो मानव निवृत्ति की ही कामना रखता है वह भी शुद्ध आत्मा वाला अच्छी गति को प्राप्त करता है। पुराण के नित्य श्रवण करने से सुख और क्षेम की प्राप्ति होती है ॥८२॥

॥ सृष्टि रचना और उसकी शक्तियाँ ॥

यद्धि सृष्टस्तु सख्यात मया कालान्तरन्द्विज ।
एतत कालान्तर ज्ञयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥१
रात्रिस्त्वेतावती ज्ञ या परमेशस्य कृत्स्नश ।
अहस्तस्य तु या सृष्टि प्रलयो रात्रिरुच्यते ॥२
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ।
उपचार प्रक्रियते लोकाना हितकाम्यया ॥३
प्रजा प्रजानाम्पतय ऋषयो मुनिभि सह ।
ऋषीन् सनत्कुमाराद्यान् ब्रह्मसायुज्यग सह ॥४
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।
तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह ॥५
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमत ।
अहरन्ते प्रलीयन्ते राज्यन्ते विश्वसभव ॥६
स्वात्मन्यवस्थिते सत्वे विकारे प्रतिसहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥७

श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! यह मैंने जो सृष्टि के कालान्तर की सख्या की है यह कालान्तर परमेश्वर का दिन समझना चाहिए ॥१॥ परमेश्वर की रात्रि भी इतनी ही जाननी चाहिए उसका जो दिन होता है वही सृष्टि का काल होता है और जो रात्रि होती है वह प्रलय कहा जाता है ॥२॥ उसका दिन तो होता है किन्तु रात्रि नहीं होती है—यह धारणा लोकों के हित की कामना से उपचार किया जाता है ॥३॥ प्रजा-प्रजाओं के पति—ऋषिवृन्द मुनियों के सहित—सनत्कुमारादि नाम वाले ब्रह्म सायुज्य को पाने वालों के सहित समस्त इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के सब अर्थ अर्थात् विषय—पञ्चमहाभूत पाँच तन्मात्रा इन्द्रियों का समुदाय और मन के साथ बुद्धि ये सब परमेश्वर के

दिन के समय मे रहा करते हैं और उस धीमान् परमेश्वर के दिन के अन्त समय मे य सब प्रलीन हो जाते है फिर जब रात्रि का अवसान होता है तो इस विश्व की उत्पत्ति हो जाती है ॥४-५-६॥ अपनी आत्मा मे सत्त्व के अव-स्थित होने पर और विकार प्रतिसहृत हो जाने पर प्रधान और पुरुष दोनो साधर्म्य से अवस्थित रहा करते है ॥७॥

तम सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अत्रोद्रिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥८
तिलेषु वा यथा तैल घृत पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽव्यक्ताश्रित स्थितम् ॥६
उपास्य रजनी कृत्स्ना परा माहेश्वरी तदा ।
अहर्मुखे प्रवृत्ते च पुर प्रकृतिसम्भव ॥१०
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वर ।
प्रधान पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्ड महेश्वर ॥११
प्रधानात् क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्त्तत ।
रज प्रवर्त्तक तत्र वीजेष्वपि यथा जलम् ॥१२
गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिता ।
गुणेभ्य क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
आश्रिता परमा गुह्या सर्वात्मान शरीरिण ॥१३
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्नि सत्त्व विष्णुरजायत ।
रज प्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थित ॥१४

तमोगुण और सत्त्वगुण ये दोनो समत्व रूप से व्यवस्थित हैं। यहीं पर ये दोनो उद्रेक वाले होते हैं और परस्पर मे प्रसूत होते हैं। जब गुणो का साम्य हो अर्थात् दोनो गुण समान स्वरूप मे स्थिति रखने वाले होते हैं तो सृष्टि का लय समझ लेना चाहिए। जब इनकी विषमता का भाव होता है तो उसे ही सृष्टि कहा जाता है ॥८॥ वस्तुत स्पष्ट दर्शन मे ये दो ही गुण आते हैं सत्त्वगुण और तमोगुण किन्तु तृतीय जो रजोगुण होता है वह जिस तरह तिलो मे तैल

रहता है और दूध मे घृत रहा करता है किन्तु वह तल और घृत स्पष्ट दिखलाई नही दिया करता है उसी तरह तमोगुण मे और सत्त्वगुण मे रजोगुण अव्यक्त रूप से आश्रित होकर स्थित रहता है जो कि प्रत्यक्ष दिखाई नही देता है ॥९॥ महेश्वर प्रभु की परा सम्पूर्ण रजनी की उपासना करके तब दिन के आरम्भ प्रवृत्त हो जाने पर आगे प्रकृति का सम्भव (उत्पत्ति) हुआ । १०॥ महेश्वर ने अण्ड मे प्रवेश करके उस योग से प्रधान और पुरुष को क्षुब्ध कर दिया ॥११॥ उस समय जब प्रधान क्षोभ्यमाण हुआ तो उससे रजोगुण हुआ वहाँ पर बीजो मे जल के सदृश वह रजोगुण ही प्रवर्त्तक हो गया ॥१२॥ उस समय गुणो की विषमता को प्राप्त कर जो अण्ड मे अधिष्ठित थे वे प्रसूत होते हैं । क्षोभ को प्राप्त हुए गुणो से तीन देव समुत्पन्न हुए जो वहाँ आश्रित थे—परम गुह्य थे—सब की आत्मा स्वरूप थे और शरीर धारण करने वाले थे ॥१३॥ रजोगुण तो ब्रह्मा हैं—तमोगुण अग्नि है और सत्त्वगुण विष्णु उत्पन्न हुए । ब्रह्मा सृष्टा होने से रजोगुण के प्रकाशक व्यवस्थित हुए ॥१४॥

तम प्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थित ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थित ॥१५
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नय ।
परस्पराश्रिता ह्य ते परस्परमनुव्रता ॥१६
परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविन ।
क्षण वियोगो न ह्य पाम त्यजन्ति परस्परम् ॥१७
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महत पर ।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्त सर्गायेह प्रवर्त्तते ।
परश्च पुरुषो ज्ञय प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥१८
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमान समन्तात् ।
अनुप्रवर्त्तन्ति महान्त एव चिरस्थिता स्वे विषये प्रियत्वात् ॥१९
प्रधान गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
ईश्वराधिष्ठितात् पूर्वन्तस्मात्सदसदात्मकात् ।

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुन युगपत्सम्बभूवतु ॥२०
तस्मात्तमोऽव्यक्तमय. क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञित ।
ससिद्ध कार्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्तत ॥२१

अग्नि तमोगुण का प्रकाश करने वाला है अत वह काल के स्वरूप से व्यवस्थित हुए। सत्त्वगुण के प्रकाशक विष्णु हैं अत उदासीनता की स्थिति में व्यवस्थित हुए हैं ॥१५॥ ये ही तीन वेद हैं, ये ही तीन अग्नियाँ हैं। ये परस्पर मे एक-दूसरे के आश्रित हैं और परस्पर मे अनुव्रत वाले भी होते हैं ॥१६॥ ये तीनो परस्पर मे बरताव करते हैं और परस्पर मे धारण किया करते है। ये अन्योन्य मिथुन अर्थात् जोडे वाले हैं और अन्योन्य के उपजीवी होते हैं। इनका आपस मे एक दूसरे से एक क्षण मात्र का भी वियोग नही होता है और ये एक दूसरे को आपस मे कभी त्याग नही करते हैं ॥१७॥ ईश्वर सबसे पर देव हैं और विष्णु महान् से भी पर है। ब्रह्मा तो रजोगुण के उद्रेक वाले हैं जो यहाँ सर्ग के लिये ही प्रवृत होते हैं। पुरुष को पर समझना चाहिए और प्रकृति परा कही गई है ॥१८॥ महेश्वर के द्वारा अधिष्ठित यह चारो ओर से उद्यम युक्त होता हुआ प्रवृत्त होता है। अपने विषय मे प्रिय होने के कारण चिर स्थित महान् ही फिर अनुप्रवृत्त किया करते हैं ॥१९॥ प्रधान गुणो की विषमता होने के कारण से सर्ग काल मे अर्थात् सृजन के समय मे प्रवृत्त होता है। पहिले ईश्वर से अधिष्ठित उस सदसदात्मक से ब्रह्मा और बुद्धि का जोडा एक ही समय मे उत्पन्न हुआ ॥२०॥ इस कारण से तम अव्यक्तमय और क्षेत्रज्ञ ब्रह्म सज्ञा वाला होता है तथा कार्य कारणो से ससिद्ध होता हुआ ब्रह्मा आगे हुआ ॥२१॥

तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्त सप्रकाशते ।
स वै शरीरी प्रथम कारणत्वे व्यवस्थित ॥२२
अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वित ।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वित ॥२३
तस्यैश्वरस्याप्रतिघ ज्ञान वैराग्यलक्षणम् ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिन ॥२४
अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति ।

त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्त्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ।
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥३६
आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः ॥ ३७
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सर्वशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥३८
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः ॥३९
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥४०
इज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् ।
क्रमणः क्रमणीयत्वाद्गुणकस्याभिपालनात् ॥४१
आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥४२

अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके इस त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है। तीन तरह की दशा से ही लोकों का सृजन करता है संहार करता है और वीक्षण किया करता है। यह पहिले चार मुखों वाला हिरण्यगर्भ के स्वरूप से प्रकट हुए ॥३६॥ सबके आदि में होने से आदिदेव तथा अजन्मा होने के कारण से अज कहा गया है। समस्त प्रजाओं का पालन पोषण करता है, अतएव प्रजापति कहा गया है ॥३७॥ समस्त देवताओं में सबसे बड़ा देव है इसीलिये इसका 'महादेव' यह नाम पड़ गया है। समस्त लोकों का आवश्यक रूप से ईश होने के कारण से ही ईश्वर इस नाम से यह पुकारा जाया करता है ॥३८॥ सबसे बृहत् होने से ब्रह्मा तथा भूत होने के कारण से 'भूत' इस नाम से यह कहा जाता है। क्षेत्र के विशेष ज्ञान होने से क्षेत्रज्ञ और क्योंकि यह सब में गत होकर रहा करता है, इसलिये इसे 'विभु' इस नाम से

कहा गया है ।।३९।। चूँकि यह पुर में अनुशयन किया करता है, इसी कारण से इसे 'पुरुष' कहा गया है। किसी के द्वारा उत्पादित नहीं किया गया है और सबके पहिले होने वाला है, इससे इसका 'स्वयम्भू' यह नाम कहा गया है ।।४०।। यह इज्य अर्थात् यजन करने के योग्य है इसीलिए इसका नाम 'यज्ञ' यह होता है। विक्रान्ति के देखने से 'कवि' नाम होता है। क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' तथा अभिपालन करने से 'वर्णक' ये नाम हुए हैं ।।४१।। कपिल, आदित्य संज्ञा वाला, अग्रज और अग्नि ये नाम कहे गये हैं। इसका गर्भ हिरण्य हुआ था और हिरण्य के ही गर्भ से जन्म लेने वाला है, इसलिये इस पुराण में उसे 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से कहा जाता है ।।४२।।

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ।
न शक्य परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि ।।४३
कल्पसंख्यानिवृत्तेस्तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ।।४४
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानान्तावच्छेषाः परास्तु ये ।।४५
यस्त्वयं प्रर्त्तते कल्पो वाराहन्तं निबोधत ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्त्तते द्विजाः ।।४६
तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्द्दश ।
अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ।।४७
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ।।४८
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव ह ।।४९
अतीतानि च कल्पानि सोदकानि सहान्वयैः ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।।५०

निवृत्त स्वयम्भू के वर्षों पहिले उत्पन्न होने वाला जो काल है, वह

शतकों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है ।।४ ।। कल्प की संख्या के निवृत्त होने वाले ब्रह्मा को पराद्ध्य कहा जाता है। उसका उतना अन्य शेष-काल होता है उसके अन्त में प्रतिसृजन किया जाता है ।।४४।। करोड़ों करोड़ों सहस्र जो अन्तभूत अतीत हुए हैं अर्थात् अन्दर में रहने वाले गुजर चुके हैं वे उतने शेष पर कहे जाते हैं ।।४५।। जो यह वर्तमान कल्प है, उसका नाम वाराह समझ लेना चाहिए। हे द्विजवृन्द ! उन अन्य समस्त कल्पों में यह इस समय वर्तने वाला प्रथम ही कल्प है ।४६।। इस वाराह-कल्प में स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं जो कुछ तो अतीत हो चुके हैं कुछ वर्तमान हैं और कुछ आगे होंगे ।।४७।। उन सब के द्वारा चारों ओर यह भूमण्डल सात द्वीपों वाला है, जोकि पूरे एक सहस्र युग पर्यन्त नरवरों के द्वारा परिपालन करने के योग्य है। प्रजाओं के द्वारा और तप से युक्त है उसका पूर्ण विस्तार मैं बतलाता हूँ उसका आप लोग अब श्रवण करें ।।४८।। एक मन्वन्तर के द्वारा सब ही अन्तगत होते हैं। जो आगे होंगे वे आगे होने वालों के द्वारा और कल्प कल्प के द्वारा अन्तगत होते हैं ।।४९।। विशेष रूप से जानने वाले के द्वारा अन्वयों के सहित और शोदक जो कल्प व्यतीत हो गये हैं तथा उसी प्रकार से जो अनागत हैं अर्थात् अर्थात् आगे आने वाले हैं उनमें तर्क करना चाहिए ।।५० ।।

।। सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग ।।

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
सान्तरालकलीनेऽस्मान्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।१
एकार्णवे तदा तस्मिन् न प्राज्ञायत किंचन ।
तदा स भगवान् ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ।।२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रिय ।
ब्रह्मा नारायणाख्य स सुष्वाप सलिले तदा ।।३
सत्त्वोद्रेकात प्रबुद्धस्तु शून्य लोकमुदीक्ष्य स ।
इम चोदाहरन्त्यत्र श्लोक नारायण प्रति ।।४
आपो नारा व तनव इत्येषा नाम शुश्रुम ।
अप्सु शेते च तत्तस्मात्तेन नारायण स्मृत ।।५

तुल्य युगसहस्रस्य नैश कालमुपास्य स ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्व सर्गकारणात् ।।६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
निशायामिव खद्योत प्रावृट्काले ततस्तत ।।७

श्री सूतजी ने कहा—अग्नि से जल हुए और पृथिवी तल मे अग्नि के नष्ट हो जाने पर तथा अन्तराल के सहित लीन होने पर स्थावर और जङ्गम नष्ट हो गये ।।१।। उस समय उस एक अर्णव मे कुछ भी नहीं जाना गया था । तब सहस्र नेत्रो वाला और सहस्र चरण वाला भगवान् ब्रह्मा तथा सहस्र मूर्धा वाला रुक्म (सुवर्ण) के समान वर्ण से युक्त, इन्द्रियो से अगोचर पुरुष जो 'नारायण' इस नाम से कहा जाता है, वह ब्रह्मा उस समय मे जल मे शयन करता था ।।२।।३।। उस समय सत्व के उद्रेक होने से वह प्रबुद्ध हुए और उन्होंने इस लोक को पूर्णतया शून्य देखा । यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ।।४।। आप नार ये तनु हैं, ऐसा जलो का नाम सुनते हैं । क्योंकि जलो मे शयन किया करते है, इसी कारण से 'नारायण' यह नाम कहा गया है ।।५।। एक युगो के सहस्र के तुल्य निशा का समय पर्यन्त उसने वहाँ उसी तरह उपासना की और फिर रात्रि के अन्त मे सर्ग (सृजन) के कारण होने से ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं ।।६।। उस जल मे ब्रह्मा उस समय वायु होकर विचरण करता था, जैसे कोई खद्योत (जुगनू) वर्षा-काल की रात्रि मे इधर-उधर घूमा करता है ।।७।।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गता महीम् ।
अनुमाना दसमूढो भूमेरुद्धरण प्रति ।।८
अकरोत् स तनु त्वन्या कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्य रूपमचिन्तयत् ।।९
सलिलेनाप्लुता भूमि दृष्ट्वा स तु समन्तत ।
किन्नु रूप महत् कृत्वा उद्धरेयमह महीम् ।।१०
जलक्रीडासु रुचिर वाराह रूपमस्मरत् ।

अगृष्य सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ॥११
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
पीनोन्नतकटीदेशं सुश्लक्ष्णं शुभलक्षणम् ॥१४
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५

इसके अनन्तर उस जल मे अन्तर्गत भूमि का ज्ञान प्राप्त करके भी भूमि के उद्धार के प्रति वह अनुमान से असमर्थ था अर्थात् अनुमान के ज्ञान से युक्त था ॥८॥ इसके अनन्तर उसने अन्य तनु किया जैसा कि पहिले कल्प आदि मे बनाया था और फिर उस महान् आत्मा ने मन से उस दिव्य रूप का चिन्तन किया था ॥ ९॥ उसने उस समय चारो ओर जल मे आप्लुत इस भूमि को देखकर विचार किया कि क्या मैं अपना महान् रूप बनाकर इस भूमि का उद्धार करूँ ? ॥१०॥ जल की क्रीडाओ मे अत्यन्त सुन्दर वाराह के रूप का स्मरण किया जो कि समस्त प्राणियो के द्वारा धर्षित न करने के योग्य होता है तथा वाङ्मय और धर्म की संज्ञा वाला है ॥११॥ अब उस वाराह के रूप का विस्तृत वर्णन किया जाता है—वह वाराह जोकि भगवान् ने उस समय अपना रूप बनाया था दश योजन विस्तीर्ण अर्थात् लम्बा था एक सौ योजन ऊँचा था नीले मेघ के समान कान्ति वाला था और मेघ की घोर गर्जना के सदृश शब्द करने वाला था ॥१२॥ एक बहुत ही विशाल पर्वत के समान आकार वाला श्वेत था और उसके अत्यन्त तीक्ष्ण तथा बहुत ही उग्र दाढे । बिजली एवं अग्नि के तुल्य प्रकाश (चमक) वाले उसके नेत्र थे और सूर्य के समान तेज वाला था ॥१३॥ मोटे और चौडे कन्धो वाला था सिंह के विक्रम से युक्त गमन के समान गमन करने वाला था । मोटे और ऊँचे बहुत ही सुन्दर एवं शुभ लक्षण वाले कटि देश से युक्त था ॥१४॥ ऐसे आकार

प्रकार वाला अत्यन्त विशाल अपना अभिमत वाराह का रूप हरि भगवान् ने धारण कर पृथिवी के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था ।१५।।

स वेदवाद्युपद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुख ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ।।१६
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषण ।
आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वनो महान् ।।१७
सत्यधर्ममय श्रीमान् धर्म्मविक्रमसस्थित ।
प्रायश्चित्तरतो घोर पशुजानुर्महाकृति ।।१८
ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्ग स्थानबीजो महौषधि ।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यसृक् सोमशोणित ।।१९
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ।।२०
दक्षिणाहृदयो गोपी महासत्रमयो विभु ।
उपाकर्मेष्टिरुचिर प्रवर्ग्यवित्तभूषण ।।२१
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन ।
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रित ।
भूत्वा यज्ञवाराहो वै अप स प्राविशत् प्रभु ।।२२

अब उस वाराह के स्वरूप मे प्रभु के प्रवेश करने का विस्तृत शोभा समन्वित वर्णन किया जाता है—वह हरि का वाराह स्वरूप वेदवादियो का उपद्रष्टा था, क्रतु ही जिसका वक्षस्थल था और चिति के मुख वाला था । उस वाराह की जिह्वा साक्षात् अग्निदेव थे, दर्भ रोम रूप थे, ब्रह्म जिसका शीर्ष (मस्तक) था, महान् तप वाला था ।।१६।। दिन और रात्रि रूपी नेत्रो को धारण करने वाला, वेद और षट् वेदो के अगो के आभरण वाला, घृत ही जिसकी नासिका थी और स्रुवा जिसका मुख था तथा सामवेद का गान ही उसकी महान् ध्वनि थी ।।१७।। सत्य और धर्म से परिपूर्ण श्री से युक्त तथा धर्म रूपी विक्रम मे सस्थिति करने वाला था । प्रायश्चित्त मे अनुराग रखने

ससर्ज सृष्टिन्तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा ॥३३
तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रधानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥३४
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥३५

स्थिर और अचल होने से ये अचल कहे गये तथा पर्वों से पर्वत कहे गये हैं। अन्तर्भिन्न होने से इनका नाम गिरि पड गया है। इनकी शिलाओं का चयन किये जाने से इनका नाम शिलोच्चय हुआ है।३॥ इसके अनन्तर उन लोक उदधि और पर्वतों के विशीर्ण हो जाने पर विश्वकर्मा बार-बार कल्पादि में विभाग करते हैं॥३१॥ समुद्रों के सहित इस पृथ्वी को सात द्वीपों को समस्त पर्वतों को और भूमण्डल से आदि चार लोकों को उसने पुनः प्रकल्पित किया था। इस तरह लोकों का प्रकल्पन करके फिर प्रजा के सर्ग की रचना की ॥३२॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन की इच्छा करने वाला होकर जिस प्रकार पहिले कल्पादि में भी उसी रूप वाली सृष्टि की रचना की थी।३३॥ सर्ग को करने की भावना से अभिध्यान करते हुए उनके सामने में उस समय बुद्धिपूर्वक एक ही समय में प्रधान तथा तमोमय प्रादुर्भूत हुआ॥३४॥ तम मोह महामोह तामिस्र और अन्ध-संज्ञा वाला तथा महात्मा से पाँच पर्व वाली यह अविद्या प्रादुर्भूत हुई॥३५॥

पञ्चधा चास्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
सर्वतस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ।
बहिरन्तः प्रकाशश्च शुद्धो निःसंज्ञ एव च ॥३६
यस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥३७
मुख्यसर्गं तथाभूतं ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो ध्यासोऽभ्यमन्यत ॥३८
तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्यक् स्रोतोऽभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्तेत तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतम् ॥३९

तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुला स्मृताः ।
उत्पथग्राहिणश्चापि ध्यानाद्ध्यानमानिन ॥४०
तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अहङ्कृता अहमना अष्टाविंशद्विधात्मका ॥४१
एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषा शक्तिविधा स्मृता ॥४२

ध्यान करते हुए अभिमानी का वह सर्ग पाँच प्रकार से आश्रित हुआ । वह सर्ग कुम्भ से दीप की भाँति सब ओर से तम से आवृत था । बाहिर और अन्दर शुद्ध प्रकाश था, जिसकी कोई सज्ञा नही थी ॥३६॥ जिससे उनके द्वारा बुद्धि सवृत थी और मुख्य कारण सवृत थे, उससे वे सवृत आत्मा वाले नग मुख्य कहे गये हैं ॥३७॥ मुख्य सर्ग मे ब्रह्माजी ने उस प्रकार के असाधक को देखकर अपने मन मे बहुत ही अप्रसन्नता की और इसके अनन्तर उसने फिर न्यास करने को मन मे माना ॥३८॥ इस प्रकार सर्ग करने के लिये उसके ध्यान करते हुए वहाँ पर तिर्यक् स्रोत हुआ । क्योंकि यह तिर्यक् व्यवहार करता है, इसीलिये वह 'तिर्यक् स्रोत' इस नाम से कहा गया है ॥३९॥ उन सब मे तमोगुण की अधिकता होने से वे सब अधिक अज्ञान वाले कहे गये हैं । ध्यान के मानी के ध्यान से वे सभी उत्पथ के ग्रहण करने वाले भी थे ॥४०॥ तिर्यक् स्रोत वाले ईश्वर ने इस द्वितीय विश्व को देखा, जोकि कर्म मे और मन मे अहं भाव वाला तथा अट्ठाईस प्रकार के स्वरूप वाला है ॥४१॥ एकादश इन्द्रियो के प्रकार हैं तथा नौ उदय के प्रकार हैं, आठ तारक आदि के तथा उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं ॥४२॥

अत प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहि पुन ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्त्तेत तिर्य्यक्स्रोता स उच्यते ॥४३
तिर्यक्स्रोताश्च दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अभिप्रायमथोद्भूत दृष्ट्वा सर्वन्तथाभिधम् ।
तस्याभिध्यायतो नित्य सात्विक समवर्त्तत ॥४४
ऊर्द्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्द्ध्वव्यवस्थित ।

यस्माद्व्यवर्ततोर्द्ध न्तु ऊर्द्ध स्रोतास्ततः स्मृतः ॥४५
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥४६
तेन वा तादयो ज्ञेया सृष्टात्मानो व्यवस्थिताः ।
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ॥४७
ऊर्द्ध स्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत ।
ससर्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः ॥४८
अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतः सुसाधकम् ।
यस्मादर्वाक्व्यवर्तेत ततोऽर्वाकस्रोत उच्यते ॥४९
ते च प्रकाशबहुलास्तमः सन्वरजोधिकाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥५०

इसलिये वे सब प्रकाश हैं और फिर बाहिर से सब आवृत हैं। जिस कारण से उनकी तिर्यक प्रवृत्ति होती है इसीलिये वह सर्ग तिर्यक स्रोत वाला कहा जाता है ।।४३। ईश्वर ने जो कि तिर्यक स्रोत वाला है इस द्वितीय विषय को देखा और उस प्रकार वाले समस्त उद्भूत अभिप्राय को देखा। इस तरह नित्य ही सर्ग रचना के ध्यान करने वाले के समक्ष सात्विक हुआ ॥४४॥ यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला था और ऊर्ध्व की ओर ही व्यवस्थित भी था। यह ऊर्ध्व की ओर प्रवृत्त था, इसी कारण से इसका नाम ऊर्ध्व स्रोता कहा गया है ॥४५॥ वे सब सुख और प्रीति की प्रचुरता वाले थे बाहर और अन्दर संवृत थे बाहिर और अन्तर्भाग में प्रकाशमय थे। ये सब ऊर्ध्व स्रोतो द्भव कहे गये हैं ॥४६॥ इससे वात आदि जानने चाहिए क्योंकि सृष्ट स्वरूप वाले व्यवस्थित हैं। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला है अतः यह इसी नाम से कहा भी गया है ॥४७॥ इन ऊर्ध्व स्रोतो में देवों के सृष्ट होने पर वह प्रभु ब्रह्मा उस समय बहुत ही प्रीति वाले हुए अर्थात् ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उन्होंने अन्य सर्ग करने का मन में विचार किया और

ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्ग की सृष्टि की ॥४८॥ इसके अनन्तर अभिध्यान करते हुए जब सत्य का अभिध्यायी वे हुए तब उसका अव्यक्त से सुसाधक अर्वाक् स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ। वह अर्वाक् की ओर वरतावा करता है, इसी कारण से वह अर्वाक् स्रोत इस नाम से कहा जाता है ॥४९॥ और बहुल प्रकाश वाले वे होते हैं, जिनमे तम, सत्व और रजोगुण अधिक होता है। इससे वे पुन पुन करने वाले तथा अधिक दु ख वाले होते हैं ॥५०॥

प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्या साधकाश्च ते।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिता ॥५१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्म्मिण ।
इत्येष तेजस सर्गो ह्यर्वाक्स्रोता प्रकीर्तित ॥५२
पञ्चमोऽनुग्रह सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थित ।
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च।
विवृत वर्तमानश्च तेऽर्थ जानन्ति तत्वत ॥५३
भूतादिकाना सत्वाना षष्ठ. सर्ग स उच्यते।
विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थित ॥५४
प्रथमो महत सर्गो विज्ञेयो महतस्तु स ।
तन्मात्राणा द्वितीयस्तु भूतसर्ग स उच्यते ॥५५
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियक स्मृत ।
इत्येष प्राकृत सर्ग सम्भूतो बुद्धिपूर्वक ॥५६
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावरा स्मृता ।
तिर्य्यक्स्रोताश्च य सर्गस्तिर्य्यग्योनि स पञ्चम ॥५७

बाहिर और अन्दर प्रकाशयुक्त हैं। वे मनुष्य और साधक हैं। तारकाद्य लक्षणो से वे आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ॥५१॥ सिद्धात्मा वे मनुष्य, जो गन्धर्वों के सहधर्मी होते हैं। यह तेजस सर्ग होता है और अर्वाक् स्रोता कहा गया है ।५२॥ पांचवां अनुग्रह सर्ग होता है और वह चार प्रकार से व्यवस्थित होता है। विपर्य्यय से शक्ति से, तुष्टि से और चतुर्थ प्रकार में सिद्धि से व्यवस्थित है। वे विवृत्त और वर्तमान अर्थ को तत्वत अर्थात् तात्त्विक रूप से

सबसे आगे अर्थात् पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही समान मानसो का सृजन किया अर्थात् मन से समुत्पन्न होने वालो की रचना की। उन मानसो मे सनन्दन सनक और विद्वान् सनातन हैं। वे महान् ओज वाले वर्चस्वी विशेष ज्ञान होन से निवृत्त हो गये अर्थात् निवृत्त मार्ग के अनुगामी बन गये। वे सबुद्ध होते हुए तीनो ही इस नानात्व स्वरूप सृजन से अपविद्ध हो गये। प्रजा की सृष्टि को न करके ही वे फिर प्रतिसर्ग को चल गये ॥६६॥ उस समय उन सनकादि के चले जाने पर ब्रह्माजी ने तब फिर स्थानाभिमानी अन्य मानस साधको का सृजन किया। अब भूत से लकर सम्प्लवावस्था वालो के नामो को जान लो ॥६७॥ जल अग्नि पृथिवी वायु अन्तरिक्ष दिशा स्वर्ग दिव समुद्र नद शैल वनस्पति ओषधियो की आत्मा तथा वीरुध और वृक्षो की आत्मा लव काष्ठ कला मुहूर्त्त स न्धि रात्रि दिवस अर्ध मास मास अयन शब्द युग ये सब स्थानाभिमानी हैं अत वे स्थान के नाम वाले कहे गये हैं ॥६८ ६६ ७ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए उसके वक्ष स्थल से क्षत्रिय उद्भूत हुए ऊरुओ से वश्यो की उत्पत्ति हुई और परो से शूद्र वर्ण वाले उत्पन्न हुए। इस तरह ये सभी वर्ण ब्रह्माजी के शरीर के विभिन्न भागो से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७१॥ नारायण अव्यक्त से परे है और अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। उस अण्ड से ब्रह्माजी ने जन्म ग्रहण किया और फिर उन ब्रह्माजी न स्वय इन समस्त लोको की रचना की है ॥७२॥ यह पाद सक्षप से कह दिया गया है। इसमे विस्तार नही किया है। इस आद्य पाद पुराण का भली भाँति कीत्तन किया गया है ॥७३॥

॥ वर्तमान कल्प में मानुषी सृष्टि ॥

इत्येष प्रथम पाद प्रक्रियार्थे प्रकीतित ।
श्रुत्वा तु सहृष्टमना काश्यपेय सनातन ॥१
सम्बोध्य सूत वचसा प्रपच्छाथोत्तरा कथाम् ।
अत प्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसन्धि प्रचक्ष्व न ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयो ।
कल्पयोरन्तर यच्च प्रतिसन्धिर्यवस्तयो ।

एतद्वेदितुमिच्छाम अत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥३
अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसंधिश्च यस्तयो ।
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयो ॥४
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रता ।
यश्चाय वर्तते कल्पो वाराह साम्प्रत शुभ ॥५
अस्मात् कल्पाच्च य कल्प पूर्वोऽतीत सनातन ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थान्निबोधत ॥६
प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि च तत्र वै ।
अन्य प्रवर्त्तते कल्पो जनाल्लोकात् पुन पुन ॥७

इस प्रकार यह प्रथम पाद प्रक्रिया के लिये ही कहा गया है । इसका श्रवण करके सनातन काश्यपेय बहुत ही मन मे प्रसन्न हुए ॥१॥ इसके अनन्तर वाणी से सूतजी का सम्बोधन करके उन्होने इससे आगे की कथा पूछी—उन्होंने कहा—हे कल्पज्ञ ! इससे आगे आप हमको प्रति-सन्धि का वर्णन कर समझावे ॥२॥ जो कल्प व्यतीत हो गया और इस समय वर्त्तमान है इन दोनो कल्पो की जो प्रति-सन्धि है उसे हम जानना चाहते है क्योंकि आप अत्यन्त कुशल हैं आप सभी कुछ जानते हैं । यह हमे सुनाइये ॥ ३ ॥ लोमहर्षणजी ने कहा—मैं अब आपको समतीत कल्प और वर्त्तमान कल्प इन दोनो की जो प्रति-सन्धि होती है उसे बतलाता हूं ॥४॥ हे सुव्रत वालो ! जिन कल्पो मे जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह कल्प होता है वही बतलाता हूं । वर्त्तमान समय के कल्प का शुभ नाम वाराह है ॥५॥ इस कल्प से पहिले जो सनातन कल्प व्यतीत हुआ है उस कल्प की और इस कल्प की मध्यावस्था को जान लो ॥६॥ पूर्व कल्प के प्रत्याहृत हो जाने पर वहाँ प्रति-सन्धि होती है और बार-बार जन-लोक से अन्य कल्प हुआ प्रवृत्त होता है ॥७॥

व्युच्छिन्नात् प्रतिसधेस्तु कल्पात् कल्प परस्परम् ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रिया सर्वा कल्पान्ते सर्वशस्तदा ।
तस्मात् कल्पान्ता कल्पस्य प्रतिसधिर्निगद्यते ॥८
मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च सन्धय ।

परस्परा प्रवर्त्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह ॥६
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ।
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो ह्यस्मात्तु यः परः ।
आसीत् कल्पो व्यतीतो यः परार्द्धेन परस्तु सः ॥१०
अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धाद्गुणीकृताः ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः ॥११
यस्मिन् पूर्वं परार्द्धे तु द्वितीये परं उच्यते ।
एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्तत स्मृतः ॥१२
अस्मात् कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः ।
चतुर्युगसहस्रान्तं सहो मन्वन्तरं पुरा ॥१३
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते ।
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥१४

प्रति सन्धि के व्युच्छिन्न होने से परस्पर में कल्प से कल्प के अन्त में समस्त क्रियाऐं उस समय सभी ओर से व्युच्छिन्न हो जाया करती हैं। इसी से कल्प से कल्प की प्रति-सन्धि कही जाती है ॥८॥ कल्प की भाँति ही मन्वन्तर और युगों के नाम वालों की सन्धियाँ भी उच्छिन्न हुआ करती हैं और वे सब परस्पर में मन्वन्तर और युगों के साथ प्रवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥ जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे गये हैं अब उन कल्पों के परार्द्ध स्वरूपों में इससे जो पहिला था और जो पर था इसमें परार्द्ध से जो कल्प व्यतीत हो गया वह पर था ॥१० ॥ हे द्विजो ! अपरार्द्ध से गुनी कृत अन्य जो कल्प भविष्य में होंगे उनमें इस समय रहने वाला यह प्रथम कल्प है जो अब वर्तमान में चल रहा है ॥११॥ जिस द्वितीय परार्द्ध में पूर्व पर कहा जाता है इतना ही स्थिति का काल प्रत्याहार कहा गया है ॥१२॥ इस वर्तमान कल्प से जो पहिला सनातन कल्प व्यतीत हो गया है वह पहिले मन्वन्तरों के साथ सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों युगों के एक सहस्र बार हो जाने के अन्त में समाप्त हुआ है ॥१३॥ उस समय कल्प के क्षीण हो जाने पर दाह का काल उपस्थित हुआ और उसमें अर्थात् कल्प में उस समय देवता लोग जो थे वे विमानों में सस्थित हो गये थे ॥१४॥

नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये ।
अष्टाविंशतिरेवैता कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥१५
मन्वन्तरे तथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यादिनवतिस्तथा ।
अष्टाधिका सप्तशता सहस्राणा स्मृता पुरा ॥१६
वैमानिकाना देवाना कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।
एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिका स्मृता ॥१७
अथ मन्वन्तरेष्वासश्चतुर्दशसु वै दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥१८
तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन् काले तु ये सुरा ।
मन्वन्तरेषु ये ह्यासन् देवलोके दिवौकस ॥१९
ते तै सयोजकै सार्द्ध प्राप्ते सङ्कलने तथा ।
तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसप्लवे ॥२०
ततस्तेऽव श्यभावित्वाद्बुद्धा पर्यायमात्मन.
त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावत ।
महर्लोकाय सविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२

और जो नक्षत्र, ग्रह और तारा थे तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह थे वे सब सुकृतात्माओ की अट्ठाईस करोड ही सख्या थी ॥ १५ ॥ इसी प्रकार एक मन्वन्तर मे तथा चौदह मन्वन्तरो में तीन सौ करोड थे और पहिले अट्ठानवें करोड सात सौ सहस्र कहे गये हैं ॥ १६ ॥ कल्प के व्यतीत हो जाने पर विमानो मे सस्थित देवताओ मे जो हुये वे एक एक कल्प मे विमानो मे बैठने वाले देवता कहे गये हैं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिव मे चौदह मन्वन्तरो में इसी भाँति देवता, पितर, मुनि लोग और मनुगण थे ॥ १८ ॥ और उनके अनुगामी जो मनु पुत्र थे और इसी प्रकार वर्णों तथा आश्रमो मे रहने वालों के द्वारा वन्दित हुये जो उस समय मे सुरगण थे और मन्वन्तरो मे जो दिव मे रहने

वाले देवलोक में थे वे सब सङ्कलन के प्राप्त होने पर उन सयोजकों के साथ भूत सम्प्लव के प्राप्त होने के समय में तुल्यनिष्ठा वाले थे ॥ १६-२ ॥ इसके पश्चात् उन भूलोकेश्वर के निवासी देवों ने अवश्यम्भावी होने से अपनी बारी को जानकर उस उपप्लव के प्राप्त होने पर उत्सुकता और विषाद न रखते हुये भाव से स्थानों का त्याग करके फिर महर्लोक के लिये सावधान होते हुये उद्योग अपनी बुद्धि धारण की ॥ १—२२ ॥

ते युक्ता उपपद्यन्ते महसिस्थ शरीरक ।
विशुद्धिबहुला सब मानसी सिद्धिमास्थिता ॥२३
त कल्प वासिभि सार्द्ध महानासादितस्तु य ।
ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरजनै ॥२४
गत्वा तुते महर्लोक देवसङ्घाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दध्रिरे मतिम् ॥२५
विशुद्धिबहुला सवे मानसी सिद्धिमास्थिता ।
तै कल्पवासिभि सार्द्ध महानासादितस्तु यै ॥२६
दशकृत्व इवावस्था तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तप ।
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्य गच्छन्ति वै पुन ।
एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिन ॥२७
एव देवयुगाना तु सहस्राणि परस्परान् ।
गतानि ब्रह्मलोक वै अपरावर्तिनी गतिम् ॥२

वे सब अधिक विशुद्धि वाले और मानसी सिद्धि में आस्थित होते हुए महर्लोक में स्थित शरीरों से युक्त होकर उपपन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और उनके भक्त दूसरे लोग हैं उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने महत् को प्राप्त कर लिया था ॥ २४ ॥ वे चौदह देव सङ्घ महर्लोक को प्राप्त कर फिर उन्होंने जन लोक के लिये उद्वेग के साथ अपना विचार किया ॥२५॥ विशुद्धि की प्रचुरता वाले वे सब मानसी सिद्धि में आस्थित हो गये और उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने महान् को प्राप्त किया था ॥ २६ ॥ बाद में वे दश बार की तरह उससे स्वर्लोक और तपलोक को जाते हैं वहाँ दस कल्प पर्यन्त

रहकर फिर वे सत्य लोक को जाते हैं। इसी क्रम के योग से कल्प निवासी जाते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार से देव युगो के सहस्र अर्थात् सहस्रों देवयुग परस्पर से व्यतीत हुये फिर ब्रह्मलोक की अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥

आधिपत्य विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समा ।
भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ।।२६
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ता प्रसङ्गमात् ।
आनन्द ब्रह्मण प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ।।३०
अवश्यम्भाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।
नाना त्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविन ।।३१
स्वरूपतो बुद्धिपूर्वं यथा भवति जाग्रत. ।
तत्कालभावि तेषा तु तथा ज्ञान प्रवर्त्तते ।।३२
प्रत्याहारे तु भेदाना येषा भिन्नाभिसूक्ष्मणाम् ।
तं सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ।।३३
नानात्वदर्शनात्तेषा ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनष्टस्वाधिकाराणा स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ।।३४
ते तुल्यलक्षणा सिद्धा शुद्धात्मानो निरञ्जना ।
प्रकृतौ कारणातीता स्वात्मन्येव व्यवस्थिता ।।३५

वहाँ वे आधिपत्य के बिना वैभव मे उन्ही के समान रूप और विषय मे ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं ॥ २६ ॥ वहाँ पर सुन्दर सङ्गम होने से बडी ही प्रीति से युक्त होकर वे रहते हैं। ब्रह्मा के आनन्द को प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त किये जाते हैं ॥ ३० ॥ वे स्वय अवश्यम्भावी प्राकृत अर्थ से ही नानात्व से अभिसम्बद्ध होते हुये उस समय उस काल मे होने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार जाग्रत स्वरूप से बुद्धिपूर्वक होता है उस काल मे होने वाला उनका वैसा ही ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ भिन्न अभिसूपा जिनके भेदो के प्रत्याहार मे ही उनके साथ कार्य और करण प्रतिसृष्टि किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ अपने अधिकारो के विनाश हो जाने वाले, अपने धर्म से स्थित रहने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले उनके नानात्व के दर्शन से वे तुल्य

मे चले जाते हैं और धर्म तथा पाप के अनुबन्ध वाली उस योनि से नियुक्त नहीं होते है ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे मनुष्य जन लोक में तुल्य रूप वाले होते हैं। उस समय वे सब प्रचुर विशुद्धि वाले होते हुये मानसी सिद्धि में व्यवस्थित हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥ वहाँ पर अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की एक रात निवास कर फिर यहाँ सर्ग मे ब्रह्मा की मानसी अर्थात् मन से उद्भव वाली प्रजा होते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य-वासियो के इस जन-लोक मे प्रवृत्त होने पर और सात प्रकारतर सर्गों के द्वारा उन लोको के क्षय हो जाने पर उन परम विशीर्ण धरो मे वृष्टि से समस्त भूमण्डल के प्लावित हो जाने पर सब समुद्र मेघ और पार्थिव जल सवाधित होते हुये सलिल नाम वाले एकार्णवता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४७-४८ ॥ आया हुआ और बिना गति वाला वह सलिल जब अत्यधिक मात्रा मे हो जाता है तब वह इस सस्थित भूमि को ढककर वह अर्णव नाम वाली हो जाती है ॥ ४९ ॥

आभाति यस्माच्चाभाति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।
सर्वत समनुप्लाव्य तासाञ्चाम्भो विभाव्यते ॥५०
तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वी समन्तत ।
धातुस्तनोतिविस्तारे तेनाम्भस्तनव स्मृता ॥५१
अरमित्येष शीघ्रन्तु निपात कविभि स्मृत ।
एकार्णवे भव त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नरा ॥५२
तस्मिन् युगसहस्रान्ते सस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
रात्र्या वर्त मानायां तावत्तन् सलिलात्मना ॥५३
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्तत ॥५४
येनधाधिष्ठित हीद ब्रह्मा स पुरुष प्रभु ।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तु मिच्छति ॥५५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥५६

जिसके कारण से व्याप्त दीप्तियों से जो भासमान होते हैं वे भी उस

समय भासित नही होते है । सब ओर से भली भांति प्लावन कर अर्थात् निमग्न करके उस समय केवल उनके जल ही विभावित होता था ॥५०॥ क्योंकि वह जल पूर्णतया विस्तार वाला होता है और इस समस्त पृथ्वी को सब ओर से घेर लेता है । विधाता के विस्तार के फैलाने पर वे इसमे जल के तनु कहे गये हैं ॥५१॥ अर - यह कवियो के द्वारा शीघ्र निपात कहा गया है । एकार्णव मे जल ही होते हैं और इसमे वे नर शीघ्र नही होते हैं । ५२। ब्रह्माजी के दिन के सस्थित होने पर उस एक सहस्र युग के अन्त मे तब तक केवल जल के स्वरूप से ही इस पृथ्वी के वर्त्तमान रहने पर इसके पश्चात् उस जल के पृथ्वी तल मे रहने वाली अग्नि मे नष्ट हो जाने पर चारो ओर निरालोक अर्थात् प्रकाश से हीन अन्धकार छाया हुआ था और वात प्रशान्त हो गया था ऐसे समय मे जिसके द्वारा यह अधिष्ठित था वह ब्रह्मा पर पुरुष प्रभु था और उसने फिर इस लोक के विभाग करने की इच्छा की अथवा इच्छा करता है ॥५३-५४-५५॥ उस एक अर्णव अर्थात् समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर उस समय वह ब्रह्मा सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाला हो जाता है ॥५६॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥५७
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्य लोकमवेक्ष्य च ।
इमश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोक नारायण प्रति ॥५८
आपो नाराख्यास्तनव इत्यपान्नाम शुश्रुम ।
आपूर्य नाभि तत्रास्ते तेन नारायण स्मृत ॥५९
सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदन सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहु प्रथम प्रजा पतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निरुच्यते ॥६०
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्व प्रथम तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमस परस्तात् ॥६१
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजा ।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुन ॥६२

स च नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये समवर्त्तत ॥६३

सहस्र शीर्षों वाला हेम के तुल्य देदीप्यमान वर्ण वाला समस्त इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् परे वह पुरुष ब्रह्मा नारायण—इस नाम वाला उस समय में जल में शयन करता था ॥५७॥ सत्व की अधिकता के होने से वह प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत हुआ और उसने चेतना युक्त होकर इस लोक को शून्य देखा । यहाँ पर उस नारायण के प्रति इस निम्न श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥५८॥ आप अर्थात् जल नार इस नाम वाले तनु हैं यही जलों के नाम को सुनते हैं । वहाँ पर नाभि को आपूरित कर वह होता है इसलिये नारायण यह कहा गया है ॥५९॥ सहस्र शीर्ष (मस्तक) वाला अच्छे मन वाला सहस्र चरणों वाला सहस्र नेत्रों वाला सहस्र मुख वाला सहस्र को भोग करने वाला सहस्र बाहुओं वाला प्रथम प्रजापति है जो त्रयीपथ में पुरुष कहा जाता है ॥६०॥ सूर्य के तुल्य वर्ण वाला भुवन की रक्षा करने वाला एक ही प्रथम पुराण हूँ हिरण्यगर्भ महात्मा और पुरुष है जो उस तम से पर कहा जाता है ॥६१॥ वही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाओं का सृजन करता था और जब कल्प का अन्त होता तो उस समय में काल होकर फिर उस सृष्टि का ग्रसन कर लेता था ॥६२॥ वही नारायण नाम वाला सत्त्वगुण से उद्रिक्त होता हुआ समुद्र में शयन करता है तथा वह इस प्रकार अपने स्वरूप को तीन रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में वरताव किया करता है ॥६३॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षन्ते च त्रिभिस्तु तान् ।
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥६४
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ॥६५
चतुर्विधा प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मया रात्र्या महार्णवे ।
पश्यन्ति तं महर्ल्लोकान् सुप्तं कालं महर्षयः ॥६६
भृग्वादयो यथा सप्त कल्पे ह्यस्मिन् महर्षयः ।
ततो विवर्त्तमानैस्तैर्महान् परिगतः परः ॥६७

गत्यर्थाद् ऋपयो धातोर्नामनिर्वृत्तिरादित ।
तस्मादृपिपरत्वेन महास्तस्मान्महृपय· ॥६८
महर्लोकस्थितैर्हृष्ट काल सुप्तस्तदा च तैं ।
सत्याद्या सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षय ॥६९
एव ब्राह्मीपु रात्रीपु ह्यतीतासु सहस्रश ।
दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्त काल महर्षय ॥७०

इन तीन रूपो से उन लोको का सृजन करता है, ग्रसन करता है और इनका वीक्षण करता है। जब एकार्णव मे स्थावर और जङ्गम लोक के नष्ट हो जाने पर इस लोक ग्रसन का काय भी नही किया करता है किन्तु प्रत्येक कार्य के स्वरूप भिन्न हैं ॥६४॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारो युगो की चौकडी के एक सहस्र सख्या समाप्त हो जाती हैं तब उसके अन्त में सब ओर जल से आवृत होने पर प्रकाश रहित अर्थात् अन्धकारमय सागर में नारायण नाम वाले ब्रह्मा शयन करते हुए चारो प्रकार की प्रजा का ग्रास करके ब्राह्मी रात्रि मे महार्णव मे स्थित रहते हैं और महर्पिगण महर्लोक से उस सुप्तकाल को देखते हैं ॥६५-६६॥ इस कल्प मे भृगु आदि सात महर्पि कहे गये हैं। उनके द्वारा विशेप रूप से वहाँ उपस्थित होकर वह पर महान् चारो ओर से परिगत होगया ॥६७॥ गति के अर्थ वाली धातु से 'ऋपि'—इस नाम की निवृत्ति होती है। उससे महान् यह भी ऋपि परत्व है अतएव महर्पय, ऐसा कहा गया है ॥६८॥ महर्लोक मे स्थित उनके द्वारा उस समय काल सुप्त होता हुआ देखा गया। अतीत कल्प में सत्य आद्य ये सात महर्पि थे ॥६९॥ इस प्रकार से सहस्रो ही ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली रात्रियाँ व्यतीत हो जाने पर उसी प्रकार से उस समय अन्य महर्पियो ने भी काल को सोया हुआ देखा ॥७०॥

कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् सस्थाश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते ॥७१
स स्रष्टा सर्वभूताना कल्पादिषु पुन पुन ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिद जगत् ॥७२
इत्येप प्रतिसन्धिर्वं कीर्त्तित कल्पयोर्द्वयो ।

साम्प्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ॥७३

कीर्त्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ।
साम्प्रत ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेत निबोधत ॥७४

कल्प के आदि मे ब्रह्मा ने बहुत सी चौदह सख्याओं को कल्पना की थी इसीलिये वह काल ऐसा कहा जाता है ॥७१॥ कल्पों के आदि कालों मे समस्त प्राणियो का सृजन करने वाला वह महादेव बार-बार व्यक्त और अव्यक्त होता है और उसी का यह समस्त जगत् है ॥७२॥ यही दोनो कल्पो की प्रतिसन्धि होती है जो आपके समक्ष मे वर्णित करदी गई है । अब के समय वाले और व्यतीत हुए इन दोनो के मध्य मे जो प्रागवस्था हुई थी वह सक्षेप से वर्णन करदी गई है जो वैसी कल्प कल्प मे थी । अब आपके सामने इस कल्प का वर्णन करता हूँ उसे आप लोग श्रवण करें या समझ लेवे ॥७३ ७४॥

॥ मानव सभ्यता का आरम्भ ॥

तुल्य युगसहस्रस्य नश कालमुपास्य स ।
शर्वयन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्व सर्गकारणात् ॥१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुभू त्वा तदाचरत् ।
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्ठ स्थावरजङ्गमे ॥२
जलेन समनुव्याप्त सर्वत पृथिवीतले ।
अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ॥३
निशायामिव खद्योत प्रावृट्काले ततस्तत ।
तदाकाशे चरन् सोऽय वीक्ष्यमाण स्वयम्भुव ॥४
प्रतिष्ठाया ह्युपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभु ।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तगता महीम् ॥५
अनुमानात्त सम्बुद्धो भूमेरुद्धरण प्रति ।
चकार या तनुश्च व पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ॥६
स तु रूप वराहस्य कृत्वाऽप प्राविशत् प्रभु ।
अद्भिः सञ्छादितामुर्वी समीक्ष्याथ प्रजापति ॥७

श्री सूतजी ने कहा—वह एक सहस्र युगो के तुल्य रात्रि के समय की

उपासना कर फिर रात्रि के अन्त मे सर्ग करने के कारण से ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥१॥ उस जल मे वायु के स्वरूप मे होकर विचरण करता था क्योंकि उस समय स्थावर और जङ्गम सब के नष्ट हो जाने पर वहाँ केवल अ धकार ही अन्धकार था ॥२॥ समस्त यह पृथ्वीतल चारो ओर मे जल मे ही समनुव्याप्त हो रहा था और वहाँ समस्त प्राणी विभाग रहित होते हुए सुस्थित थे ॥३॥ जिस तरह वर्षा ऋतु मे रात्रि के समय मे खद्योत इधर से उधर विचरण करता हुआ दिखाई दे जाता है इस तरह वह भी उस समय आकाश मे इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता था ॥४॥ उस समय प्रभु ने पुन प्रतिष्ठा के उपाय की खोज करते हुए उस जल के अन्दर गई हुई भूमि का ज्ञान प्राप्त किया ॥५॥ उस समय अनुमान से भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करने ने भूमण्डल के उद्धार करने के कार्य की ओर पूर्ण चेतना प्राप्त की और पहिले कल्प आदि में धारण किया हुआ शरीर का स्मरण किया ॥६॥ उस समय प्रजापति ने जल द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित इस भूमि को देखकर उन्होने तब बाराह का स्वरूप धारण कर जल के अन्दर प्रवेश किया था ॥७॥

उद्धृत्योर्वमिथाद्भचस्तु अपस्तास्तु स विन्यमत् ।
सामुद्रीस्तु समुद्रेपु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्या सोऽचिनोद्गिरीन् ॥८
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा सवर्त्तकाग्निना ।
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वश ॥९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु सहृता ।
निपक्ता यत्र यत्रासस्तत्रतत्राऽचलोऽभवत् ॥१०
स्कन्नाचलत्वादचला पवभि पर्वता स्मृता ।
गिरयोऽद्रुभिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चया ॥११
ततस्तु ता समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्ज्जलात् प्रभु ।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुन ॥१२
सप्त सप्त तु वर्पाणि तस्या द्वीपेपु सप्तसु ।
विपमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् ॥१३

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल मे निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसका समुद्रो मे और जो नदियो से सम्बद्ध था उसका नदियो मे विन्यास किया। जो पृथ्वी से समन्वित था उसे पृथ्वी मे ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतो को चुन दिया था ॥८॥ पहिले सर्ग मे उस समय संवर्त्ताग्नि के द्वारा चारो ओर से दाह के होने से भूमि मे उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव मे वायु के द्वारा संहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहाँ वहाँ वह अचल हो गये थे ॥१०॥ वे स्कन्न होकर अचल होने से अचल और इनमे पर्वों के होने के कारण से ये पर्वत कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से गिरि और शिलाओं के बहुत से चयन होने के कारण से इन्हें 'शिलोच्चय' कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को अन्तर्जल से उद्धृत करके पुनः उसे अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपो मे सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप मे थे उनको समान बनाकर पर्वतो को शिलाओं से चुन दिया था ॥१३॥ उन द्वीपो मे चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त मे समवस्थित थे। सर्ग के आदि मे वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूराद्याश्चतुरो लोकाश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ॥१६
अब्लिपस्य चास्य ब्रह्मा व ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१७

स्वर्गं दिश समुद्राश्च नदी सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनां तथात्मानमात्मान वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवा काष्ठा कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिरात्र्यहम् ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ॥१९
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मान स सृष्ट्वा वै युगावस्था विनिर्ममे ॥२०
कृत त्रेता द्वापर च कलि चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजा ॥२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर मे अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सवप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहो के साथ भू-इस नाम वाले चार लोको का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्थानो की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियों का सृजन किया। जैसे—जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और उसी प्रकार से दिव-इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पवत समस्त ओषधियो के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और वीरुधो के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक पृथक् स्थानो के अभिमानी अर्थात् उनमे रहने वाले उन्होंने स्थानों के स्वरूपो का सृजन कर फिर युगों की अवस्था का निर्माण किया था ॥१९-२०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारो युगो का सृजन कर कल्प के आदि काल मे उनने सवप्रथम कृत युग में प्रजाओ की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्य पूर्वकाल प्रजास्तु ना ।
तस्मिन् सवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोक जनलोक समाश्रिता ।
प्रवर्तन्ति पुन सर्गे वीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
वीजार्थेन स्थितास्तत्र पुन सर्गस्य कारणात् ।

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसको समुद्रों में और जो नदियों से सम्बद्ध था उसका नदियों में विन्यास किया। जो पृथ्वी से सम्बन्धित था उसे पृथ्वी में ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को चुन दिया था ॥८॥ पहिले युग में उस समय संवर्त्ताग्नि के द्वारा चारों ओर से दाह के होने से भूमि में उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव में वायु के द्वारा बहुत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहीं वहीं वह अचल हो गये थे ॥१०॥ वे एकत्र होकर अचल होने से अचल और इनमें पर्वों के होने के कारण से ये पर्वत कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निर्गीर्ण हो जाने से गिरि और शिलाओं के बहुत से चयन होने के कारण से इन्हें शिलोच्चय कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को अन्तर्जल से उद्धृत करके पुनः उस अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपों में सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप में थे उनको समान बनाकर पर्वतों को शिलाओं से चुन दिया था ॥१३॥ उन द्वीपों में चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त में समवस्थित थे। सर्ग के आदि में वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूराद्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ॥१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१७

स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनां तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवा काष्ठा कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिरात्र्यहम् ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयमाब्दयुगानि च ॥१९
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मानः स सृष्ट्वा वै युगावस्था विनिर्ममे ॥२०
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ॥२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर मे अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहो के साथ भू-इस नाम वाले चार लोको का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्थानो की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियो का सृजन किया। जैसे-जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और उसी प्रकार से दिव इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पर्वत समस्त ओषधियो के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और वीरुधो के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक पृथक् स्थानो के अभिमानी अर्थात् उनमे रहने वाले उन्होंने स्थानो के स्वरूपो का सृजन कर फिर युगो की अवस्था का निर्माण किया था ॥१९-२०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारो युगो का सृजन कर कल्प के आदि काल मे उनने सर्वप्रथम कृत युग मे प्रजाओ की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकाले प्रजास्तु ताः ।
तस्मिन् संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ।
प्रवर्तन्ति पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ।

ते सर्वे रजसोद्रिक्ता शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिण ॥ ७
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुत पुन ।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृता ॥३८
पद्भ्या सहस्रमन्यत्तु मिथुनाना ससर्ज ह ।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निश्रीका ह्यल्पतेजस ॥ ६
ततो वै हृष्यमाणास्त द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिन ।
अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमु ॥४०
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यत ।
मासे मासेर्त्तव यद्यत्तदाज्ञासीद्धि योषिताम् ॥४१
तस्मात्तदा न सुषुवु सेवितैरपि मैथुन ।
आयुषोऽन्त प्रसूयन्त मिथुना येव त सकृत् ॥४२

इसके अनन्तर सर्ग के अवष्टब्ध हो जाने पर सृजन की पूर्ण इच्छा रखने वाले ब्रह्माजी के जो सत्व के अभिध्यान करने वाले थे उस समय उन्होंने मुख से सहस्रो प्रजा के मिथुन उत्पन्न किये वे मनुष्य सत्व के उद्रेक से अच्छे चित्त वाले होते हैं ॥३५ ३६॥ उन्होंने सहस्रो मिथुनो को अपने वक्ष स्थल से उत्पन्न किया वे सभी रजोगुण के उद्रेक वाले थे जो शुष्मी होते हुए भी अशुष्मी थे ॥३७॥ अन्य सहस्रो द्वन्द्वो को ब्रह्माजी ने अपने उरुओ से उत्पन्न किया था जो कि रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक वाले थे और वे ईहा के स्वभाव वाले कहे गये हैं ॥३८॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सहस्रो जोडो को अपने चरणो से उत्पन्न किया था जो कि सभी तमोगुण के उद्रेक वाले थे और श्रीरहित एव तेज से शून्य थे ॥३९॥ इसके अनन्तर अपने अपने द्वन्द्वो के रूप मे उत्पन्न होने वाले वे सभी प्राणी परम प्रसन्न हुए और अन्योन्य काम-वासना मे लिप्त होकर मैथुन में प्रवृत्त हो गये ॥ ४ ॥ तभी से लेकर इस कल्प मे मिथुन उत्पत्ति कही जाती है । प्रत्येक मास मे स्त्रियो को जो ऋतु धर्म होता था वह उस समय उसी ब्रह्मा की आज्ञा थी ॥४१॥ इस लिये उस आर्त्तव काल मे मैथुन के सेवन करने वालो ने भी स्त्रियो के साथ शयन नहीं किया । आयु के अन्त में ही वे एकबार मिथुनो का प्रसव करते हैं ॥४२॥

कुटका कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिता ।
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनाना हि सम्भव ॥४३
ध्याते तु मनसा तासा प्रजाना जायते सकृत् ।
शब्दादि विषय शुद्ध' प्रत्येक पञ्चलक्षण ॥४४
इत्येव मनसा पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापते ।
तस्यान्ववाये सम्भूतायैरिद पूरित जगत् ॥४५
सरित्सर समुद्राश्च सेवन्ते पर्वतानपि ।
तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६
पृथ्वीरसोद्भव नाम आहार ह्याहरन्ति वै ।
ता प्रजा कामचारिण्यो मानसी सिद्धिमास्थिता ॥४७
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता निर्विशेषा. प्रजास्तु ता ।
तुल्यमायु सुख रूप तासा तस्मिन्न कृते युगे ॥४८
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता कल्पादौ तु कृते युगे ।
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ॥४६

कुटक और कुविक मरने की इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं। तभी से लेकर इस कल्प मे मिथुनो का जन्म हुआ था ॥४३॥ मन से ध्यान करने पर उन प्रजाओ का एकबार पांच लक्षणो वाला शुद्ध शब्दादि का विषय उत्पन्न होता है ॥४४॥ इसी प्रकार से प्रजापति की जो पूर्व सृष्टि पहिले हुई उसी अन्ववाय मे उसकी यह समस्त प्रजा हुई है जिनसे यह समस्त जगत् परिपूरित हो रहा है ॥४५॥ वह प्रजापति की प्रजा सरित् सरोवर, समुद्र और पर्वतो का सेवन करती है। उस समय युग में वे सब अत्यन्त जल, शीत और उष्णता से रहित होते हुए सवत्र विचरण किया करते हैं ॥४६॥ वह समस्त प्रजा अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली मानसी सिद्धि मे अवस्थित होती हुई पृथ्वी के रस से उत्पन्न आहार को ग्रहण करती है ॥४७॥ उस कृत युग मे उन प्रजाओ में धर्म तथा अधम कुछ भी नही थे। उस समय की वह प्रजा विशेषता रहित थी। उन सब की तुल्य आयु सुख और रूप था। कही भी कुछ भी आपस में अन्तर नही था ऐसा सतयुग की समस्त प्रजा थी ॥४८॥ कल्प के आदि मे कृत

युग म उन प्रजाओ मे धर्म और अधर्म कुछ भी नही था । कृत युग मे वे सब अपने-अपने अधिकार के अनुसार सृजन करते थे ॥४६॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया ।
आद्य कृतयुगं प्राहु सन्ध्यानान्तु चतु शतम् ॥५०
तत सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि ।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वश्चापि च क्रम ॥५१
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ता ।
विशोका सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजा ॥५२
ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसा ।
पशव पक्षिणश्च व न तदासन् सरीसृपा ॥५३
नोद्भिज्जा नारकाश्च व त ह्यधर्मप्रसूतय ।
न मूलफलपुष्पञ्च नार्तवं ह्य तवो न च ॥५४
सर्वकामसुख कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता ।
मनोभिलषिता कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ॥५५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्या व ताभिर्ध्याता रसास्थिता ।
बलवर्णकरी तासां सिद्धि सा रोगनाशिनी ॥५६

दिव्य संख्या से चार हजार वर्ष का आद्य कृत-युग कहा गया है और चार सौ वर्ष सन्ध्याओ के कहे गये है ॥५ ॥ उन सहस्रो प्रथित प्रजाओ मे उनका कोई प्रतिघात नही होता है न कोई द्वन्द्व होता है और न कोई क्रम होता है ॥५१॥ कृत युग मे प्रजा पर्वत और समुद्र के सेवन करने वाली थी तथा बिना निकेत और आश्रय वाली थी । उस समय उन प्रजाओ मे शोक का अभाव था सत्त्व की प्रचुरता थी और एकान्त सुख से युक्त थी ॥५२॥ कृत युग मे समस्त प्रजा स्वेच्छानुकूल आचरण करने वाली और नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाली थी । उस समय पशु पक्षी और सरीसृप नही थे ॥५३॥ अधर्म से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे नारकीय पुरुष और उद्भिज भी नही थे । न मूल था न पुष्प थे और न फल ही थे तथा ऋतु का धर्म और ऋतु भी नही थे ॥५४॥ कृत युग मे उस समय समस्त कामो मे सुख देने वाला

काल था। उस समय न अधिक उष्णता थी और न शीतलता ही थी। उस समय उन कृतयुग की प्रजाओ के सभी काम मन के अभिलाषित ही सर्वत्र और सदा होते थे ॥५५॥ पृथिवी मे उनके द्वारा ध्यान की हुई इससे उत्थित बल और वर्ण को करने वाली उनकी सिद्धि उठती थी जो समस्त रोगो के नाश करने वाली थी ॥५६॥

असस्कार्यं शरीरैश्च प्रजास्ता स्थिरयौवना ।
तासा विशुद्धात् सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुना प्रजा ॥५७
सम जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ता समम् ।
तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टि सुख दम ॥५८
निर्विशेषा कृता सर्वा रूपायु शीलचेष्टितै ।
अबुद्धिपूर्वक वृत्त प्रजाना जायते स्वयम् ॥५९
अप्रवृत्ति कृतयुगे कर्मणो शुभपापयो ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न सङ्कर ॥६०
अनिच्छाद्वेपयुक्तास्ते वर्त्तयन्ति परस्परम् ।
तुल्यरूपायुप सर्वा अधमोत्तमवर्जिता ॥६१
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्त कृते युगे ।
नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबला ॥६२
लाभालाभौ न तास्वास्ता मित्रामित्रे प्रियाप्रिये ।
मनसा विषयस्तासान्निरीहाणा प्रवर्त्तते ।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चैव हि ॥६३

न सस्कार करने के योग्य शरीरो के द्वारा वह समस्त प्रजा स्थिर यौवन वाली थी। उनके विशुद्ध सङ्कल्प से मिथुन प्रजा उत्पन्न हुई ॥५७॥ उन सब का जन्म और रूप समान ही था और वे साथ ही मरते भी थे। उस समय सब मे सत्य—लोभ का अभाव—क्षमा–तुष्टि–सुख और दम वत्तमान था। रूप, आयु, शील और चेष्टितों के द्वारा सब विशेपता से रहित कर दिये थे। प्रजाओ का वृत्त अबुद्धि के साथ स्वय होता है ॥५९॥ कृतयुग मे पाप और शुभयुक्त कर्मों मे प्रवृत्ति का अभाव रहता था। उस समय सतयुग मे चारो वर्णो और चारो

आश्रमो की कोई भी व्यवस्था ही नही थी और न कृतयुग मे वर्ण सङ्करता ही थी ॥६ ॥ उस समय के लोग सब इच्छा और द्वेष से युक्त न होते हुए ही पर स्पर मे बरताव किया करते थे । उस समय न तो कोई किसी स उत्तम था और न कोई अधम ही अर्थात् उत्तमाधम के होने का कोई अवसर ही नही था और सब समान वय और रूप वाले थे । ६१॥ कृतयुग मे प्राय सभी सुख से युक्त और शोक से रहित थे और इसी प्रकार का जीवन लेकर उत्पन्न होते है । वे नित्य ही प्रहृष्ट चित्त वाले महान् सत्व से सयत और महान् बल वाले थे ॥६२॥ उस समय के व्यक्तियो के विचार मे कोई लाभ या कुछ अलाभ अर्थात् हानि है ऐसा होता ही नही था । उनमे न कोई किसी का मित्र था और न कोई शत्रु अर्थात् मित्रामित्र का भेद भाव सवथा था ही नही । किसी का प्रिय और किसी का अप्रिय होने की भावना भी बिल्कुल नही थी । बिना ईहा वाले उनका विषय मन से प्रवृत्त होता है । वे अन्योन्य की कोई लिप्सा नही करते है और न किसी पर कोई अनुग्रह किया करते हैं ।।६३॥

ध्यान पर कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यत ।
प्रवृत्त द्वापरे यज्ञ दान कलियुगे वरम् ॥६४
सत्त्व कृत रजस्त्रेता द्वापरन्तु रजस्तमो ।
कलौ तमस्तु विज्ञेय युगवृत्तवशेन तु ।६५
काल कृत युगे त्वेष तस्य सख्यान्निबोधत ।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणा तत् कृत युगम् ॥६६
सन्ध्याशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च सख्यया ।
तदा तासा बभूवायुर्न च क्लेशविपत्तय ॥६७
तत कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्याशे हि गते तु व ।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सवश ॥६८
सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु ।
एव कृते तु नि शेषे सिद्धिस्त्वन्तदधे सदा ॥६९
तस्याञ्च सिद्धौ भ्रष्टाया मानस्यामभवत्तत ।
सिद्धिरन्या युगे तस्मिस्त्रेतायामन्तरे कृता ॥७०

कृतयुग मे सबसे प्रधान ध्यान माना गया है और त्रेतायुग मे ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व होता है। द्वापर युग मे यज्ञ यागादि का सबसे अधिक गौरव माना जाता था और इस कलियुग मे दान की सर्वश्रेष्ठता मानी गई है ॥६४॥ युगवृत्त की वशता के कारण से कृतयुग मे सत्त्वगुण—त्रेता मे रजोगुण—द्वापर मे रजोगुण और तमोगुण तथा कलियुग मे केवल तमोगुण का आधिपत्य रहता है। ६५॥ कृतयुग मे जो काल होता है उसकी सख्या समझ लो। चार सहस्र वर्ष का वह कृतयुग होता है ॥६६॥ उसके सध्या-सन्ध्याश दिव्य आठ सौ वर्ष सख्या मे होते हैं। उस समय उनकी आयु ऐसी ही होती थी कि उसमे कोई भी क्लेश तथा विपत्तियाँ नही होती थी ॥६ ॥ इसके अनन्तर उस कृतयुग के सन्ध्याश के चले जाने पर एक पाद से अवशिष्ट युग-धर्म सभी ओर से होता है ॥६८॥ अन्तकाल मे युग की सन्ध्या के भी व्यतीत हो जाने पर युग का एक पाद से सन्ध्या-धर्म अवस्थित रहता है । इस प्रकार से कृतयुग के निशेष हो जाने पर उस समय सिद्धि अन्तर्हित हो जाती है ॥६९॥ तब उस मानसी सिद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर उस युग मे त्रेता मे अन्तर मे की हुई अन्य सिद्धि होती है ॥७१॥

सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिता ।
अष्टौ ता क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति सक्षयम् ॥७१
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागश ।
वर्णाश्रमाचारकृत कर्मसिद्धोद्भव स्मृत ॥७२
सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चाशत ।
कृतसन्ध्याशका ह्येते त्रीस्त्रीन् पादान् परस्परान् ।
ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते त। श्रुतवलायुषै ॥७३
तत कृताशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम् ।
त्रेताया युगमन्यन्तु कृताशमृषिसत्तमा ॥७४
तस्मिन् क्षीणे कृताशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह ।
कल्पादौ सप्रवृत्तायास्त्रेताया प्रमुखे तदा ॥७५

पुन कालान्तरेणैव पुनल्लोभावृतास्त ता ।
वृक्षास्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात् ॥८६
तासा तेना पचारेण पुनल्लोककृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्ध कल्पवृक्षा क्वचित् क्वचित् ॥९०

तब उस समय उन वृक्षो के प्रनष्ट हो जाने पर वे बहुत ही भ्रान्त हुए उनकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुलित हो गई तब सत्य के अभिध्यायी उन्होंने उस सिद्धि का ध्यान किया ॥८५॥ फिर सिद्धि के ध्यान से वे सब गृह में रहने वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हो गये थे। और वे वस्त्र फल तथा अनेक आभरणो का प्रसव किया करते हैं ॥८६॥ उन प्रजाओ के उन्ही वृक्षो मे गन्ध वर्ण और रस से युक्त महान् वीर्य युक्त पुट पुट मे अमाक्षिक मधु उत्पन्न होता है ॥८७॥ त्रेतायुग के आरम्भ काल मे सभी प्रजा उसी का व्यवहार करते थे। इसमे वे सब परम हृष्ट पुष्ट और उस सिद्धि से विगत ज्वर अर्थात् दुःख रहित हो गये ॥८८॥ फिर कुछ काल के पश्चात् ही लोभ से आवृत हुए उन वृक्षो का परिग्रहण करते हैं और बलपूर्वक उनका मधु अथवा माक्षिक भी ग्रहण करते हैं ॥ ८९ ॥ उनके उस लोक कृत अपचार से फिर कहीं-कहीं वे कल्प वृक्ष मधु के साथ ही साथ नष्ट हो गये थे ॥९० ॥

तस्यामेवाल्पशिष्टाया सन्ध्याकालवशात्तदा ।
प्रावर्तत तदा तासा द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ॥९१
शीतवातातपस्तीव्र स्ततस्ता दुःखिता भृशम् ॥
द्वन्द्वैस्ता पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥९२
कृत्वा द्वन्द्व प्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्व निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ॥९३
यथायोग्य यथाप्रीति निकेतष्ववसन् पुन ।
मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च ।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वान शाश्वतोदकम् ॥९३
यथायोग यथाकाम समेषु विषमेषु च ।
आरब्धास्ते निकेता व कर्तु शीतोष्ण वारणम् ॥९५

ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।
ग्रामांश्चैव यथाभाग तथैवान्त पुराणि च ॥९६

तासामायामविष्कम्भान् सनिवेशान्तराणि च ।
चक्रुस्तदा यथाप्राज्ञ प्रदेश सज्ञितस्तु तै ॥९७

अगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यास प्रादेश उच्यते ।
ताल स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥९८

कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशागुल उच्यते ।
रत्निरगुलपर्वाणि सख्यया त्वेकविंशति ॥९९

उस समय सन्ध्या काल के कारण से जोकि सन्ध्या का थोड़ा-सा भाग ही शेष रह गया था उन प्रजाओ मे द्वन्द्वो की उत्पत्ति हुई अर्थात् 'सुख दु ख' आदि के जोड़े उत्पन्न हो गये ॥९१॥ तब तो वे अति तीव्र शीत, वात, आतप के द्वन्द्वो से बहुत उत्पीडित हुए और वे परम पीडा मान होकर उन द्वन्द्वो से बचाव करने के लिये अपने आवरण करने लगे । ९२॥ सुख-दु खादि द्वन्द्वो का प्रतीकार करके वे सब घरो मे निवास करने लगे जिससे शीतलता, उष्णतादि मे पूर्ण बचाव हो जावे । इसके पूर्व वे सभी स्वेच्छाचारी थे और किसी भी घर का आश्रय लेकर नही रहते थे ॥९३॥ योग्यता और प्रीति के अनुसार फिर घरो में निवास करते हुए रहने लगे । मरुधन्वाओं मे, नीचे स्थानो मे, पर्वतो मे और नदियो मे जहाँ कि निरन्तर जल विद्यमान रहता है वे ऐसे दुर्गों को अर्थात् पूर्ण सुरक्षित स्थानों का आश्रय लेते थे ॥ ९४ ॥ जैसा भी योग हो और जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार समतल और विषमतल में उन्होने शीत और उष्णता का वारण करने के लिये अपने घरो का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था ॥९५॥ इसके पश्चात् खेटो तथा पुरो की स्थापना की थी और भाग के अनुसार ग्रामो की और अन्तपुरो की स्थापना की गई थी ॥९६॥ उनके आयाम और विष्कम्भो की तथा अन्दर के सन्निवेशो का बुद्धि के अनुसार निर्माण किया और उस समय उन्ही के द्वारा 'प्रवेश' यह सज्ञा रखी गई थी ॥९७॥ प्रदेशिनी से अगुष्ठ का व्यास 'प्रादेश' कहा जाता है । मध्यमा से 'ताल' और अनामिका से 'गोकर्ण' कहा गया है ॥ ९८ ॥ कनिष्ठिका से 'वितस्ति' जोकि द्वादशागुल कहा

जाता है अ गुलियो के पव जो मध्य मे इक्कीस होते हैं रत्नि कहे जाते हैं ॥६६।

चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्त स्यादगुलानि तु ।
किष्कु स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदगुलम् ।।१००
चतुर्हस्त धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनु सहस्र द्व तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥१ १
अष्टौ धनु सहस्राणि योजन तन्निरुच्यते ।
एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्तत कृत ॥१ २
चतुर्णामेव दुर्गाणा स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिम दुर्ग तस्य वक्ष्याम्यह विधिम् ।।१ ३
सौधोच्चवप्रप्राकार सर्वतश्चातिकावृतम् ।
तदेक स्वस्तिकद्वार कुमारीपुरमेव च ।।१०४
श्रोतसीसह तद्द्वार निखात पुनरेव च ।
हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मता ।।१०५
खेटाना नगराणाच ग्रामाणाचैव सर्वश ।
त्रिविधानाच दुर्गाणा पर्वतोदकव धनम् ।।१०६

चौबीस अ गुल का हस्त होता है। दो रत्नियो का किष्कु होता है जोकि बयालीस अ गुल का होता है ॥१ ॥ चार हस्त का धनु होता है और दो नालिका दण्ड होता है। दो सहस्र धनुओ का गव्यूति होता है ॥१ १॥ आठ सहस्र धनुओ का एक योजन कहा जाता है। इस योजन से ही सन्निवेश किया गया था ॥१ २॥ चार दुर्गो मे तीन तो अपने से उत्थित थे और चौथा दुर्ग कृत्रिम था जिसकी विधि को मैं कहता हूँ ॥१ ३॥ सब ओर से खातको से आवृत ऊँचे प्राकार वाला सौध होता है। उसमे एक स्वस्तिक द्वार होता है और कुमारी पुर होता है ॥१ ४॥ श्रोतसी के साथ वह द्वार निखात (खु ा हुआ) होता है। वह आठ हाथ दश हाथ अथवा नौ हाथ का दूसरे मानते हैं ॥१०५॥ खेटो के नगरों के और ग्रामो के सब ओर से और तीन प्रकार के दुर्गों के पर्वतोदक बन्धन होता है ॥१ ६॥

त्रिविधानाच दुर्गाणा त्रिष्कम्भायाममेव च ।
योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ॥१०७
परमार्द्धार्द्धमायाम प्रागुदक्प्रवर पुरम् ।
छिन्नकर्ण विकर्णन्तु व्यञ्जन कृशमस्थितम् ॥१०८
वृत्ता हीनञ्च दीर्घञ्च नगर न प्रशस्यते ।
चतुरस्रार्जव दिकस्थ प्रशस्त वै पुर परम् ॥१०९
चतुर्विंशतिराद्यन्तु हस्तानष्टशत परम ।
अत्र मध्य प्रशसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥११०
अथ किष्कुशतान्यष्टो प्राहुर्मुख्यनिवेशनम् ।
नगरादर्धविष्काभ खेट ग्राम ततो वहि ॥१११॥
नगराद्योजन खेट खेटाद्ग्रामोऽर्द्ध योजनम् ।
द्विक्रोश परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनु ॥११२

तीनो प्रकार के दुर्गों का विष्कम्भ जितना आयाम होता है। योजनो के अष्ट भाग और अर्ध भाग आयत विष्कम्भ होता है ॥१०७॥ परमार्थ के अर्ध आयाम वाला पहिले उदक से प्रवर पुर, छिन्न कर्ण, विकर्ण, व्यजन, कृश-सस्थित, वृत्त, हीन और दीर्घ नगर प्रशस्त नही कहा जाता है। चारो ओर से सिधाई वाला दिशाओ मे स्थित पुर परम प्रशस्त होता है ॥१०८-१०९॥ जिसका आद्य चौबीस हाथ और पर आठ सौ तथा ह्रस्व और उत्कृष्ट से रहित मध्य भाग हो उसकी प्रशसा करते हैं ॥११०॥ इसके अनन्तर आठ सौ किष्कु का मुख्य निवेशन कहा गया है। नगर से आधा विष्कम्भ खेट होता है और उससे वाहिर ग्राम होता है ॥१११॥ नगर से एक योजन खेट और खेट से आधा योजन ग्राम होता है। दो कोण परम सीमा होती है और चार धनुष क्षेत्र की सीमा होती है ॥११२॥

विशद्धनू पि विस्तीर्णो दिशा मार्गस्तु तै कृत ।
विशद्धनुर्ग्राममार्ग सीमामार्गो दशैव तु ॥११३
धनू पि दश विस्तीर्ण श्रीमान् राजपथ स्मृत ।
नृवाजिरथनागानामसम्बाध सुसचर ॥११४

धनूंषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु तैः कृताः ।
गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः ॥११५
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदञ्च गृहान्तरम् ।
वृत्तिमार्गास्त्वर्द्धपदः प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः ॥११६
अवस्कर परीवाहः पदमात्रः समन्ततः ।
कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥११७
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।
तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥११८
वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः ।
अत ऊर्द्धगताश्चान्या एवं तिर्य्यग्गताः पुरा ॥११९

बीस धनुष विस्तार वाला उन्होंने दिशाओं का मार्ग बनाया बीस धनुष का विस्तीर्ण ग्राम का मार्ग और दश धनुष विस्तार वाला सीमा का मार्ग बनाया था ॥११ ॥ दश धनुष विस्तार वाला शोभायुक्त राजपथ कहा गया है जोकि मनुष्य अश्व रथ हस्ती आदि का बाधा रहित सचार वाला होता है ॥११४॥ चार धनुष के विस्तार वाली ही शाखा रथ्या (गली) उन्होंने बनाई इसी प्रकार से गृहरथ्या उपरथ्या द्विका और उपरथ्यका घण्टापथ चतुष्पाद त्रिपद गृहान्तर वृत्तिमार्ग अर्द्धपद प्राग्वंश और पदिक कहा गया है ॥११५-११६॥ यह मात्र चारों ओर अवस्कर परीवाह उन स्थानों पर करने पर फिर घर किये ॥११७॥ जिस तरह वे पहिले गृह संस्थित वृक्ष थे पुन-पुन चिन्तन कर वैसा ही करना आरम्भ कर दिया ॥११ ॥ शाखाऐं और वृक्ष गये वैसे ही परागत नहीं हुए। इसलिये ऊपर की ओर गये हुए दूसरे थे इसी प्रकार थे पहिले तिरछे जाने वाले थे ॥११९॥

बुद्धाऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः ।
तथा कृतास्तु ते शाखास्तस्माच्छालास्तु ताः स्मृताः ॥१२
एवं प्रसिद्धा शाखाभ्यः शालाश्च व गृहाणि च ।
तस्मात्ता वै स्मृताः शाला शालात्वं चैव तासु तत् ॥१२१
प्रसीदन्ति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः ।

तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिता ॥१२२
कृत्वा द्वन्द्वोपघातास्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्ध कल्पवृक्षेषु वै तदा ।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिका ॥१२३
ततः प्रादुर्बभौ तासा सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासा हि कामतः ॥१२४
तासा वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
वृष्ट्या तदभवत्स्रोतः खातानि निम्नगा स्मृता ॥१२५
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्ज्जने ।
ये परस्तादपा स्तोका आपन्ना पृथिवीतले ॥१२६
अपाम्भूमेश्च सयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ता प्रजज्ञिरे ॥१२७
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्याऽरण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ॥ २८

खूब समझ कर खोज करते हुए का वैसा ही न्याय है जैसा कि वृक्ष मे रहने वाली शाखाएँ होती हैं। उनके द्वारा की हुई शाखाएँ है इसमे वे शालायें कहलाई गई हैं ॥१२०॥ इस प्रकार से शाखाओ से शालाऐ और गृह प्रसिद्ध हुए। इसी से वे शालाऐ कहलाई और उनमे वह शालत्व था ॥१२१॥ उनमे मन प्रसन्न होता है और वे मन को प्रसाद युक्त करती भी हैं। इसी से गृह और शालाऐ प्रसाद सज्ञा से युक्त हुए हैं ॥१२२॥ उन द्वन्द्वो के उपघातों को करके अर्थात् सुख-दुखादि स्वरूप जो बहुत से ससार मे द्वन्द्व (जोडे) हैं उनका निवारण करके अर्थात् गृहादि का निर्माण करके बचाव करके अब जीविका के उपाय के विषय मे चिन्तन किया अर्थात् रोजी कैसे चले, यह विचार किया। उस समय मधु के साथ कल्पवृक्षो के नष्ट हो जाने पर भूखी-प्यासी प्रजा विषाद से व्याकुल हो उठी ॥१२३॥ इसके अनन्तर उन प्रजाजनो को फिर त्रेता युग में वृत्ति की सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी इच्छा से जीविका और अर्थ के साधन करने वाली अन्य वृत्ति भी प्रादुभूत हुई ॥१२४॥ तब वृष्टि का जो जल था जो कि यहाँ पर निम्न स्थानो मे चला गया था, वृष्टि से वह स्रोत हो

गया और जो खन अर्थात् गहराई वाले खुले हुए थे वे नदियाँ कहलाई ॥ ॥१२५। इस तरह द्वितीय वृष्टि के सृजन मे नदियाँ प्रवृत्त हुई । जो जलो के परे छोटी थी और पृथ्वी तल मे प्राप्त हुई थी ॥१२६। भूमि और जल के संयोग से उनमे ओषधियाँ सम्पन्न हुई वे ओषधियाँ फूल मूल और फलो वाली उत्पन्न हुई थी ॥१२७॥ जो हल से नही जोते गये हैं और बोये गये हैं ऐसे ग्राम के चौदह अरण्य थे जो कि ऋतु के पुष्प और फलो से युक्त वृक्षो को और गुल्मो को उत्पन्न करते थे ॥१२८॥

प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु ।
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥१२९
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥१३
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् ॥१३१
सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याताः प्राकृते मया ।
ब्रह्मणो मानवास्ते व उत्पन्ना योजनादिह ॥१३२
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तथा ।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ॥१३३

त्रेता युग मे जीविका के कार्य मे औषध का प्रादुर्भाव हुआ । उस समय त्रेता युग मे प्रजा उस औषध से अपनी रोजी चलाती थी ॥१२९॥ त्रेता युग मे होने वाले अवश्यम्भावी अर्थ से फिर उन प्रजा जनो मे सभी ओर से राग और लोभ पुनः हो गया था ॥१३ ॥ इसके अनन्तर उन्होने नदी के क्षेत्रो को और पर्वतो का परिग्रहण किया और बल के अनुसार वृक्षो और गुल्मौषधियों को प्रसह्न किया । झाडी के रूप में रहने वाली औषधि गुल्मौषधि कही जाती है ॥१३१॥ जो सिद्ध आत्मा वाले थे वे सब मैंने पहिले प्राकृत मे बता दिये अर्थात् उनकी भली भाँति व्याख्या कर दी थी । यहाँ पर योजन से ब्रह्मा के द्वारा जो उत्पन्न हुए वे मानव थे ॥१३२॥ उस समय शान्त-शुष्मी कर्म करने वाले और दुःख से युक्त इसके पश्चात् पुनः प्रवर्त्तमान होते हुए त्रेता युग में उत्पन्न हुए ॥१३३॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।
भाविता पूर्वजान्तीपु कर्मभिश्च शुभाशुभै ॥१३४
ततस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसका ।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेपु वै ॥१३५
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजस ।
एव विप्रतिपन्नेपु प्रपन्नेशु परस्परम् ॥१३६
तेन दोषेण तेपा ता ओपध्यो मिपता तदा ।
प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्या सिकता यथा ॥१३७
अग्रसद्भूयु गवलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
फल गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्प पत्रैश्च या पुन ॥१३८
ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ता प्रजास्तदा ।
स्वयम्भुव प्रभु जग्मु क्षुधाविष्टा प्रजापतिम् ॥१३९
वृत्त्यर्थमभि लिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वा तासा मनीषितम् ॥१४०

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और द्रोह करने वाले मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों से पूर्व जातियो मे भावित होते हुए उत्पन्न हुए ॥१३४॥ यहाँ से जो उनमे बलवान् थे—सत्य के स्वभाव वाले थे-हिंसा का कम न करने वाले थे—अपनी आत्मा जीत लेने वाले और वीत लोभ अर्थात् लोभ से रहित थे, वे उनमे निवास करते थे ॥१३५॥ उनसे अन्य अल्प तेज वाले प्रतिग्रहण करते हैं। इस प्रकार से आपस मे विप्रतिपन्न और प्रपन्नो मे रहते है ॥१३६॥ उन सबके उस दोष से वे सब औषधियाँ उस समय मुष्टियो से सिकता की भाँति ह्रियमाण और प्रनष्ट हो गई ॥१३७॥ भूमि ने सबका ग्रास कर लिया। युग के बल से चौदह जो ग्राम्य अरण्य थे वे पुष्पो से फल को और पत्रो से पुष्प को ग्रहण करते हैं ॥ ॥१३८॥ इसके पश्चात् उन सभी के प्रनष्ट हो जाने पर उस समय सब प्रजा-जन विभ्रान्त होते हुए, भूख से आविष्ट होते हुए प्रजापति प्रभु स्वयम्भू के पास आये ॥१३९॥ त्रेता युग के आदि मे जीविका के लिये इच्छा करते हुए उनको देखकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनके बुद्धि स्थित विचार को जान लिया था ॥१४०॥

युक्त प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।
ग्रस्ता पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुन ॥१४१
कृत्वा वत्स सुमेरु तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।
दुग्धेय गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ॥१४२
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्ता ता पुन ।
ओषध्य फलपाकान्ता सप्तसप्तदशास्तु ता ॥१४३
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कारूपाश्च सतीनका ॥१४४
माषा मुग्दा मसूराश्च निष्पावा सकुलत्थका ।
आढक्यश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशा स्मृता ॥१४५
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातय स्मृता ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१४६

प्रत्यक्ष दृष्ट दर्शन से युक्त बात का विचार कर ब्रह्मा जी ने यह जान लिया कि पृथिवी ने समस्त ओषधियो को ग्रस लिया है और उन्होने पुन प्रति दोहन किया ॥१४१॥ ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछडा बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था। इससे उस समय दोहन की हुई यह गौ ने पृथ्वी तल में बीजों को उत्पन्न किया और उन बीजो ने पुन वे ग्राम्यारण्य उत्पन्न किये और सात सात दशा वाली ओषधियाँ जिनमे फलो का अन्त तक पाक होता था उत्पन्न हुई । व्रीहि–यव–गोधूम–अणु–तिल–उदार प्रियङ्गु –कारूष–सतीनक–माष (उड)–मुग्द (मूग)–मसूर और कुलत्थ के सहित निष्पाव–आढकी–चणक ये सात सात दशा वाले कहे गये हैं वे सब उत्पन्न हुए ॥१४२॥१४३॥१४४॥ ॥१४५॥ ये सब ग्राम्य ओषधियो की जातियाँ बतलाई गई हैं। और जो यज्ञिय ओषधियाँ हैं वे ग्राम्यारण्य चौदह हैं॥ ४६॥

व्रीहय सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका ॥१४७
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिला सगवेधुका ।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये ॥१४८

ग्राम्यारण्या स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
उत्पन्ना प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु ।।१४६
अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वश ।
वृक्षा गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातय ।।१५०
मूलै फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन् पुष्पैश्च जायते ।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा ।।१५१
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ता पुन ।।१५२
तत स तासा वृत्त्यर्थं वार्त्तोपाय चकार ह ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धि तु कर्मजाम् ।।१५३
तत प्रभृत्यथौषध्य कृष्टपच्या स्तु जज्ञिरे ।
समिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासा स्वयभुव ।
मर्यादा स्थापयामास यथारब्धा परस्परम् ।।१५४

व्रीहि, यव, माष, गोधूम अणु, तिल, सातवी प्रियङ्गु और आठवीं कुलत्थिका—श्यामाक, नीवार, जर्त्तिला, सगवेधुका, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कट ये चौदह ओषधियाँ ग्राम्यारण्य नाम से कही गई हैं ।। त्रेता युग के आदि मे पहिले ये ही उत्पन्न हुई थी ।।१४७।।१४८।।१४६।। हल की फाल से जो भूमि नही जुती हुई है, उसमे होने वाली ये ओषधियाँ हैं और सब ओर ग्राम्यारण्य हैं जिनमे वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, विरुध और तृण की जाति वाली ओषधियाँ होती हैं ।।१५७।। स्वयम्भू के द्वारा दुही हुई पृथ्वी ने जो बीज दिये उन सबके अङ्कुर उत्पन्न हुए और मूल फल और पुष्पो से युक्त हुए उत्पन्न होते हैं ।।१५१।। अपनी ऋतु में फल और पुष्प प्रदान करने वाली ओषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुई । जब ओषधियाँ प्रसृष्ट हो गई तो फिर नही उगती है ।।१५२।। इसके अनन्तर उन्होन उन प्रजाजनो की वृत्ति के लिये उपाय किये और भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ने उनके कर्मो से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देखा ।।१५३।। तब से लेकर कृष्ट पच्या ओषधियाँ उत्पन्न हुई । इसके अनन्तर उन प्रजा के जनो की जीविका के भली-भाँति सिद्ध हो जाने पर भगवान् स्वयम्भू के द्वारा परस्पर मे जैसे आरम्भ की गई थी वह मर्यादा स्थापित हो गई ।।१५४।।

ये व परिगृहीतारस्तासामा सन्निधात्मका ।
इतरेषा कृतत्राणा स्थापयामास क्षत्रियान् ॥१५५
उपतिष्ठन्ति ये तान्व यावन्तो निर्भयास्तथा ।
सत्य ब्रह्म यथा भूत ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ॥१५६
ये चा येऽप्यबलास्तेषा ऐश्यसकर्मसस्थिता ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथि या प्रागतन्द्रिता ।
वश्यानेव त तानाहु कीनाशान् वृत्तिसाधकान् ॥१५७
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रता ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्स ॥१५८
तेषा कर्माणि धर्माश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभ ।
सस्थितौ प्राकृतायां तु चातर्वणस्य सवश ॥१५९
पुन प्रजास्त ता मोहात् तान् धर्मान्नानुपालयन् ।
वर्ण धर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ॥१६०
ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन व प्रभु ।
क्षत्रियाणा बल दण्ड युद्धमाजीवमादिशत् ॥१६१
याजनाध्यापन चैव तृतीय च परिग्रहम् ।
ब्राह्मणाना विभुस्तेषा कर्माण्येता यथादिशत् ॥१६२

उनके परिगृहीता विधात्मक थ । दूसरो के त्राण करने वाले क्षत्रियों की स्थापना की । उनका जो उपस्थान करते है वे यथाभूत सत्य ब्रह्म को बोलने वाले ब्राह्मण थे जो कि निर्भय रहा करते थे अर्थात् क्षत्रियो के सरक्षण मे व है किसी भी बाधा आदि का भय नहीं रहता था ॥१५६॥ उनमे जो भी अन्य बल रहित थे और वश्य कर्मों मे सस्थित थे पहिले पृथ्वी मे अतन्द्रित का नाश कर देते थे । उन वृत्ति के साधक वैश्यो का कीनाश ही कहते हैं ॥१५७॥ शोच करते हुए-द्रव होते हुए जो परिचर्याओ मे निरत रहते हैं और जो तेज से हीन और अल्प वीर्य वाले है उन्हे वह शूद्र इस नाम से बोलता था ॥१५८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने प्राकृत सस्थिति मे सब ओर से चतुर्वर्ण के अनुसार उनके कर्मों की और धर्मों की व्यवस्था कर दी थी ॥१५९॥ फिर उन प्रजा के जनों ने मोह से उन धर्मों का पालन न करते हुए वे वर्णों के धर्मों के द्वारा जीविका

चलाते हुए परस्पर मे विरोध करने वाले हो गये ॥१६०॥ प्रभु ब्रह्माजी ने उस अर्थ को भली भाँति ठीक ठीक समझ कर क्षत्रियो की जीविका बल, दण्ड और युद्ध करना बतलाया था ॥१६१॥ यज्ञादि का यजन कराना, वेद और शास्त्रो का पढाना तथा दान ग्रहण करना ये तीन कर्म उन ब्राह्मणो के विभु श्री ब्रह्मा जी ने बताये थे ॥१६२॥

पाशुपाल्य च वाणिज्य कृपि चैव विशा ददौ ।
शिल्पाजीव भृतिञ्चैव शूद्राणा व्यदधात् प्रभु ॥१६३
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशा पुन ।
यजनाध्ययन दान सामान्यानि तु तेपु च ॥१६४
कर्माजीव ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।
लोकान्तरेपु स्थानानि तेपा सिद्ध्याऽददन् प्रभु ॥१६५
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा सग्रामेष्वपलायिनाम् ॥१६६
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममुपजीविनाम् ।
गान्धर्व शूद्रजातीना प्रतिचारेण तिष्ठताम् ॥१६७
स्थानान्येतानि वर्णाना व्यत्याचारवता स्वयम् ।
तत स्थितेपु वर्णेपु स्थापयामास चाश्रमान् ॥१६८
गृहस्थो ब्रह्मचारित्व वानप्रस्थ सभिक्षुकम् ।
आश्रमाश्चतुरो ह्येतान् पूर्वमास्थापयन् प्रभु ॥१६९

पशुओ का पालन करना व्यापार करना और कृषि का काम करना ये तीन कर्मो के करने की व्यवस्था ब्रह्माजी ने वैश्यो के लिये की और यही आदेश दिया । प्रभु ने दस्तकारी के द्वारा रोजी कमाना, नौकरी करना ये कर्म शूद्रो के करने के लिए बताये थे ॥१६३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के सामान्य कर्म स्वय यजन करना, स्वय अध्ययन करना और स्वय दान देना था । ये तीनो कर्म उन तीनो मे समान रूप से होते थे ॥१६४॥ इस प्रकार से इन सबके कर्म और आजीविका की व्यवस्था करके और उन्हे परस्पर में यह देकर फिर प्रभु ने दूसरे लोको मे सिद्धि से उनके स्थानो को भी दिया था ॥१६५॥ जो परम

क्रियावान् ब्राह्मण थे उनके लिये प्राजापत्य कहा गया है। जो संग्रामों में कभी पीठ दिखाकर शत्रु के समक्ष से भयोद्विग्न होकर पलायन नहीं किया करते थे उन क्षत्रियों को इन्द्र सम्बन्धी स्थान दिया गया था ॥१६६॥ अपने धर्म के अनुसार उपजीवन करने वाले वैश्यों के लिए दूसरे लोक में वायु का स्थान दिया था। शूद्र प्रतिचार से सेवावृत्ति करते हुए यहाँ लोक में रहते थे उन शूद्रों की जाति वाले पुरुषों के लिए दूसरे लोक में गन्धर्वों का स्थान दिया था ॥१६७। विशेष रूप से अपने आचार के पालन करने वाले उन वर्णों के लिये ये स्थान देकर फिर उन वर्णों के स्थित लोकों में चार आश्रमों की स्थापना की थी ॥१६८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की पहिले ही स्थापना की थी। १६९॥

वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते।
कृत कर्मा क्षिति प्राहुराश्रमस्थानवासिन ॥१७०
ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमाश्रमनामत ।
निर्देशार्थं ततस्तपा ब्रह्मा धर्मान् प्रभाषत।
प्रस्थानानि च तपा व यमाश्च नियमाश्च ह ॥१७१
चातुर्वर्णात्मक पूर्व गृहस्थश्चाश्रम स्मृत ।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च।
यथाक्रम प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ते ॥१७२
दाराग्निरथोऽथातिथय इज्याश्राद्धक्रिया प्रजा ।
इत्येष व गृहस्थस्य समासाद्धमसग्रह ॥१७३
दण्डी च मेखली चैव ह्यध शायी तथा जटी।
गुरुशुश्रूषण भैक्ष विद्यार्थ ब्रह्मचारिण ॥१७४
चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम्।
उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्य वासिनाम् ॥१७५

जो भी कोई इस संसार में वर्णों के कर्मों को नहीं करता है उसे आश्रम स्थान के निवास करने वाले कर्माक्षिति क्यों कहते हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी ने उन आश्रमों का नाम से स्थापन किया था। इसके पश्चात् उनके निर्देश के

लिये ब्रह्माजी ने स्वय उन धर्मों का बतलाया था, और प्रस्थान तथा उनके नियम और यम भी ब्रह्मा जी ने बताये थे ॥ १७१ ॥ यह एक ही गृहस्थ का आश्रम ऐसा है जो चारो वर्णो के स्वरूप वाला पहिले कहा गया है। यह गृहस्थाश्रम अन्य तीनो आश्रमो की प्रतिष्ठा का उद्भव स्थान ही होता है। अब यहाँ क्रम के अनुसार ही उनका यम तथा नियमो के साथ वर्णन करता हूँ ॥ १७२ ॥ पत्नी का वैदिक विधि से ग्रहण करना अग्नियो को आहित रखना, घर मे समागत अतिथियो के लिये श्रद्धाभाव से अतिथि सत्कार करना, यजन करना, श्राद्धादि की क्रिया का करना और प्रजा को जन्म देना अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना, ये ही सक्षेप से गृहस्थो के धर्मो का सग्रह किया है ॥ १७- ॥ अब ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म बतलाया जाता है—दण्ड का धारण करना, मौञ्जी मेखला का पहिनना, भूमि में शयन करना, शिर पर जटा धारण करना, गुरु की सेवा करना और भिक्षा करना, ये सब ब्रह्मचारी के धर्म होने हैं ॥ १७४ ॥ अरण्य मे निवास करने वालो के चीरपत्र और अजिन अर्थात् मृगचर्म वस्त्र होते हैं। धान्य, मूल, फल और औषध, आहार दोनो समय सन्ध्योपासना करना और स्नान करना आदि धर्म होते हैं ॥ १७५ ॥

आसन्नमुसले भैक्षमस्तेय शौचमेव च।
अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ॥१७६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशम स्मृतम्।
दशलक्षणिको ह्येष धर्म प्रोक्त स्वयम्भुवा ॥१७७
भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च।
आचारशुद्धिर्नियम शौचञ्च प्रतिकर्म च।
सम्यग्दर्शनमित्येव पञ्चैवोपव्रतान्यपि ॥१७८
ध्यान समाधिर्मनसेन्द्रियाणा ससागरैर्भैक्षमथोपगम्य।
मौन पवित्रोपचितर्विमुक्ति परिव्रजो धर्ममिम वदन्ति ॥१७९
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्तो आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम्।
सत्यार्ज्जवन्तप क्षान्तिर्योगिज्या दमपूर्विका ॥१-०
वेदा साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये।
न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ॥१८१

बहि कर्माणि सर्वाणि प्रसिद्धयन्ति कदाच न ।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान् ॥१८२

आश्रममुख्य में भिक्षा करना चोरी न करना शुद्धि रखना प्रमाद न करना तथा स्त्री-संग न करना प्राणियों में दया करना तथा क्षमा रखना, क्रोध न करना गुरु की सेवा करना और सत्य ये दश नियम एवं धर्म होते हैं । स्वयम्भू भगवान् ने यहा दश लक्षण वाला धर्म बताया है ॥ १७६–१७७ ॥ भिक्षु अर्थात् व वासी के पांच तो यहाँ व्रत होते हैं और पांच ही उपव्रत होते हैं । आचारों की शुद्धि नियम है और क्रोध का होना प्रतिकर्म होता है और सम्यक दर्शन इस प्रकार से पांच ही उपव्रत भी होते हैं ॥ १ ८ ॥ मन से इन्द्रियों का ध्यान समाधि सागर के सहित भिक्षा प्राप्त करके और पवित्र उप चितों से विमुक्ति प्राप्त करना यही पारिव्राज धर्म कहते हैं । १७९ ॥ ये सब आश्रम ब्रह्माजी ने स्वयं ही कश्य प के लिये कहे हैं । सत्य आर्जव नय क्षान्ति दान इज्या और दम अङ्गों के सहित वेद यज्ञ व्रत और नियम ये सब भाव दोष के उपागत होने पर प्रदुष्ट के कभी सिद्ध नहीं होते हैं ॥ १८१ ॥ जिसका अन्तर्भाव प्रकुष्ट दोष से युक्त होता है उसके पराक्रम करते हुये भी बाहिर से समस्त कर्म कभी प्रसिद्ध नहीं होते हैं अर्थात् केवल दिखावे के कर्मों से कोई अभीष्ट सिद्धि नहीं होता है ॥ १८२ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ।
न तेन धर्मभाक स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ॥१८३
एव देवा सपितर ऋषयो मनवस्तथा ।
तेषा स्थानमथुर्ध्वमस्तु सस्थिताना प्रचक्षते ॥१८४
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्व रेतसाम् ।
स्मृत तु तेषां तत्स्थान तदेव गुरुवासिनाम् ॥१८५
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थान स्मृतन्तद्व दिवौकसाम् ।
प्राजापत्य गृहस्थाना न्यासिना ब्रह्मण क्षय ।
योगिनाममृत स्थान नानार्थीना न विद्यते ॥१ ६
स्थानान्याश्रमिणा तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिता ।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिता ॥१८७

ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्य मन्वन्तरे भुवि ।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वार रवि स्मृत ॥१८८
तथैव पितृयाणाना चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एव वर्णाश्रमाणा वै प्रविभागे कृते तदा ।
यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिका ॥१८९

चाहे कोई अपनी कलुषित आत्मा से अपना सर्वस्व भी क्यो न दे देवे, उस दिये दान से वह कभी भी धर्म का भागी नही हो सकता है क्योंकि इस दान आदि के कर्म मे भाव ही मुख्य कारण होता है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार से पितर-ऋषिगण और मनुवृन्द इस लोक मे सस्थित होने वाले उनका स्थान बतलाया जाता है ॥ १८४ ॥ ऊर्द्ध्वरेतस ऋषियो की सख्या अठ्ठासी हजार है उनका वह स्थान है, वही गुरुवासी सप्तर्षियो का स्थान है और वही दिवौकस अर्थात् देवताओ का स्थान कहा गया है । गृहस्थो का प्राजापत्य न्यास करने वालो का ब्रह्मा का क्षय और योगियो का अमृत स्थान है और जो नाना धी वाले हैं उनका कोई नही है ॥ १८५–१८६ ॥ जो अपने-अपने धर्म मे व्यवस्थित रहते हैं उन्ही आश्रमो मे रहने वालो के स्थान होते हैं । ये चार मार्ग देवयान बनाये गये हैं ॥ १८७ ॥ भूमण्डल पर आद्य मन्वन्तर मे लोकतन्त्र ब्रह्माजी के द्वारा देवयान के लिये मार्ग बनाये गये हैं और उनका द्वार रवि कहा गया है ॥१८८॥ उसी प्रकार से पितृयान वालो का द्वार चन्द्रमा कहा जाता है । इस प्रकार से उस समय मे वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग करने पर जब इसकी प्रजा वर्णाश्रम के स्वरूप वाली व्यवहार नही करती है ॥ १८९ ॥

ततोऽन्या मानसी सोऽथ त्रेतामध्ये ऽसृजत् प्रजा ।
आत्मन स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ॥१९०
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्य प्राप्ते क्रमेण तु ।
ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजा स्रष्टु प्रचक्रमे ॥१९१
तत सत्वरजोद्रिक्ता प्रजा सोऽथासृजत् प्रभु ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा वार्त्तायाश्चैव साधिका ॥१९२
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।
युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिता प्रजा ॥१९३

उपस्थित तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुव ।
अ दध्यौ प्रजा सर्वा नानारूपास्तु मानसा ॥१६४
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यञ्जनलोक समाश्रिता ।
कल्पऽतीत तु त ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥१६५
ध्यायतस्तस्य ता सर्वा सम्भूत्यर्थमुपस्थिता ।
मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मता ॥१६६
ख्यात्यानुबन्धस्तस्तस्तु सर्वार्थैरिह भाविता ।
कुशलाकुशलप्राय कर्मभिस्त सदा प्रजा ।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धा प्रजज्ञिरे ॥१६७
देवासुरपितृत्वश्च पशुपक्षिसरीसृप ।
वृक्षनारकिकीटत्वै स्तैस्तैर्भावैरुपस्थिता ।
आधीनार्थं प्रजानाञ्च आत्मनो वै विनिममे ॥१६८

इसके अन तर उन्होंने सता के मध्य मे अ य मानसी प्रजा की सृष्टि की थी । जो अपने से अपने शरीर से और अपनी आत्मा से तुल्य ही थे ॥१६ ॥ उस आद्य त्रेता युग मे क्रम से मध्य को प्राप्त होने पर इसके अनन्तर अ द वहाँ पर मानसी प्रजा के सृजन का उपक्रम किया था । १६१ ॥ इसके पश्चात् उस प्रभु ने सत्व और रजोगुण के उद्रेक वाली प्रजा का सृजन किया जो कि धर्म अर्थ काम और मोक्षो की तथा आजीविका की साधिका थी ॥ १६२ ॥ देव गण पितृवृन्द, ऋषि समुदाय और मनगण ये सब क्रम से युग के अनरूप ही थे जिन्होंने इस सम्पूर्ण प्रजा को विधित किया है ॥ १६३ ॥ उस समय मे स्वयम्भू के उस प्रजा धर्म मे उपस्थित होने पर वह नाना रूप वाला मानसी समस्त प्रजा ने अभिध्यान किया ॥ १६४ ॥ मैंने पहिले तुम से जो जनलोक मे आश्रित रहने वाली बताई थी कल्प के व्यतीत हो जाने पर वह देवाद्या प्रजा यहाँ थी ॥ १६५ ॥ सम्भूति के लिये उपस्थित उस समस्त प्रजा का ध्यान करते हुये उसके यहाँ म वन्तर के क्रम से प्रथम कनिष्ठ मे माने गये ॥ १६६ ॥ ख्याति स और सब अर्थों वाले उन उन अनुबन्धो से भावित प्रजा सवश उन कुशल और अकुशल कर्मों से तथा उन कर्मों के शेष फल से उपलब्ध होती हुई सत्पन्न

हुई ॥ १६७ ॥ देव, असुर, पितृत्व, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष, नारकिकीटत्व आदि भावों के द्वारा उपस्थित अपने आधीनता के लिये प्रजाओं का निर्माण किया ॥ १६८ ॥

॥ देव-सृष्टि वर्णन ॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजा ॥
तच्छरीरसमुत्पन्नै कार्यैस्त कारणै सह ।
क्षेत्रज्ञा समवर्तन्त गात्रेभ्य स्तस्य धीमत ॥१
ततो देवासुरपितॄन् मानवश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भास्येताश्च स्वात्मना समयूयुजत् ॥२
युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुव ।
तमिमध्यायत सर्गं प्रयत्नोऽभून् प्रजापते ॥३
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुता ।
असु प्राण स्मृतो विप्रास्तज्जन्मान स्ततोऽसुरा ॥४
यया सृष्टा सुरा,तन्वा ता तनु स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥५
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रि यामिका ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुव ॥६
दृष्ट्वा सुरास्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ।
अव्यक्ता सत्वबहुला ततस्ता सोऽभ्ययू युजत् ।
ततस्ता युञ्जतस्यस्य प्रियमासीत् प्रभो किल ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उनके उन कारणों के साथ उनके शरीर से समुत्पन्न कार्यों से मानसी प्रजा को जन्माया। उस धीमान के गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितर और चौथा मानव की सृष्टि करने की इच्छा वाले ने अपनी आत्मा से इनको और जलों को सयोजित कर दिया था ॥ २ ॥ इसके बाद स्वयम्भू के जन्म दाता युक्तात्मा उनके उस सर्ग का अभिध्यान करते हुये प्रजापति का प्रयत्न हुआ ॥३। इसके अनन्तर उसकी जांघ से पहिले असुर पुत्र उत्पन्न हुये। असु—यह प्राण

कहा गाया है। उसके जन्म देने वाले विप्र हैं। इससे असुर हुये ॥ ४ ॥ जिस शरीर मे सुरो का सृजन किया था वह तन उसने व्यपोहित कर दिया। उससे वह तन अर्थात् शरीर अपविद्ध हो गया इससे तुरन्त ही रात्रि उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ वह विशेप तम वाली थी इससे वह तीन याम वाली रात्रि हुई। इससे स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात्रि मे अन्धकार से एकदम आवृत्त हो गई थी ॥ ६ ॥ देवेश ने सुरो को देखकर अन्य तनु को प्राप्त किया जो कि अव्यक्त और सत्व की प्रभुता वाली थी। इसके पश्चात् उसने उसको योजित कर दिया था। उसको योजित करने वाले प्रभु का वह बहुत ही प्रिय था ॥ ७ ॥

ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवता ।
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवा प्रकीर्त्तिता ॥८
धातुर्दिवीति य प्रोक्त क्रीडाया स विभाव्यते ।
तस्यान्तन्वान्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवता ॥९
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्या मपद्यत ।
सत्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यां सोऽभ्यपद्यत ॥१०
पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभु ।
पितरो ह्युपपक्षाभ्यां राज्यह्नोरन्तरासजत ।
तस्मात्त पितरो देवा पुत्रत्वन्तेन तषु तत ॥११
यया सृष्टास्तु पितरस्तान्तनु स व्यपोहत ।
चापविद्धा तनुस्तेन सद्य सन्ध्या प्रजायत ॥१२
तस्मादहस्तु देवाना रात्रियाँ साऽसुरी स्मृता ।
तयोर्मध्ये तु व पत्री या तनु सा गरीयसी ॥१३
तस्माद् वासुरा सर्वे ऋषयो मनवस्तथा ।
ते युक्तास्तामुपासन्त ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥१४

दीव्यमान उसके मुख से फिर देवगण उत्पन्न हुये क्योकि ये दीव्यमान होते हुये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिए ये देवता कहे गये थे ॥ ८ ॥ दिवु—यह धातु जो कहा गया है वह क्रीडा के अर्थ मे होता है। उस दीव्यमान तनु मे देवता उत्पन्न हुये थे ॥ ९ ॥ फिर देवेश ने देवो का सृजन करके उसके पश्चात्

उसने अन्य शरीर धारण किया। उस देव ने सत्वमात्र के स्वरूप वाले अन्य शरीर को प्राप्त किया था ॥ १० ॥ उस प्रभु ने उन पुत्रों को पिता की भाँति मानते हुये पढ़ाया। वे उपपक्षों से पितर थे फिर प्रभु ने रात्रि और दिन के अन्तर भाग का सृजन किया था। इसी से वे देव पितर हुये क्योंकि उनमें उनका पुत्रत्व भाव था ॥ ११ ॥ जिस तनु से पितरों की सृष्टि की थी उस शरीर का उसने त्यागकर दिया। वह शरीर उससे अपविद्ध हो गया था फिर उससे तुरन्त ही सन्ध्या उत्पन्न हो गई थी ॥ १२ ॥ उससे देवों का दिन हुआ जोकि असुरों की रात्रि कही गई है। उन दोनों के मध्य में जो पैत्री तनू था वह बहुत ही गौरव से पूर्ण था ॥ १३ ॥ उससे सब देव, असुर ऋषि और मनु युक्त होते हुए ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर की उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत।
रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत् प्रभुः ॥१५
रजः प्रधान् ततः सोऽथ मानसानसृजत् सुतान्।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजाः ॥१६
दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वान्तनुन्तामपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥१७
तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः।
इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना ॥१८
सद्यो रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे।
ज्योत्स्ना सन्ध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका ॥१९
तस्माद्देवा दिव्यतन्वा हृष्टाः सृष्टा मुखात्तु वै।
यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा ॥२०
तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभुः।
प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ॥२१

इसके अनन्तर उस ब्रह्मा ने फिर एक अन्य शरीर प्राप्त किया था। वह शरीर रजोगुण के स्वरूप वाला था और उसे उस प्रभु ने मन से सृजन किया

था ॥१५॥ इसके अनन्तर उस रजोगुण की बहुलता वाले उस शरीर से मानस पुत्रों का सृजन किया था। फिर उसके मन से मानस प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ उन अपनी मानस प्रजा देखकर उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया क्योंकि वह तनु उससे अपविद्ध होगया था फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गई थी ॥१७॥ उससे ज्योत्स्ना के जन्म होने पर समस्त प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उस महापुरुष ने इस तरह इतने ये शरीर विशेष रूप से अपविद्ध किये थे ॥१८॥ फिर तुरन्त ही रात्रि दिन सन्ध्या ज्योत्स्ना (चाँदनी) उत्पन्न हुए। ज्योत्स्ना सन्ध्या और दिन सत्व मात्र स्वरूप वाले स्वय ही थे। रात्रि तमो मात्र स्वरूप वाली थी और वह तीन याम (प्रहर) के स्वरूप वाली थी ॥ १६ ॥ इनसे दिव्य तत्व वाले देव परम हृष्ट और मुख से सृष्ट हुए थे। क्योंकि उनका दिवा मे जन्म हुआ इसलिये वे दिवा के ही बलि ग्रहण करने वाले हैं ॥२ ॥ जो असुर रात्रि मे शरीर की जाँघ से प्रभु ने उत्पन्न किये थे वे प्राणो से रात्रि के ज म ग्रहण करने वाले हैं इसी से वे रात्रि मे असह्य होते हैं ॥ २१ ॥

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरै सह।
पितृणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु च।
मन्वन्तरेषु सर्वेषां निमित्तानि भवन्ति हि ॥२२
ज्योत्स्ना राभ्यहनी सन्ध्या चत्वार्याभासितानि वै।
भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽयं मनीषिभि ।
व्याप्तिदीप्त्या निगदित पुनश्चाह प्रजापति ॥२३
सोऽम्भास्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान्।
पितृश्च वासृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान् पुन ॥२४
तामुत्सृज्य तनु कृत्स्नान्ततोऽन्यामसृजत् प्रभु।
मूर्ति रजस्तम प्राया पुनरेवाभ्ययूयुजन् ॥२५
अन्धकारे क्षुधाविष्टस्ततोऽन्या सृजते पुन।
तेन सृष्टा क्षुधात्मानस्तेऽम्भास्यादातुमुद्यता ॥२६
अम्भास्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च।

राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचरा ॥२७
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भासि तेपा हृष्टा परस्परम् ।
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका क्रूरकर्मिण ॥२८

ये ही भविष्य मे होने वाले देवो के असुरो के साथ, पितरो के और अतीत तथा अनागत मानवो के सबवो के मन्वन्तरो में निमित्त होते हैं ॥ २२ ॥ ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार आभासित हैं। जिस कारण से ये भा-युक्त होते हैं इसी से इनका 'भा" यह शब्द मनीषियो ने व्याप्ति और दीप्ति इन दोनों के कारण से कहा है और फिर प्रजापति ने भी कहा है ॥२३॥ उसने इन जलो को देखकर तथा देव, दानव, मानव और पितरो को देखकर उसने आत्मा से फिर अन्य देवो को सृजित किया ॥ २४ ॥ प्रभु ने उस अपने सम्पूर्ण शरीर को उत्कृन करके फिर अन्य शरीर का सृजन किया और फिर रजोगुण और तमोगुण की बहुलता वाले शरीर को अभियोजित किया था ॥ २५ ॥ उस अन्धकार मे क्षुधा से आविष्ट होते हुए उसने फिर अन्य तनू का सृजन किया। उससे सृजित हुए क्षुधात्मा के अम्भो को लेने के लिये उद्यत हो गये थे ॥२६॥ हम इन जलो की रक्षा करते हैं इस प्रकार से कहे गये वे उनमे राक्षस कहलाये थे जोकि लोक मे क्रोधात्मा निशाचर थे ॥२७। जिन्होंने उनमे परस्पर मे परम प्रसन्न होते हुए यह कहा कि हम इन जलो को क्षीण करते हैं। इस कर्म से यक्ष और क्रूर कर्म करने वाले गुह्यक हुए ॥ २८ ॥

रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ।
य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे सन्निरुच्यते ॥२९
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशा शीर्यंत धीमत ।
शीतोष्णाच्चोच्छ्रिना ह्यूर्द्ध्वं तदारोहन्त त प्रभुम् ॥३०
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिता ।
व्यालात्मान स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहय स्मृता ॥३१
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिण ।
तेषा पृथिव्या निलया सूर्यचन्द्रमसोरध ॥३२
तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भस्सुदारुण ।

स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकान् ॥३३
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूता पिशिताशना ॥ ३४
भूतत्वात्ते स्मृता भूता पिशाचा पिशिताशनात् ।
वयन्तो गास्ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ॥३५
ध्यायतीत्येष धातुर्वै धात्रार्थे परिपठ्यते ।
पिबतो जज्ञिरे गास्तु गन्धर्वास्तेन ते स्मृता ॥३६

यह धातु रक्षण और पालन के अर्थ मे विभाषित होता है। जो यह जिति धातु है वह क्षपण मे कही जाती है ॥२९॥ अप्रिय उसने उनको देखा कि धीमान् उसके केश विशीर्ण हो गये थे और शीत और उष्णता से ऊर्द्ध की ओर उच्छ्रित होते हुए उस प्रभु का आरोहण किया ॥ ३ ॥ मेरे शिर से हीन व्याल अपसर्पित हो गये इससे व्याल कहे गये और व्याल से हीनता होने के कारण मे अहि कहलाये गये है ॥३१॥ पन्नत्व होने से वे पन्नग कहे गये और अपसर्पण करने वाले होने के कारण सर्प कहलाये गये है। उनका सूर्य और चन्द्रमा के अधोभाग मे पृथिवी मे निलय है ।३२॥ उसके क्रोध से उत्पन्न होने वाला जो यह अग्नि गर्भ है वह बहुत ही दुराधर्ष है और वह सर्पों के साथ उत्पन्न विषात्मको मे आविष्ट हो गया ॥३३॥ इसके अनन्तर सर्पों को देखकर क्रोध से क्रोधात्माओ का निर्माण किया जो कपिश वर्ण से उग्र माँस को खाने वाले भूत हुए ॥३४॥ भूतत्व होने से वे भूत कहे गये और पिशित (माँस) का अशन (भोजन) करने से पिशाच कहलाये गये हैं। वय से गा और उसके पश्चात् उस समय उसके गन्धर्व उत्पन्न हुये ॥३५॥ ध्यायति —यह धातु धात्रा के अर्थ मे परिपठित की जाती है। पीते हुए गा के उत्पन्न हुए थे इसलिये वे गन्धर्व कहे गये हैं ॥३६॥

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभु ।
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वय सोऽसृजत ॥३७
छादतस्तानि छन्दांसि वयसोऽपि वयांस्यपि ।
दृष्ट्वा पक्षिगणान् देवो वऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥३८

मुखतोऽजान् ससर्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ॥३६
पद्भयाञ्चाश्वान् समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातय ॥४०
ओषध्य फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ।
एव पश्वोषधी सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभु ॥४१
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।
गौरज पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्द भौ ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्याश्च निबोधत ॥४२
श्वापदा द्विखुरोहस्ती वानर पक्षिपञ्चमाः ।
उन्दका पशव सृष्टा सप्तमास्तु सरीसृपा ॥४३

इन आठ देव-योनियो की सृष्टि कर लेने पर उस प्रभु ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दता से वय से अन्य पशु-पक्षियो का सृजन किया ॥३७॥ छाद से उन छन्दो को वय से भी वयो को सृजा तथा देव ने शून्यो को देखकर पक्षियो के समुदाय का भी सृजन किया था ॥३८॥ मुख से अजो का उत्पन्न किया, वक्ष स्थल से वय का सृजन किया तथा ब्रह्माजी ने उदर से और पार्श्वों से गा का सृजन किया था ॥३६॥ पैरो से घोडों को, मातङ्गो को, शरभो को, गवयो को मृगो को, उष्ट्रो को और अश्वतरो को तथा इनकी अन्य जाति वालो का निर्माण किया ॥४०॥ औषधियाँ, फल और मूल उसके रोम से उत्पन्न हुए। इस तरह से पशु-औषधियों का सृजन करके उस प्रभु ने अध्वर में नियोजन किया था ॥४१॥ इससे आदि मे कल्प के त्रेतायुग मे मुख गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ—इनको ग्राम्य पशु कहते हैं। अब आगे अरण्य पशुओं को समझ लो ॥४२॥ श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी पञ्चम, उन्दक, पशु और सप्तम सरीसृपो सृजन किया ॥४३॥

गायत्र वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्य रथन्तरम् ।
अग्निष्टोम च यज्ञाना निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥४४
छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म स्तोम पञ्चदशन्तथा ।

बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥४५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा ।
वरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र वरुण त्रिवृ सोम्य रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे उक्त प्राणियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रिष्टुभ कर्म स्तोम पञ्चदश बृहत्साम उक्थक्रतु को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम जगती छन्दोस्तोम पञ्चदश वरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश अथर्वाण आप्तोर्यामाण अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत अशनि (वज्र) मेघ रोहित एवं धनुष और कल्प की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव असुर पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥५० ॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुन पुन ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूताना धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहु कर्म च मानवा ।
दैवमित्यपरे विप्रा स्वभाव दैवचिन्तका ॥५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावत ।
न चैक न पृथग्भावमधिक न तयोर्विदु ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयु सत्त्वस्था समदर्शिन ।
नामरूपञ्च भूताना कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओ का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया। इनमे जिन्होने जो कर्म पहिले सृष्टि मे प्राप्त किये थे वे पुन-पुन सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१–५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओ से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियो के अर्थों की मूर्तियो में भूतो का विनियोग करना विधाता ने ही स्वय किया था ॥५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है। न तो ये दोनो एक ही है न ये दोनों पृथक् ही होते है और न उन दोनो मे कोई अधिक ही है। इस प्रकार से यह दोनो न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

बृहत्सामरथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात ॥४५
सामानि जगती छन्दस्तोम पञ्चदशन्तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभु ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्ग सृजतो हि प्रजापतेः ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्व देवासुरपितॄन् प्रजा ।
तत सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र वरुण त्रिवृत्सोम रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे इनकी प्राणियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रिष्टुभ कर्म स्तोम पञ्चदश बृहत्साम उक्थउ रो को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम जगती छन्दोस्तोम पञ्चदश वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश अथर्वाण आप्तोर्यामाण अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत अशन (वज्र) मेघ रोहित इन्द्र धनुष और वस्त्र की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव असुर पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥५० ॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वय पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुन पुन ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूताना धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहु कर्म च मानवा ।
दैवमित्यपरे विप्रा स्वभाव दैवचिन्तका ॥५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावत ।
न चैक न पृथग्भावमधिक न तयोर्विदु ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयु सत्त्वस्था समदर्शिन ।
नामरूपञ्च भूताना कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया । इनमे जिन्होंने जो कर्म पहिले सृष्टि मे प्राप्त किये थे वे पुन पुन सृज्यमान होते हुए भी उन्ही को प्राप्त होते है ॥५१–५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओं से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते है और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतो मे अनेक प्रकारता और इन्द्रियो के अर्थों की मूर्तियो में भूतो का विनियोग करना विधाता ने ही स्वय किया था ॥५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते है ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है । न तो ये दोनो एक ही हैं न ये दोनो पृथक् ही होते है और न उन दोनो मे कोई अधिक ही है । इस प्रकार से यह दोनो न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण मे स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

पुण्य कर्मों मे स्थित रहने वाले विषयो को बोला करते हैं। महेश्वर उन भगवान् ने आदि मे विनिर्मित भूतो के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च वाणी से ही सष्ट किये हैं ॥५७॥

ऋषीणा नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टय ।
शर्वर्यन्ते प्रसूताना तान्येवास्य ददाति स ॥५८
यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥५९
एवंविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ।
शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥६०
एव भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदास्य ता प्रजा सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमत ॥६१
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुमाङ्गिरसन्तथा ॥६२
मरीचि दक्षमत्रि च वसिष्ठ चैव मानसम् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता ।
तेषा ब्रह्मात्मकाना वै सर्वेषा ब्रह्मवादिनाम् ॥६३

ऋषियो के नामधेय अर्थात् नाम और देवो मे जो दृष्टियाँ हैं वे सब रात्रि के अन्त मे प्रसूत होने वालो के यही उनको करता है ॥५८॥ ऋतुओ के अनुसार जो ऋतुओ के चिह्न होते हैं और अनेक प्रकार के स्वरूप होते हैं जबकि उनका परिवर्तन हुआ करता है ये सब युगादिकों मे उस तरह के भाव वे वे ही दिखाई दिया करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार से अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस रीति से की हुई सृष्टियो मे रात्रि के अन्त मे मानसी सिद्धि का आश्रय करके दिखलाई दिया करते हैं ॥ ६० ॥ इस तरह से ब्रह्माजी ने चर और स्थावर भूतो की सृष्टि की किन्तु इनकी यह सृजन की हुई समस्त प्रजा जब वृद्धि प्राप्त करती हुई नही हुई तो धीमान् ब्रह्मा ने अपनी ही आत्मा के सदृश अन्य मानस पुत्रो का सृजन किया था जिनके नाम भृगु, पुलस्त्य पुलह, क्रतु आङ्गिरस मरीच दक्ष अत्रि और वसिष्ठ ये होते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी

और ब्रह्मात्मक अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप वाले ही थे जिनको कि पुराण में निश्चित रूप में 'नव ब्रह्मा' ऐसा ही कहा गया है ॥६१-६२-६३॥

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ।
सङ्कल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः ॥६४
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् ॥६५
सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम् ।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः ॥६६
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥६७
हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः ।
अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः ॥६८
सर्वं तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९
एवमुक्त्वा द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥७०

इसके उपरान्त पूर्व मे होने वालों मे भी सबसे पहिले जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा ने रोषात्म सम्भव रुद्र का सृजन किया और सङ्कल्प तथा धर्म का सृजन किया था ॥६४॥ पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही तुल्य मानस सनक के सहित सनन्दन परम विद्वान् सनातन और विभु सनत्कुमार का सृजन किया था किन्तु वे लोको के सृजन कर्म मे निरपेक्ष होने के कारण प्रवृत्त ही नही हुए थे ॥ ६५-६६ ॥ वे सबके सब ज्ञानोदय हो जाने वाले, वीतराग अर्थात् परम वैराग्य से परिपूर्ण रहने वाले और मत्सरता से रहित थे । इस प्रकार से लोक वृत्त के अनुकरण मे बिल्कुल ही अपेक्षा न रखने वाले उनके होने पर ब्रह्माजी चिन्तित हुए ॥ ६७ ॥ उस समय लोक सृजन एवं बराबर उसके वर्धन के अपने कार्य में असफल रहते हुए हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ने मन मे बहुत ही चिन्ता की

थी। उस चिन्तन काल में उनके रोष से समुत्पन्न सूर्य के समान द्युति वाला अर्धनारीश्वर पुरुष सामने हुआ जो इतना तेज युक्त था जैसे कि साक्षात् अग्नि ही हो ॥६८॥ वह आदित्य के समान तेज वाला समस्त तेज से पूर्ण उत्पन्न हुआ और अपने आपका विभाजन करो यह कहकर वहीं पर ही अन्तर्हित हो गया ॥ ६९॥ इस प्रकार कहकर पुरुष और स्त्री पृथक्-पृथक् होकर दो रूपों में ईश्वर ने अपने आपके अर्ध भाग को एकादश प्रकार से जन्म दिया अर्थात् उत्पन्न किया था ॥७० ॥

तेनोक्तास्ते महात्मानः सर्व एव महात्मना ।
जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिणः ॥७१
लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिता ।
विश्वं विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥ २
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्द्रवुश्च समन्ततः ।
रोदनाद्द्रावणाच्चैव रु द्रा नाम्नेति विश्रुता ॥७३
यैर्हि व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तेषामनुचरा लोके सर्वलोकपरायणाः ॥७४
नकनागा युनबना विक्रान्ताश्च गणेश्वराः ।
तत्र या सा महाभागा शंकरस्यार्द्धकायिनी ॥७५
प्रागुक्ता तु मया तुभ्यं स्त्री स्वयमीमुखोद्गता ।
कायार्द्धं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ॥ ६
आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवी स्वयंभुवा ।
सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥७७

उन महान् आत्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सभी महात्मा जोकि हित के चाहने वाले थे जगत् की बहुलता को करने की भावना में अधिकार वाले हुए ॥ ७१ ॥ आप सब अतन्द्रित होते हुए लोक के वृत्तान्त के लिये पूर्ण प्रयत्न करो अर्थात् विश्व की रचना करने में आलस्य का त्याग कर पूरा-पूरा यत्न करो। लोक की स्थापना और विश्व का हित करना ही तुम्हारा पूर्ण

कर्त्तव्य है ॥ ७२ ॥ जब ब्रह्माजी ने लोक की रचना एवं स्थापना तथा विश्व के हित के कार्यों की निर्मिति के लिये उनसे कहा तो वे सब ओर से रुदन करने लगे और एकदम द्रवीभूत हो गये। अतएव रोदन करने से तथा उनके द्रावण होने से उनका नाम संसार में "रुद्र"—यह प्रसिद्ध हो गया था ॥७३॥ जिनके द्वारा यह समस्त चर और अचर स्वरूप वाला त्रैलोक्य व्याप्त हो गया था वे भगवान् रुद्र थे। उनके अनुचर लोक में समस्त लोक कार्यों में परायण हुए ॥ ७४ ॥ वे गणेश्वर अनेक नागों के बल के तुल्य बल वाले और परम विक्रम से युक्त थे। और वहाँ पर भगवान् शङ्कर के अर्ध शरीर वाली जो वह परम महान् भाग वाली थी ॥७५॥ पहिले मैंने तुमको स्वयम्भू के मुख से उत्पन्न हुई स्त्री के विषय में बतलाया था। उसका दक्षिण काया का अर्ध भाग शुक्ल तथा वाम अर्ध भाग असित था ॥ ७६ ॥ हे द्विज वृन्द! आत्मा का विभाजन करो इस प्रकार से भगवान् स्वयम्भू के द्वारा कही गई वह शुक्ल और कृष्ण दो प्रकार की हो गई थी। अब उनके नाम मैं बतलाता हूँ उन्हें तुम लोग सावधान होकर श्रवण करो ॥ ७७ ॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला ॥७८
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः।
ख्याति प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ॥७९
विश्वरूपमथार्याया पृथग्देहविभावनात्।
शृणु संक्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्वशः ॥८०
प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ॥८१

द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ॥८२
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला।
बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ॥८३
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी।

ब्रह्मा का मानस पुत्र रुचि—इस नाम वाला जानना चाहिए। अपने प्राण से ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया और चक्षुओं से मरीचि को जन्म दिया था। ॥९२॥ भृगु हृदय से उत्पन्न हुए अर्थात् सलिल से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के हृदय से भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। शिर से अङ्गिरस की तथा श्रोत्र से अत्रि ऋषि का जन्म हुआ था ॥९३॥ उदान से पुलस्त्य को व्यान से पुलह को समान से वसिष्ठ को अपान से क्रतु को और अभिमान के स्वरूप वाले नील लोहित भद्र को निर्मित किया था। ये बारह प्राण से जन्म लेने वाले ब्रह्मा के पुत्र कहलाये थे ॥९५॥ ये ब्रह्मा के पुत्र मानस जानने चाहिए और जो भृगु आदि का सृजन किया था वे ब्रह्मवादी नहीं थे ॥९६॥ वे सब पुराण गृहमेधी अर्थात् पुराने गृहस्थ थे जिन्होंने प्रथम धर्म को प्रवृत्त किया था। ये बारह रुद्र के साथ प्रजा के सृजन में प्रवृत्त होते हैं ॥९७॥ ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ऊर्ध्वरेता थे। ये उनसे पहिले प्राचीन समय में उत्पन्न हुए थे और ये दोनों सभी के पूर्वज थे ॥९८॥

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणं लोकसाधकौ।
वैराजे तावुभौ लोके तेजः संक्षिप्य चास्थितौ ॥९९
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि।
प्रजाधर्मञ्च कामञ्च वर्त्तयेतां महौजसा ॥१००
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते।
तस्मात्सनत्कुमारोयमिति नामास्य कीर्तितम् ॥१०१
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ॥१०२
इत्येष करणोद्भवो लोकान् स्रष्टुं स्वयंभुवः।
महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ॥१०३
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृतः ॥१०४
पुरैश्च विविधाकारैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा।
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तं ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ॥१०५

वैराज नामक प्रथम कल्प के व्यतीत होने पर लोकों के साधक वे दोनो लोक मे तेज का सक्षेप करके आस्थित रहे थे ॥ ९९ ॥ योग के धर्म वाले वे दोनो आत्मा मे आत्मा को आरोप करके महान् ओज से प्रजा धर्म और काम को वरतते थे ॥ १०० ॥ ज्यो ही यहाँ उत्पन्न हुये वैसे ही कुमार यह कहे जाते हैं। इसी कारण से यह सनत्कुमार हैं—इस प्रकार से इनका नाम कीर्तित हुआ है ॥ १०१ ॥ उनके वे देव गुणो से युक्त दिव्य द्वादश वश हुए जो महर्षियो से अलङ्कृत क्रिया वाले और प्रजा वाले थे ॥ १०२ ॥ यह करण मे उद्भूत स्वयम्भू के लोको का सृजन करने के लिये महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक स्वय प्रकृति का विकार है ॥ १०३ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा के आलोक (प्रकाश) वाला, ग्रहो और नक्षत्रो से विभूषित तथा नदियो, समुद्रो और पर्वतो से समावृत—अनेक प्रकार के आकार वाले, पुरों से एव प्रीतियुक्त जनपदो से आवृत ऐसे उस अव्यक्त ब्रह्म-वन मे ब्रह्मा शर्वरी (रात्रि) को विताते हैं ॥१०४-१०५ ॥

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थित ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटर ॥१०६

महाभूतप्रशाखश्च विशेषै पत्रवास्तथा ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदु खफलोदय ॥१०७

आजीव सर्वभूतानामय वृक्ष सनातन ।
एतद्ब्रह्मवल चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥१०८

अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम् ।
इत्येषोऽनुग्रह सर्गो ब्रह्मण प्राकृतस्तु य ॥१०९

मुख्यादयस्तु पट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वका. ।
त्रैकाले सप्रवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिन ॥११०

सर्गा परस्परस्याथ कारण ते बुधै स्मृता. ।
दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ।
एकस्तु यो द्रुम वेत्तिनान्य सर्वात्मनस्तत ॥१११

द्यौमूर्द्धानं यस्य विप्रा स्तुवन्ति खन्नाभिं व चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूत प्रसूतिः ॥११२

वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता वक्षसः क्षत्रिया पूर्वभागे।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः
सर्वे वर्णा गात्रत सम्प्रसूता ॥११३

महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम्।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोका कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्थित हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर को र वाला, महाभूतों की शाखाओं वाला विशेषों के से पत्रों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बल होता है ॥ १०६—१०७—१०८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १०९ ॥ मुख्य आदि छः सर्ग प्रकृत और बुद्धिपूर्वक होते हैं। वे अभिमान वाले ब्रह्मा के नकाल में होते थे ॥ ११० ॥ विद्वानों ने उन सर्गों को ही परमेश्वर के कारण कहा है। सुन्दर पर्ण वाले, सपुत्र और शाखाओं से युक्त दिव्य पद विद्रुम हैं। जो एक द्रुम का नाम रखता है वह सर्वात्मा से अन्य नहीं है ॥ १११ ॥ जिसके द्यौ रूपा मूर्धा का ब्राह्मण स्तवन किया करते हैं आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र हैं दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए वक्ष स्थल से क्षत्रिय ऊरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके परों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही उद्भूत हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर है और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने ये सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

।। मन्वन्तरादि वर्णन ।।

एवभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा।
यदा ता न प्रवर्त्तन्ते प्रजा केनापि हेतुना ॥१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दु खित ।
तत स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥२
अथात्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रा नियामिकाम्।
राजसत्व पराजित्य वर्त्तमान स धर्मत ॥३
तप्यते तेन दु खेन शोकश्चक्रे जगत्पति ।
तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ॥४
ततम प्रतिनुत्ता वै मिथुन स व्यजायत ।
अधर्माच्चरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ॥५
ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि ।
ततश्च भगवानासीत् प्रीतिश्चैवमशिश्रियत् ॥६
स्वा तनु स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम् ।
द्विधाकरोत्स त देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥७
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ।
प्राकृता भूतधात्री ता कामान्वै सृष्टवान् विभु ॥८

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से होने वाले लोको मे जब लोको की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा किसी भी हेतु से वह प्रजा प्रवृत्त न हुई तब तमोमात्र से आवृत्त ब्रह्मा जी तभी से लेकर अत्यन्त दु खित हुये। इसके अनन्तर उन्होने अर्थ के निश्चय करने वाली बुद्धि बनाई ॥ १—२ ॥ इसके अनन्तर उनने धर्म से वर्त्तमान राजसत्व को पराजित करके तमोमात्रा की नियामक बुद्धि का आत्मा मे सृजन किया था ॥ ३ ॥ उस दु ख से वह तप्यमान होते है और जगत्पति ने बडा शोक किया था। उसमे तम का विनोदन किया और रजोगुण ने तमोगुण आवृत कर लिया था ॥ ४ ॥ प्रतिनुत्त हुए उस तम से मिथुन की उत्पत्ति हुई। अधर्म के चरण से हिंसा शोक से उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ इसके पश्चात चरणात्मा मिथुन के समुत्पन्न होने पर इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हुए

और इस प्रकार से सेवन किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उस अभास्वर शरीर का अपोह कर दिया और उसने उस देह के दो भाग कर दिए। आधे भाग से वह पुरुष हुए और आधे शरीर के भाग से उसकी नारी शतरूपा उत्पन्न हुई। विभु ने भूतों की प्राकृत धात्री उसको मानकर कामनाओं की सृष्टि की थी ॥ ७—८ ॥

सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता।
ब्रह्मण सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति ॥९
या त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत।
सा देवी नियुतन्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०
भर्तारन्दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत।
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥११
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते।
लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१२
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते।
प्रथमः सम्प्रयोगः स कल्पादौ समवर्त्तत ॥१३
विराजमसृजत ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट्।
सम्राण्मानसरूपात्तु वैराजस्तु मनुः स्मृतः ॥१४

वह अपनी महिमा से दिव और पृथिवी में व्याप्त होकर अधिष्ठित हुई। ब्रह्मा का वह पूर्व तनु दिव को आवृत करके अधिष्ठित होता है ॥ ९ ॥ जिस शरीर ने अपने अर्धभाग से नारी का सृजन किया और शतरूपा समुत्पन्न हुई। उस देवी ने दस हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चार तप किया था ॥ १० ॥ ऐसी उग्र तपश्चर्या करके उसने दीप्त यश वाले अपना स्वामी पुरुष प्राप्त किया था और वह पुरुष प्रथम स्वायम्भुव मनु इस नाम से कहा जाता है ॥ ११ ॥ यहाँ पर उसका एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगपर्यन्त मन्वन्तर कहा जाता है। पुरुष ने अयोनिजा अर्थात् योनि से उत्पन्न न होने वाली शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥ १२ ॥ वह उसके साथ रमण करते हैं इसीलिये वह रति कही जाती है। कल्प के आदि में वह प्रथम साम्प्रयोग हुआ ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जी ने

विराट् का सृजन किया सो वह पुरुष विराट् हो गया था। मानस रूप मे सम्राट् वैराज मनु कहा गया है ॥ १४ ॥

स वैराज प्रजासर्गं स सर्गं पुरुषो मनु ।
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥१५
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवता वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्या जाता प्रजास्त्विमा ॥१६
देवी नाम्ना तथाकूति प्रसूतिश्चैव ते शुभे ।
स्वायम्भुव प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजन् प्रभु ॥१७
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेय सङ्कल्पो मनुरुच्यते ।
रुचे प्रजापतेश्चैव आकूर्ति प्रत्यपादयत् ॥१८
आकूत्या मिथुन यज्ञे मानसस्य रुचे शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतु ॥१९
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२०
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृता ।
अजिताश्चैव शूकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मण स्मृतौ ॥२१

वह वैराज प्रजासर्ग है और वह सर्ग मे पुरुष मनु है। वीर वैराज पुरुष से शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ पुत्रवानो मे परम श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तान पाद दो पुत्र और दो महान् भाग्यशालिनी कन्याऐ हुईं जिन दोनो से ये समस्त प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ नाम से वे देवी आकूति और प्रसूति थी जो कि अत्यन्त शुभ थी। स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति को दक्ष के लिये दान करके दिया था ॥ १७ ॥ प्राण को दक्ष समझ लेना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है। प्रजापति रुचि के लिए आकूति को दे दिया ॥ १८ ॥ आकूति मे मानस के यज्ञ में शुभ मिथुन हुआ। यज्ञ और दक्षिणा यह यमल (जोड़ली सन्तति) पैदा हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञ के दक्षिणा मे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायम्भुव के अन्तर में 'यामा' इस नाम से आख्यात हुए थे ॥ २० ॥ यम के पुत्र थे इससे यज्ञ के याम कहे गये हैं। अजित और शूक ये दो गण ब्राह्मण कहे गये हैं ॥२१॥

यामा पूर्व परिक्रान्ता यत संज्ञा दिवौकस ।
स्वायम्भुवसुतायान्त प्रसूत्या लोकमातर ॥२२
तस्या कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभु ।
सर्वास्ताश्च महाभागा सर्वा कमललोचना ॥२३

योगपत्न्यश्च ता सर्वा सर्वास्ता योगमातर ।
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टि पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्ति सिद्धि कीर्तिस्त्रयोदशी ॥२४
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणी प्रभ ।
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥२५

ताभ्य शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचना ।
ख्याति सत्यथ सम्भूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा ॥२६
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
तास्तत प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षय ॥२७
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु ।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥२८

याम पहिले परिक्रान्त हुए इसलिए दिवौकस संज्ञा हुई। स्वायम्भुव सुता प्रसूति में दक्ष ने लोकमातर चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया था। वे सभी महान् भाग वाली और सभी कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली परम सुन्दरी थी ॥ २२—२३ ॥ वे सभी योग पत्नियाँ थी और सब योगमाताऐं थीं। श्रद्धा लक्ष्मी धृति तुष्टि पुष्टि मेधा क्रिया बुद्धि लज्जा, वपु शान्ति सिद्धि कीर्ति इन तेरहों को दाक्षायणी प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया था। इसके ये द्वार स्वयम्भू ने किए थ ॥ २४—२५ ॥ उनसे शेष यवीयान की एकादश सुलोचनाऐं थी जिसके नाम ये हैं—ख्याति सती सम्भूति स्मृति प्रीति क्षमा सन्नति अनसूया ऊर्जा स्वाहा और स्वधा ये ग्यारह है। उनको फिर अन्य महर्षियों ने ग्रहण किया था। उन महर्षियों के नाम ये हैं—रुद्र भृगु मरीचि अङ्गिरा पुलह क्रतु पुलस्त्य अत्रि वसिष्ठ पितर और अग्नि ये महर्षियों के नाम थ ॥ २६—२७—२८ ॥

सती भवाय प्रायच्छत् ख्यातिञ्च भृगवे तथा ।
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमाङ्गिरसे ददौ ॥२९
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ।
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयान्तथात्रये ॥३०
ऊर्ज्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ ।
स्वधा चैव पितृभ्यस्तु ताश्वाख्यानि वक्ष्यते ॥३१
ऐते सर्वे महाभागा प्रज्ञा स्वानुष्ठिताः स्थिता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३२
श्रद्धा काम विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुत स्मृत ।
धृत्यास्तु नियम पुत्रस्तुष्टया सन्तोष उच्यते ॥३३
पुष्ट्या लाभ सुतश्चापि मेधापुत्र श्रुतस्तथा ।
क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्ड समय एव च ॥३४
बुद्धेर्बोधसुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ ।
लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपुः सुत ॥३५

दक्ष ने सती को महादेव के लिय दिया, भृगु को ख्याति, मरीचि को सम्भूति और अङ्गिरस के लिये स्मृति नाम वाली कन्या का दान किया था ॥ २९ ॥ पुलस्त्य को प्रीति, पुलह को क्षमा, क्रतु को सन्नति तथा अत्रि के लिये अनसूया नाम वाली कन्या का दान दक्ष ने दिया था ॥ ३० ॥ वसिष्ठ को ऊर्जा, अग्नि को स्वाहा और पितृगण को स्वधा दी । अब उनमे जो सन्तति समुत्पन्न हुई उसे बतलाया जाता है ॥ ३१ ॥ ये सब महान् भाग्य से युक्त, परम पण्डित और अपने कर्त्तव्य कर्म में निष्ठित होकर स्थित रहे जब तक कि समस्त मन्वन्तरों मे आभूत सम्प्लव हुआ था ॥ ३२ ॥ श्रद्धा ने काम को समुत्पन्न किया और लक्ष्मी का पुत्र 'दर्प' इस नाम से कहा जाने वाला पैदा हुआ । धृति का पुत्र नियम था और तुष्टि ने सन्तोष नामक पुत्र को जन्म दिया था ॥ ३३ ॥ पुष्टि से लाभ नामक पुत्र का प्रसव हुआ तथा मेधा का पुत्र श्रुत हुआ था । क्रिया के पुत्र का नाम 'नय' था और दण्ड एवं समय भी उसी के पुत्र हुए थे ॥ ३४ ॥ बुद्धि के बोध और अप्रमाद ये दो पुत्र पैदा हुए थे एक लज्जा

के विनय नामक पुत्र प्रगत हुआ तथा अवसाय काम वाला पुत्र वपु का हुआ था ॥ ३५ ॥

क्षेम शान्तिसुतश्चापि सुख सिद्धेव्यजायत ।
यश कीर्त्तें सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनव ॥३६
कामस्य हर्ष पुत्रो व देव्या रत्या व्यजायत ।
इत्येष व सुखोदक सर्गो धर्मस्य कीर्त्तित ॥३७
जज्ञ हिंसात्वधर्माद्व निकृतिश्चानृतावुभौ ।
निकृत्यानृतयोजज्ञ भय नरक एव च ॥ ३८
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयो ।
भयाज्जज्ञ ऽथ सा माया मृत्यु भूतापहारिणम् ॥३९
वेदनायास्ततश्चापि दु ख जज्ञ ऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिज्वरा शोका क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।
दु खोत्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणा ॥४०
तेषा भार्याऽस्ति पुत्रो वा ते सर्वे निधना स्मृता ।
इत्येव तामस सर्गो जज्ञ धर्मनियामक ॥४१
प्रजा सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहित ।
सोऽभिध्याय सती भार्यानिर्ममे ह्यात्मसम्भवाम् ॥४२

शान्ति के क्षेम और सिद्धि का सुख पुत्र हुआ। कीर्ति का यश हुआ इतने ये धर्म पुत्र हुए थ ॥ ३६ ॥ काम का हर्ष नामक पुत्र देवी रति से उत्पन्न हुआ। यह धर्म का सुखोदक अर्थात् सुखप्रदान करने वाला सर्ग हुआ जो कि बताया गया है ॥ ३७ ॥ हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे। निकृति और अनृत के भय तथा नरक समुत्पन्न हुए ॥३८॥ इन दोनों के माया और वेदना इनका जोड़ा पैदा हुआ थी भय से जन्म ग्रहण किया था। उस माया ने समस्त भूतो के अपहरण करने वाली मृत्यु को जन्म दिया था ॥ ३९ ॥ वेदना ने रौरव से दु ख को जन्म दिया था। मृत्यु ने व्याधि ज्वर शोक और असूया ने क्रोध को उत्पन्न किया ये सब दु खोत्तर अधर्म के लक्षण वाले हुए हैं ॥ ४० ॥ उनकी भार्या अथवा पुत्र न सभी निधन कहे गये

हैं। यह इतना तामस सर्ग था जो यम का नियामक हुआ है ॥ ४१ ॥ 'प्रजा का सृजन करो—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा नीललोहित जब आदेश प्राप्त करने वाला हुआ तो उसने आत्मा से सम्भूत होने वाली सती का अभिध्यान करके उसे अपनी भार्या बनाया था ॥ ४२ ॥

नाधिकान्न च हीनास्तान्मानसानात्मन समान् ।
सहस्र हि सहस्राणामसृजत् कृमिवाससा ।
तुल्यांश्चैवात्मन सर्वे रूपतेजोबलश्रुते ॥४३
पिङ्गलान् सनिषङ्गांश्च सकपर्दान् विलोहितान् ।
विवासान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिन ॥४४
बहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिण ।
रथिनो वर्मिणश्चैव धर्मिणश्च वरूथिन ॥४५
सहस्रशत बाहूंश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ।
स्थूलशीर्षानिष्टदंष्ट्रानुद्विजिह्वास्त्रिलोचनान् ॥४६
अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपास्तथा ।
मेदपाश्चातिकायाश्च शितिकण्ठोग्रमन्यव ॥४७
सोपासङ्गतलत्राश्च धन्विनो ह्यपवर्मिण ।
आसीनान् धावतश्चैव जृम्भिनश्चैव धिष्ठितान् ॥४८
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽध्यायतस्तथा ।
ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥४६

तब कृमिवासा ने न ज्यादा अधिक और न ज्यादा हीन ऐसे अपने ही समान मानस पुत्र जो सहस्रों के सहस्र थे उत्पन्न किये जो कि रूप, तेज और बल से सब अपनी आत्मा के ही बिल्कुल तुल्य थे ॥ ४३ ॥ अब यहाँ उनके ही रूप, गुण तथा आकारादि का वर्णन किया जाता है कि ये किस प्रकार के थे—पिङ्गल, सनिषङ्ग, सकपर्द, विलोहित, निवास, हरिकेश, दृष्टिघ्न और कपाली थे ॥ ४४ ॥ फिर वे विरूप, बहुरूप, विश्वरूप, रूपी, रथी, वर्मी, धर्मी और वरुथ वाले थे जिनको कि उत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ सहस्र शत बाहु वाले, दिव्य, भूमि और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, स्थूल शीष वाले,

योग तपश्च सत्यञ्च धर्मश्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व न ॥६३
येन येन च धर्मे ण गति प्राप्स्यन्ति व द्विजा ।
तत्सर्व श्रोतुमिच्छामि योग माहेश्वर प्रभो ६४

उस समय पर श्रीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्मा ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले – इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा सम्यक् ज्ञान होने पर सब यह ठीक हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के स्वामी ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत सम्प्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्ध्व रेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५६॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप सत्य क्षमा धृति स्रष्टृत्व, आत्म सम्बोध अधिष्ठातृत्व ये दश शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६ ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहे गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर दिया करते है । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग तप सत्य धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने वर्णन कीजिये हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते है वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ।

पञ्च धर्मा पुराणे तु रुद्र ण समुदाहृता ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्त रुद्र रक्लिष्टकर्मभि ॥६५
आदित्यैर्वसुभि साध्यैरश्विभ्याञ्च व सर्वश ।
मरुद्भिर्भृगुभिश्च व मै चा ये विबुधालया ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकस्तथा ।
एतैश्चा येश्च बहुभि ते धर्मा पर्युपासिता ॥६७

ते वै प्रक्षीणकर्माण शारदाम्बरनिर्मला ।
उपासते मुनिगणा सन्ध्यायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरुणा वै प्रियेप्सव ।
विमुच्य मानुष जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ता पञ्च धर्मा सनातना ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि बोधत ।७०

वायुदेव ने कहा—पुराण मे रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये है। अविनष्ट कर्म करने वाले रुद्रो ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मो की जिन्होने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी है उनके द्वारा तथा पितृ कालान्तक इन सबके द्वारा एव अन्य बहुतो के द्वारा वे समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश निर्मल चित्त वाले वे मुनियो के समूह सन्ध्या मे आत्मा मे आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्य मे सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओ की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यान प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्मा प्रकीर्त्तिता ॥७१
तेषा क्रमविशेषेण लक्षण कारण तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्व यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविध प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणाना च निरोधस्तु स प्राणायामसज्ञित ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृता ॥७४

योग तपश्च सत्यञ्च धर्मश्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो ॥६४

उस समय पर श्रीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्माजी ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले—इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होने पर सदा सब ठीक हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के स्वामी ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत सम्प्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्ध्व वरेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये । मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५९॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप सत्य क्षमा धृति स्रष्टृत्व, आत्म सम्बोध अधिष्ठातृत्व ये सदा शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६ ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहल ये गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर लिया करते हैं । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग तप सत्य धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने वर्णन कीजिये हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ।

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥६५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्यां च मरुद्गणैः ।
भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृभिः कालान्तकैस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्माः पर्युपासिताः ॥६७

ते वै प्रक्षीणकर्माण शारदाम्बरनिर्मला ।
उपासते मुनिगणा सन्ध्यायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरुणा वै प्रियेप्सव ।
विमुच्य मानुष जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ता पञ्च धर्मा सनातना ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि बोधत ।७०

वायुदेव ने कहा—पुराण मे रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये है। अविनष्ट कर्म करने वाले रुद्रो ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मो की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ कालान्तक इन सबके द्वारा एव अन्य बहुतो के द्वारा वे समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश निर्मल चित्त वाले वे मुनियो के समूह सन्ध्या मे आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्य मे सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओ की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यान प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्मा प्रकीर्त्तिता ॥७१
तेषा क्रमविशेषेण लक्षण कारण तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्व यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविध प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणाना च निरोधस्तु स प्राणायामसञ्ज्ञित ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृता ॥७४

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृता ।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिक ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्घातो मात्रा षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तम स्मृत ॥७६
इत्येतत् त्रिविध प्रोक्त प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग में धम के नाम से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ इन पाँचों का क्रम विशेष से लक्षण कारण तथा तत्त्व जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है । एक मन्द होता है दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणों का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस संज्ञा वाला होता है । प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई हैं ॥७४॥ मन्द संज्ञक प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है । इसमें द्वादश उद्घात मात्रा बताई गई है । प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमें दो बार उद्घात होता है और चौबीस मात्राए हो जाती हैं । तीसरे उत्तम नामक भेद में तीन बार उद्घात होकर छत्तीस मात्राएं होती हैं । स्वेद कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाले प्राणायाम का लक्षण बताया गया है । संक्षेप में इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथान्यो वा मृगो वने ।
गृहीत सेव्यमानस्तु मृदु समुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्ष सर्वपामकृतात्मनाम् ।
योगत सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स चैव हि यथा सिंह कुञ्जरो वापि दुर्बल ।
कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्द्दनात् ॥८०
परिधाम मनो मन्द वश्यतां चाधिगच्छति ।
परिधाय मनाङेव तथा जीयति मारुत ॥८१

वश्यत्व हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थित ।
तदा स्वच्छन्दत प्राण नयते यत्र चेच्छति ॥८२

यथा सिहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणा मृगेभ्य सप्रवर्त्तते ॥८३

यथा परिचितश्चाय वायुर्वै विश्वतो मुख ।
परिध्यायमान सरुद्ध शरीरे किल्विष दहत् ॥८४

सिह हो अथवा हाथी हो तथा वन मे अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमे कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भाँति अकृतात्मा समस्त मानवो का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यो का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है। यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वही जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर मे योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भाँति प्राण भी होता है ।८०॥ मन मन्द को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है। मारुत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वही स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अवस्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओ से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परिचित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब सरुद्ध होता है तो वह शरीर मे जो किल्विष होता है उसका दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्चैव जायते ॥८५

तपासि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्सम ॥८६

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः ।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्घातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः ॥७६
इत्येतत् त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान प्रत्याहार धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग मे धर्म के नाम से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ इन पाँचों का क्रम विशेष से लक्षण कारण तथा तत्व जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है। एक मन्द होता है दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणों का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस संज्ञा वाला होता है। प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई हैं ॥७४॥ मन्दसंज्ञक प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है। इसमे द्वादश उद्घात मात्रा बताई गई है। प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमे दो बार उद्घात होता है और चौबीस मात्राएं हो जाती हैं। तीसरे उत्तम नामक भेद मे तीन बार उद्घात होकर छत्तीस मात्राएं होती हैं। स्वेद कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाला प्राणायाम का लक्षण बताया गया है। संक्षेप मे इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथाऽन्यो वा मृगो वने ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्षः सर्वपामकृतात्मनाम् ।
योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वापि दुर्बलः ।
कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्दनात् ॥८०
परिधाम मनो मन्दं वश्यत्वं चाधिगच्छति ।
परिधाय मनान्मेन तथा जीवति मारुत ॥८१

वश्यत्व हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थित ।
तदा स्वच्छन्दत प्राण नयते यत्र चेच्छति ॥८२

यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणा मृगेभ्य सम्प्रवर्त्तते ॥८३

यथा परिचितश्चाय वायुर्वै विश्वतो मुख ।
परिध्यायमान सरुद्ध शरीरे किल्विष दहत् ॥८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन में अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमे कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भाँति अकृतात्मा समस्त मानवो का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यो का प्राण घर्षण के अयोग्य होता है । यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वही जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर मे योग के वश से परिमदन होने से गम्य होता है उसी भाँति प्राण भी होता है । ८० ॥ मन मन्द को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है । मारुत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वही स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अवस्थित हो जाता है और मनुष्यो को पशुओ से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परिचित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब सरुद्ध होता है तो वह शरीर मे जो किल्विप होता है उसका दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥८५

तपासि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्सम ॥८६

अविन्दु य कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समम् ।। ८७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।८८
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ।।८९

प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्वगुण में ही स्थित रहा करता है ।। ८५ ।। जो भी तपश्चर्या तपी जाती हैं व्रत लिये जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ।। ८६ ।। जो कोई मास मास में कुशा के अग्रभाग से जल के बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है यह सब प्राणायाम के तुल्य ही होता है ।। ८७ ।। प्राणायामों के द्वारा मनुष्य अपने समस्त दोषों को दग्ध कर दिया करता है धारणाओं के द्वारा किल्विष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयों का संहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों का क्षय करता है ।। ८८ ।। इसलिये योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिये । वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है ।। ८९ ।।

।। पाशुपत-योग ।।

एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा ।
अर्द्धमासं तथा मासमयनाब्दयुगानि च ।।१
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः ।
उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा ।।२
अतऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ।
फलञ्च च विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ।।३
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ।।४

घोराकारशिवानान्तु कर्मणा फलसम्भवम् ।
स्वयकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥५
पितृमातृ प्रदुष्टाना ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करे ।
क्षपण हि कषायाणा पापाना शान्तिरुच्यते ॥६
लोभमानात्मकाना हि पापानामपि सयम ।
इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥७

श्री वायु ने कहा—एक महान् दिन अथवा एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन और पूरी रात्रि, अधमास अर्थात् पन्द्रह दिन, मास, अयन, वब्द अर्थात् वर्ष, युग और सहस्रों महायुग तक महान् आत्मा वाले ऋषिगण तपश्चर्या में स्थित होते हुये दिव्य चक्षु के द्वारा प्राणायाम की उपासना किया करते हैं ॥ १-२ ॥ इससे आगे प्राणायाम का प्रयोजन बतलाया जाता है और जैसा कि भगवान प्रभु ने कहा है उसका विशेष रूप से फल भी बतलाते हैं ॥ ३ ॥ प्राणायाम के चार प्रयोजन जान लो—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और चौथा प्रसाद—ये प्रयोजन चतुष्टय होता है ॥ ४ ॥ देहधारियों के घोर आकार वाले तथा शिव कर्मों की फल की उत्पत्ति स्वयकृत इस लोक में अथवा परलोक मे कुछ काल मे होती है ॥ ५ ॥ पिता माता के द्वारा प्रकृष्ट रूप से दुष्ट एव ज्ञाति सम्बन्धी सङ्करों से दोषयुक्त कषाय पापों का क्षपण शान्ति कही जाती है ॥ ६ ॥ लोभ और मानस्वरूप वाले पापो का सयम इस लोक मे और परलोक में हित के लिये जो तप होता है "प्रशान्ति" कही जाती है ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुग्रहताराणा तुल्यस्तु विषयो भवेत् ।
ऋषीणाञ्च प्रसिद्धाना ज्ञानविज्ञानसम्पदाम् ॥८
अतीतानागतानाञ्च दर्शन साम्प्रतस्य च ।
बुद्धस्य समता यान्ति दीप्ति स्यात्तप उच्यते ॥९
इन्द्रियाणीन्द्रितार्थाश्च मन पच च मारुतान् ।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति सज्ञित ॥१०
इत्येष धर्म प्रथम प्राणायामश्चतुर्विध ।
सन्निकृष्टफलो ज्ञेय सद्य काल प्रसादज ॥११

अत ऊर्ध्व प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ।
आसन च यथातत्त्वं युञ्जतो योगमव च ॥१२
ओङ्कार प्रथम कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ।
आसन स्वस्तिक कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥१३
समजानुरेकजानुरुत्तान सुस्थितोऽपि च ।
समो दृढासनो भूत्वा स८ृत्य चरणावुभौ ॥१४

सूर्य चन्द्र ग्रह और तारागो के तुल्य विषय होता है। ज्ञान और विज्ञान की सम्पत्ति स्वरूप प्रसिद्ध ऋषियो के तथा जो पहिले हो चुके हैं उनके एव भविष्य मे होने वालो के और बोध से युक्त इस समय मे होने वाले के दर्शन समानता को प्राप्त होते हैं और वह दीप्ति होती है यह तप कहा जाता है ॥ ८-९ ॥ इन्द्रियाँ और इन्द्रियो के अर्थ अर्थात् विषय मन और पाँच मारुतों को जिससे प्रसाद होता है इसलिय यह प्रसाद इस सज्ञा से युक्त हुआ है ॥१ ॥ यह प्रथम क्रम है और प्राणायाम चार प्रकार का होता है। सद्य काल में प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सन्नकृष्ट फल वाला जानना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके आगे प्राणायाम का लक्षण बताते हैं और योग को ही करने वाले के यथातथ्य आसन को भी बताया जाता है ॥ १२ ॥ सब प्रथम ओङ्कार का उच्चारण करे फिर चन्द्र और सूर्य देव को प्रणाम करे इसके पश्चात् स्वस्तिक आसन करे तथा पद्म या अर्धासन करे ॥ १३ ॥ समान जानुओ वाला एक जानु उत्तान और सुस्थित सम और दृढ आसन वाला होकर दोनो चरणो को सहृत करे ॥१४॥

सवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रत ।
पार्ष्णिभ्या वृषणौ छाद्य तथा प्रजनन तत ॥१५
किञ्चिदुन्नामितशिरा शिरो ग्रीवा तथैव च ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ॥१६
तम प्रच्छाद्य रजसा रज सत्त्वेन च्छादयेत् ।
तत सत्त्वस्थितो भूत्वा योग युञ्जन् समाहित ॥१७
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मन पञ्च स मारुतान् ।
विगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥१८

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वत ।
तथात्मरतिरेकस्थ. पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१९
पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तर शुचि· ।
आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥२०
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च ।
तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥२१

अपने मुख को बन्द करके—आँखो को बन्द करके और उर स्थल को आगे की ओर निकालकर—पार्ष्णियो से वृषणो को तथा जननेन्द्रिय को छादित करे ॥१५॥ कुछ ऊँचा सिर करने वाला सिर और ग्रीवा (गरदन) को ऊँचे की ओर करे और अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे तथा इधर-उधर किसी भी ओर दिशाओ मे नही देखे ॥१६॥ रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करे और फिर सत्त्व के द्वारा रजोगुण का छादन करना चाहिए । इसके अनन्तर सत्त्वगुण में स्थित होकर बहुत समाहित भाव से योग का अभ्यास करे ॥१७॥ इन्द्रियो को और समस्त इन्द्रियो के अर्थों को—मन को तथा पाँच मारुतो को समवाय से विगृहीत करके प्रत्याहार करने का उपक्रम करना चाहिए ॥१८॥ जो कूर्म के द्वारा अपने अङ्गो की भाँति सभी ओर से अपनी कामनाओ का प्रत्याहरण करता है और आत्मरति वाला होता हुआ एकस्थ अर्थात् एकाग्र होकर अपने में ही आत्मा को देखता है ॥१९॥ बाहर और भीतर से शुचि होकर शरीर को पूरित करे और आकण्ठ नाभि के योग से प्रत्याहार का उपक्रम करना चाहिए ॥२०॥ एक कला मात्र निमेष और उन्मेष जानना चाहिए फिर द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम किया जाता है ॥२१॥

धारणा द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् ।
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते ।
वीक्षते परमात्मान दीप्यमान स्वतेजसा ॥२२
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥२३
एव वै नियताहार प्राणायामपरायण ।

जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनि ॥२४
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून् ।
विवर्द्धयति सम्मोहं न रोहेदजिता तत ॥२५
नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वित ।
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुर्जितश्रम ॥२६
नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्धनि ॥२७
किञ्चिदूर्द्ध परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।
प्राणापानसमारोधात् प्राणायाम स कथ्यते ॥२८

द्वादशायाम धारणा होती है और दो धारणाओं का योग होता है और इस प्रकार से योग से युक्त होकर ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाता है फिर अपने तेज से दीप्यमान परमात्मा को देख लेता है ॥२२॥ प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं और फिर वह केवल सत्व में ही स्थित रहने वाला होता है ॥२३॥ इस प्रकार से नियत आहार वाला और सर्वदा प्राणायाम करने तत्पर रहने वाला सदा मुनि जीत-जीत कर भूमि का आरोहण करे ॥२४॥ न जीती हुई महाभूमि बहुत से दोषों को उत्पन्न कर देती है और सम्मोह को बढ़ा देती है इसलिये अजिता का कभी आरोहण नहीं करना चाहिए ॥२५॥ नाल यन्त्र से बल से अन्वित होता हुआ जिस प्रकार से जल को पीता है उसी प्रकार से प्रयत्न से वायु को श्रम से जीते ॥२६॥ नाभि में हृदय में कण्ठ में उरस्थल में मुख में नासा के अग्रभाग में नेत्र में भ्रुवों के मध्य में और मूर्धा में कुछ ऊर्ध्व में और पर में धारणा परम कही गई है। प्राण और अपान के समारोध करने से वह प्राणायाम कहा जाता है ॥२७ २८॥

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।
निवृत्ति विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु संज्ञित ॥२९
सर्वेषा समवाये तु सिद्धि स्याद्योगलक्षणा ।
तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम् ।
ध्यानयुक्त सदा पश्येदात्मानं सूर्यचन्द्रवत् ॥३०

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ।
अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥३१
अग्न्यभ्याशे वने वापि शुष्कपर्णचये तथा ।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥३२
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसचये ।
उदपाने तथा नद्यान्न बाधात कदाचन ॥३३
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतन ।
युञ्जीत परम ध्यान योगी ध्यानपर सदा ॥३४
एतान् दोपान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ।
तस्य दोपा प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारका ॥३५

मन की धारणा ही धारणा इस नाम से कीर्त्तित हुई है। विषयों की निवृत्ति प्रत्याहार इस सज्ञा से युक्त हुआ है ॥२९॥ प्राणायामादि समस्तो के समवाय मे ही योग के लक्षण वाली सिद्धि होती है। उससे उत्पन्न योग का ध्यान सिद्धि का लक्षण है । ध्यान से युक्त सदा आत्मा को सूयचन्द्र की भाँति देखता है ॥३०॥ सत्व की उत्पत्ति न होने पर दर्शन नही होता है। देश और काल के योग से रहित को दर्शन नही होता है ॥३१॥ अग्नि के समीप मे—वन में—शुष्क पत्तो के ढेर मे—जन्तुओं से व्याप्त स्थान मे—श्मशान मे—पुराने टूटे-फूटे गोष्ठ मे—चतुष्पथ मे—शब्दो से अर्थात् कोलाहल पूर्ण स्थान मे—भय से पूर्ण प्रदेश मे—चैत्य और बल्मीको के सचय वाली स्थान मे—उदपान में—अन्नादि बाधा से युक्त—क्षुधा से आविष्ट—अप्रसन्न और व्याकुल चित्त वाला पुरुप सदा ध्यान में परायण योगी परम ध्यान कभी न करे । तात्पर्य यह है कि ऐसी परिस्थिति मे ध्यानादि कभी नही करना चाहिए ॥३२ ३३-३४॥ इन उक्त दोपो का विशेप रूप से निश्चय करके प्रमाद से जो योग का अभ्यास करता है उसके दोप प्रकुपित हो जाते हैं और शरीर मे विघ्नो के करने वाले हो जाते हैं ॥३५॥

जडत्व बधिरत्व च मूकत्व चाधिगच्छति ।
अन्धत्व स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥३६

तस्य दोषा प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्या युनक्ति वै ।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्ध न योगी युञ्जत्समाहित ॥३७
अप्रमत्त सदा चव न दोषान् प्राप्नुयान् क्वचित् ।
तेषा चिकित्सा वक्ष्यामि दोषाणा च यथाक्रमम् ।
यथा गच्छन्ति ते दोषा प्राणायामसमुत्थिता ॥ ३८
स्निग्धा यवागूमत्युष्णा भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्म प्रशाम्यति ॥ ३९
गुदावर्त्तप्रतीकारमिद कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
भुक्त्वा दधियवागूर्वा वायुरूर्ध्व ततो व्रजेत् ॥४०
वायुग्रथि ततो भित्त्वा वायुर्देश प्रयोजयेत् ।
तथापि न विशेष स्याद्धारणा मूर्ध्नि धारयत् ॥४१
युञ्जानस्य तनु तस्य सत्त्वस्थस्यैव देहिन ।
गुदावर्त्तप्रतीघाते एतत् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥४२

समय—स्थिति—देश आदि की कुछ भी परवाह न करके जो योग का अभ्यास किया करते हैं उनको जड़ता—बहरापन—मूकता हो जाते हैं । अ क्षापन—स्मृति का लुप्त हो जाना—बुढ़ापा और रोग आदि हो जाते हैं ॥३६। उस व्यक्ति के दोष प्रकुपित हो जाया करते हैं जो अज्ञान से योग का अभ्यास किया करते हैं । इसलिये शुद्ध ज्ञान से योगी को पूर्णतया समाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥३७॥ जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद से रहित होता है वह सर्वदा ही दोषों को प्राप्त नहीं किया करता है । उन दोषों की क्रम के अनुसार चिकित्सा बतलाते हैं जिससे कि प्राणायाम से उत्पन्न हुए दोष चले जाया करते हैं ॥३८॥ स्निग्ध अर्थात् घृत के स्नेह वाली अत्यन्त उष्ण यवागू को खाकर वहाँ अवधारण करना चाहिए। इस क्रम के योग से वात गुल्म प्रशान्त हो जाता है । ३९॥ गुदावर्त्त का प्रतीकार चिकित्सा को करते हुए यही करे कि दही अथवा यवागू खाकर रहे इससे वायु ऊर्ध्व को चली जाती है ॥४ ॥ वायु की ग्रन्थि का भेदन कर उसे वायु के देश मे प्रयोजित करना चाहिए । तो भी विशेष न हो तो धारणा को मूर्धा मे धारण करे ।४१॥ जो युञ्जान व्यक्ति है

उसकी स्थिति सत्व मे होती है उस देही के गुदावर्त के प्रतिघात मे यह चिकित्सा करनी चाहिए ॥४२।

सर्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिन ।
इमा चिकित्सा कुर्व्वीत तया सपद्यते सुखी ॥४३
मनसा यद्व्रत किञ्चिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ।
उरोद्घाते उर स्थान कण्ठदेशे च धारयेत् ॥४४
त्वचोऽवघाते ता वाचि वाधिर्ये श्रोत्र योस्तथा ।
जिह्वास्थाने तृपार्त्तस्तु अग्रे स्नेहाश्च तन्तुभि ।
फल वै चिन्तयेद्योगी तत्र सपद्यते सुखी ॥४५
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्विकीम् ।
यस्मिन् यस्मिन् रजोदेशे तस्मिन् युक्तो विनिर्दिशेत् ॥४६
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इद कुर्याच्चिकित्सितम् ।
वशकीलेन मूर्द्धानि धारयाणस्य ताडयेत् ।
मूर्ध्नि कीरा प्रतिष्ठाप्य काष्ठ काष्ठेन ताडयेत् ॥४७
भयभीयस्य सा सज्ञा तत प्रत्यागमिष्यति ।
अथ वा लुप्तसज्ञस्य हस्ताभ्या तत्र धारयेत् ॥४८
प्रतिलभ्य तत सज्ञा धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।
स्निग्धमल्प च भुञ्जीत तत सपद्यते सुखी ॥४९

शरीर के समस्त अङ्गो के प्रकम्प होने से समारब्ध योगी की इस चिकित्सा को करे उससे वह सुखी हो जाता है ॥४३॥ जो कोई भी व्रत हो उसे मन से विष्टम्भी कृत बनाकर धारण करना चाहिए अर्थात् मन मे पूर्ण दृढता करके ही धारण करे । उर के उद्घात होने पर उर स्थान को कण्ठ देश मे धारण करना चाहिए ॥४४॥ त्वक् का अवघात हो जाने पर उसको वाणी में धारण करे, श्रोत्रो के वधिरत्व मे उसी प्रकार करे । तृषा से आर्त्त को जिह्वा के स्थान मे आगे तन्तुओ से स्नेहो को धारण करे । योगी को फल का चिन्तन करना चाहिए इससे वह सुख वाला होता है ॥४५॥ क्षय मे—कुष्ठ मे और सकीलास मे सब सात्विकी को धारण करे । जिस-जिस मे रजोदेश मे युक्त

होते हुए उसका विनिर्देश करना चाहिए ॥४६॥ योगोत्पन्न विघ्न की यह चिकित्सा करे कि बाँस की कील को मर्धा मे धारण करते हुए ताडित करना चाहिए। मूर्धा मे कील प्रतिष्ठित करके काष्ठ को काष्ठ से ताडन करे ॥४७॥ भयभीत की तब यह संज्ञा आ जायगी। अथवा लुप्त संज्ञा वाले की हाथो से वहाँ धारण करे ॥४८॥ फिर संज्ञा को प्राप्त कर धारणा को मूर्धा मे धारण करे। थोड़ा स्निग्ध पदार्थ खाना चाहिए तब वह सुखी हो जाता है ॥४९॥

अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित्।
दिवं च पृथिवीञ्चैव वायुमग्निं च धारयेत् ॥५०
प्राणायामेन तत्सर्व दह्यमानं वशीभवेत्।
अथापि प्रविशेद्देहं ततस्तं प्रतिषेधयेत् ॥५१
ततः सस्तम्भ्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि।
प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥५२
कृष्णसर्पापराधं तु धारयेद्धृदयोदरे।
महर्जनस्तपः सत्यं हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥५३
विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्यां धारयेत्ततः।
सर्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वा मनसि धारयेत् ॥५४
हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्वाश्च देवताः।
सहस्रेण घटानाञ्च युक्तः स्नायीत योगवित् ॥५५

जिस समय योग का वेत्ता अमानुष सत्त्व से जागृत हो जाता है और दिव तथा पृथिवी को—वायु को और अग्नि को धारण करे ॥५०॥ प्राणायाम से यह सब दह्यमान होकर वशीभूत हो जाते हैं और भी देह मे प्रवेश करे तो उसका प्रतिषेध कर देना चाहिए ॥५१॥ इसके अनन्तर योग से स्तम्भित कर मूर्धा मे धारण करने वाले के प्राणायाम की अग्नि से दग्ध हुआ वह सब विलीन हो जाता है ॥५२॥ कृष्ण सर्प के अपराध को हृदय के उदर मे धारण करे और महः—जन—तप और सत्य को हृदय मे करके धारण करना चाहिए ॥५३॥ विष के फल को पीकर फिर विशल्या को धारण करे। सब ओर से पृथ्वी को नगों से युक्त करके मन मे धारण करे। हृदय मे समस्त समुद्रो को तथा सम्पूर्ण

देवो को करके योग के ज्ञाता पुरुष को एक सहस्र घटो से स्नान करना चाहिए ॥५४-५५॥

उदके कण्ठमात्रे तु धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।
प्रतिस्रोतोविपाविष्टो धारयेत् सर्वगात्रिकीम् ॥५६
शीर्णोऽर्कपत्रपुटके पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।
चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्मित ॥५७
व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।
ब्रुवता लक्षण विद्धि विप्रस्य कथयेत् क्वचित् ॥५८
अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञान प्रलीयते ।
तस्मात प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥५९
सत्त्व तथारोग्यमलोलुपत्व वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।
गन्ध शुभो मूत्रपुरीषमल्प योगप्रवृत्ति प्रथमा शरीरे ॥६०
आत्मान पृथिवीञ्चैव ज्वलन्ती यदि पश्यति ।
कृत्वान्य विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥६१

कण्ठ मात्र जल मे धारणा को मूर्धा मे धारण करे। प्रति स्रोत के विप से आविष्ट होता हुआ सर्वगात्रिकी को धारण करना चाहिए ॥५६॥ शीर्ण होता हुआ आक के पत्तो के दोनो मे वल्मीक की मृत्तिका को पीना चाहिए यह योग मे निर्मित चिकित्सा की विधि बतलाई गई है ॥५७॥ योग मे दृष्ट हेतु से इसकी सक्षेप मे व्याख्या भी कर दी गई है। बोलने वाले से इसका लक्षण जानलो। किसी भी योग्य विप्र को इसे कह देना चाहिए ॥५८॥ और भी मोह के कारण यदि कहेगा तो वह विज्ञान प्रलीन हो जायगा। अतएव योग की प्रवृत्ति को किसी भी प्रकार से कहना नही चाहिए ॥५९॥ यह शरीर मे प्रथम योग की प्रवृत्ति है। इसमे सत्त्वगुण की पूर्ण वृद्धि होती है—आरोग्य, अलोलुपता, वर्ण की कान्ति, सुन्दर स्वर और सौम्यता, अच्छा गन्ध और अल्प मूत्र तथा मल ये सब इसमे हो जाते हैं ॥६०॥ यदि अपने आपको और जलती हुई पृथिवी को देखे तो अन्य को करके प्रवेश करे और सिद्धि को उपस्थित होने वाली समझ लेना चाहिए ॥६१॥

॥ योगमार्ग के विघ्न ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ।
प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ॥१
मानुष्यान् विविधान् कामान् कामयन् ऋतुन् स्त्रियः ।
विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ॥२
अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत् प्रायतनं तथा ।
मायाकर्म धनं स्वर्गमुपसृष्टस्तु काङ्क्षति ॥३
एष कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः ।
उपसृष्टन्तु जानीयाद्बुद्ध्या चैव विसर्जयेत् ।
नित्यं ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात् प्रमुच्यते ॥४
जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ॥५
प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम् ।
भ्रमावर्त्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः ।६
विद्याः काव्यं तथा शिल्पं सर्व वाचाद्भुतानि तु ।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावश्चैव लक्षणम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब इसके आगे जैसे-तैसे उपसर्गों को बतलाते हैं। तत्त्व को देख लेने वाले देहधारी को जो दोष प्रादुर्भूत हो जाते हैं ॥१॥ मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के कामों की और स्त्री की ऋतु की कामना करनी चाहिए और उपसृष्ट और योग का वेत्ता पुरुष विद्या दान के फल की इच्छा करे ॥२। जो उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त होता है वह पुरुष अग्निहोत्र हवि यज्ञ तथा यह प्रायतन माया कर्म धन और स्वर्ग की इच्छा करता है ।३। कर्मों में युक्त यह अविद्या के वश में आया हुआ होकर किया करता है उसे उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त ही जान लेना चाहिए और बुद्धि से इन सब का त्याग कर देना चाहिए। जो नित्य ही ब्रह्म परायण युक्त होता है वह उपसर्ग से प्रमुक्त हो जाता है ।४। प्रत्युपसर्ग को जीत लेने वाले और श्वास को जीत लेने वाले देही को उपसर्ग प्रवृत्त हुआ करते हैं और वे सत्त्व से

ुक, राजस तथा तामस होते हैं ॥५॥ प्रतिभा के श्रवण से और देवो के दर्शन तथा भ्रमावर्त्त इतने ये सिद्धि के लक्षण की संज्ञा वाले कहे गये हैं ॥६॥ विद्या, काव्य, शिल्प और सर्व वाचावृत तथा विद्या के अर्थ मे ये सब उपस्थित होते हैं और यह सब प्रभाव का ही लक्षण कहा जाता है ॥७॥

शृणोति शब्दान् श्रोतव्यान् योजनाना शतादपि ।
सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत् ॥८
यक्षराक्षसगन्धर्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान् ।
वेत्ति ताश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् ॥९
देवदानवगन्धर्वान् ऋषींश्चापि तथा पितॄन् ।
प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्ता त विनिर्द्दिशेत् ॥१०
भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञान सर्वं प्रणश्यति ॥११
वार्त्ता नाशयते चित्त चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
वर्त्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञान प्रणश्यति ॥१२
आवृत्य मनसा शुक्ल पट वा कम्बल तथा ।
ततस्तु परम ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् ॥१३
तस्माच्चैवागतान् दोषास्तूपसर्गानुपस्थितान् ।
परित्यजेत मेधावी यदीच्छेत सिद्धिमात्मन ॥१४॥

एकसौ योजन सेभी सुनने के योग्य शब्दों को सुनलेता है, सब कुछ का ज्ञाता तथा विधियो का जानने वाला योगी एक उन्मत्त की भाँति हो जाता है ॥८॥ यक्ष, राक्षस और गन्धर्वो को तथा दिव्य मनुष्यो को वह देखता है और महान् योग वाला उनको जानता है, यह सब उपसर्ग का ही लक्षण होता है ॥९॥ देव, दानव, गन्धर्वों को ऋषियो, को तथा पितृगणो को सब ओर वह देखा करता है । उसे एक उन्माद से युक्त उन्मत्त व्यक्तिनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥१०॥ अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होता हुआ योगी भ्रम से भ्राम्यमाण होता है और जो भ्रम से भ्रान्त बुद्धि वाला हो जाता है उसका सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाया करता है ॥११॥ अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होने वाला वार्त्ता का नाश कर देता है

और जो वर्तान से आक्रान्त बुद्धि वाला होता है उसका समस्त ज्ञान स्पष्ट रूप से नष्ट हो जाता है ॥१२॥ उस स्थिति में मन से शुक्ल वस्त्र या कम्बल से आवृत होकर इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्म का अनुचिन्तन करना चाहिए ॥१३॥ उस से ही आत्मा के दोषों को तथा उक्तप्रकार के उपस्थित उपसर्गों को मेधा वाले पुरुष को परित्याग कर देना चाहिए यदि वह अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा करता है। तो उसको सिद्धि के लिये ऐसे त्याग करने की परमावश्यकता होती है ॥१४॥

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुराः ।
उपसर्गेषु संयुक्ता आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥१५
तस्माद्युक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
तथा सुप्तः सुसूक्ष्मेषु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ॥१६
ततस्तु योगयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिनः ।
उपसर्गाः पुनश्चान्ये जायन्ते प्राणमनकाः ॥१७
पृथिवीं धारयेत्सर्वां तमश्चापो ह्यनन्तरम् ।
ततोऽग्निश्च व सर्वेषामाकाशं मन एव च ॥१८
ततः परां पुनर्बुद्धिं धारयेद्यत्नतो यती ।
सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ॥१९
पृथ्वीं धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।
अपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ।
शीता रसाः प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभाः ॥२०
तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्तते ।
आत्मानं मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति ॥२१

ऋषिगण देवता गन्धर्व यक्ष उरग और महान् असुर गण ये सब उपसर्ग से संयुक्त होकर बार बार आवर्तित हुआ करते हैं। १५॥ इसलिये जो युक्त योगी होता है उसे सर्वदा अल्प और हल्का आहार करने वाला इन्द्रियों को जीत लेने वाला होना चाहिए तथा सूक्ष्मों में सुप्त रहने वाला होकर उसे मूर्धा में धारणा को धारण करना चाहिए ॥१६॥ इस प्रकार से रहने वाले निद्रा

का जीत लेने वाले योग से युक्त योगी को अन्त मे फिर वे उससर्ग प्राणमज्ञा वाले हो जाया करते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवी को धारण करे इसके अनन्तर जलो को, फिर अग्नि को और सबके बाद आकाश को धारण करे ॥१८॥ इसके अनन्तर यती को मनसे भी परा बुद्धि को यत्न पूर्वक धारण करनी चाहिए। और इस बीच में जो भी सिद्धियो के चिह्न उपस्थित हो उन्हे देख,देख कर त्याग देना चाहिए ॥१९॥ पृथ्वी को धारण करने वाले के लिये यह मही अति सूक्ष्म प्रवृत्त होती है। जलो को धारण करने वाले के लिये जल सूक्ष्म हो जाते है और समस्त रस शीत तथा अमृत के तुल्य प्रवर्तमान हुआ करते हैं ॥२०॥ जब तेज को धारण किया जाता है तो वह तेज भी सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा को तेज मानता है और तेज तद्भाव का ही अनुदर्शन किया करता है ॥२१॥

आत्मान मन्यते वायु वायुवन्मण्डल प्रभो ।
आकाश धारयाणस्य व्योम सूक्ष्म प्रवर्त्तते ॥२२
पश्यते मण्डल सूक्ष्म घोपश्चास्य प्रवर्त्तते ।
आत्मान मन्यते नित्य वायु सूक्ष्म प्रवर्त्तते ॥२३
तथा मनो धारयतो मन सूक्ष्म प्रवर्त्तते ।
मनसा सर्वभूताना मनस्तु विशते हि स ।
बुद्धचा बुद्धि यदा युङ्क्तेत्तदा विज्ञाय बुद्ध्यते ॥२४॥
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित् ।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परम व्रजेत् ॥२५॥
यस्मिन् यस्मिश्च सयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे ।
तत्रैव सङ्ग भजते तेनैव प्रविनश्यति ॥२६॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्मणि ससक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो बुद्धचा स पर प्राप्नुयाद्द्विज ॥२७
दृश्यन्ते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुप ।
ससक्ता सूक्ष्मभावेपु ते दोपास्तेपु सज्ञिता ॥२८

हे प्रभो ! आत्मा को वायु मानता है और समस्त मण्डल को वायु की भाँति देखता है। आकाश को धारयमाण का व्योम सूक्ष्म हो जाता है ॥२२॥

नित्य ब्रह्मपरा युक्त स्थानान्येतानि व त्यजत् ।
असज्यमान स्थाने। द्विज सव गतो भवत् ॥४०

ऐश्वय के गुण से सम्प्राप्त ब्रह्मभूत उस प्रभु को सब ओर समस्त देव स्थानो मे नि शेष रूप से बरतता है ॥ ३६ ॥ पिशाचो को पिशाच से राक्षसो को राक्षस से गन्धर्वों को गन्धव से तथा कुबेरजो को कौवेर से अर्थात् कुबेर के स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्र को ऐन्द्र स्थान स सौम्य को सौम्य स्थान से तथा प्रजापति को प्राजापत्य स्थान से साधन करना चाहिय ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से ब्राह्म से ब्राह्म प्रभु का उपामिश्रण करता है। वहीं पर सक्त होने वाला उन्मत्त हो जाता है। उसी से सब प्रवृत्त होता है ॥ ३९ ॥ नित्य ही ब्रह्म मे परायण रहने वाले युक्त पुरुष को ये स्थान त्याग देने चाहिये। स्थानो मे आस यमान द्विज सवगत हो जाता है ॥ ४ ॥

॥ योग माग के ऐश्वय ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ऐश्वयगुण विस्तरम् ।
येन योग विशेषेण सवलोकान्तिक्रमेन् ॥१
तनाष्टगुणमैश्वय योगिना समुदाहृतम् ।
तत्सव क्रमयोगेन उच्यमान निबोधत ॥२
अणिमा लघिमा चव महिमा प्राप्तरेव च ।
प्राकाम्यञ्चव सवत्र ईशित्वञ्चव सवत ॥३
वशित्वमथ सवत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविध ज्ञयमैश्वय सवकामिकम् ॥४
सावद्य निरवद्य च सूक्ष्मञ्चैव प्रवत्तते ।
सावद्य नाम तत्तत्व प चभूतात्मक स्मृतम् ॥५
निरवद्य तथा नाम प चभूतात्मक स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि मनश्च व अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥६
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्त तु प चभूतात्मकं पुन ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध यहङ्कार सन्गितम् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ऐश्वर्य गुणो का विस्तार से वर्णन

किया जाता है जिस योग विशेष के द्वारा समस्त लोकों का अतिक्रमण किया करता है ॥ १ । वहाँ पर आठ गुणों वाला योगियों का ऐश्वर्य कहा गया है । वह सब क्रम के योग से कहा जाने वाला है उसे आप लोग भली-भाँति समझ लेवें ॥ २ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, सर्वत्र प्राकाम्य और सब ओर ईशत्व तथा सर्वत्र वशित्व जहाँ कि कामावसायिता होवे । वह भी सर्वकामिक ऐश्वर्य अनेक प्रकार वाला जानना चाहिये ॥ ३—४ ।। वह ऐश्वर्य सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म प्रवर्त्तमान हुआ करता है । इसमे जो सावद्य होता है वह तत्व होता है जो कि पञ्चभूतात्मक होता है ।। ५ ॥ निरवद्य यह नाम भी पञ्चभूतात्मक कहा गया है । इन्द्रियों का समूह, मन और अहङ्कार कहा गया है ॥ ६ ॥ वहाँ पर पुन सूक्ष्म प्रवृत पञ्चभूतात्मक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥ ७ ॥

तथा सर्वमय चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च ।
सयोग एव त्रिविध सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तते ॥८
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्त्तते ।
तस्य रूप प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभु ॥९
त्रैलोक्ये सर्वभूतेपु जीवस्यानियत स्मृत ।
अणिमा च यथाव्यक्त सर्व तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०
त्रैलोक्ये सर्वभूताना दुष्प्राप्य समुदाहृतम् ।
तच्चापि भवति प्राप्य प्रथम योगिना बलात् ॥११
लम्बन प्लवन योगे रूपमस्य सदा भवेत् ।
शीघ्रग सर्वभूतेपु द्वितीय तत्पद स्मृतम् ॥१२
त्रैलोक्ये सर्वभूताना प्राप्ति प्राकाम्यमेव च ।
महिमा चापि यो यस्मिस्तृतीयो योग उच्यते ॥१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेपु त्रैलोक्यमगम स्मृतम् ।
प्रकामान् विषयान् भुङ्क्ते न च प्रतिहत क्वचित् ।
त्रैलोक्ये सर्वभूताना सुख-दुख प्रवर्त्तते ॥१४

इसी प्रकार से सर्वमय और आत्मा मे रहने वाली ख्याति ही तीन प्रकार

का संयोग सूक्ष्मो मे ही प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ पुन अठ गुणो वाले को भी उनमे जो प्रवृत्ति होती है उसके रूप को बतलाते हैं जो कि भगवान प्रभु ने बताया है ॥ ९ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो मे जीव की अनियतता कही गई है। अणिमा जिस प्रकार से अव्यक्त है उसमे सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥१०॥ तीनो लोको मे जो परम दुष्प्राप्य बताया गया है वह भी योगियो को पहिले बत पूर्वक प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ योग मे इनका रूप सर्वदा लम्बन एव प्लवन होता है। शीघ्र गमन करने वाला समस्त भूतो मे उसका द्वितीय पद कहा गया है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो की प्राप्ति और प्राकाम्य तथा जो जिसमे महिमा होती है वह भी तृतीय योग कहा जाता है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो मे त्रैलोक्य अगम कहा गया है। वह विषयो को अपनी कामना के अनुसार भोग करता है और कोई कही भी प्रतिहति करने वाला नही होता है। त्रैलोक्य मे सबभूतो का सुख और दुःख प्रवृत्त होता है ॥ १४ ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।
वश्यानि च व भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
भवन्ति सव कार्ये पु इच्छतो न भवन्ति च ॥१५
यत्र कामावसायत्व त्रैलोक्ये सचराचरे ।
इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥१६
शब्द स्पर्शो रसो गन्धो रूप च व मनस्तथा ।
प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति यथेच्छया ॥१७
न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥१८
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ।
क्रियते च व सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥१९
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जित ।
अवर्णो ह्यवरश्च व तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥२०
भुङ्क्तेऽथ विषयांश्च व विषयैर्न च युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परम सूक्ष्म सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गक ॥२१

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुष स्मृत ।
पुरुष. सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परत स्थित ॥२२
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्ये सर्व त सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्गं ततो गच्छेत् सुसूक्ष्म परम पदम् ॥२३

योग के ज्ञान को रखने वाला प्रविभाग से सर्वत्र ईश होता है। इस चराचरात्मक त्रैलोक्य मे समस्त भूत वश्य होते हैं। समस्त कार्यों मे इच्छा करते हुये नही होते हैं ॥ १५ ॥ इस चराचर त्रैलोक्य मे जहाँ पर कामावसायित्व होता है वहाँ इच्छा से इन्द्रियाँ होती है और नही होती है ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप तथा मन इसकी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं तथा इच्छा से नही होते हैं ॥ १७ ॥ यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न भिन्न होता है, न छेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न मोह को प्राप्त होता है, न दीयमान होता है, न लिप्त ही होता है, न यह क्षीण होता है, न क्षर होने वाला होता है और न कभी खिन्न होता है। यह सर्वत्र किया जाता है और विकार युक्त नही होता है ॥ १८ –१९ ॥ बिना गन्ध, रस और रूप वाला तथा स्पर्श और शब्द से विवर्जित, बिना वर्ण वाला तथा वर्ण का अचर, स्वरूप वाला यह होता है ॥ २० ॥ और विषयो का भोग करता है तथा विषयो से युक्त नहीं होता है। परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करके सूक्ष्मत्व होने से अपवर्ग से व्यापक है और व्यापित्व होने से पुरुष कहा गया है। सूक्ष्मभाव से यह पुरुष ऐश्वर्य मे परे स्थित होता है ॥ २२ ॥ ऐश्वर्य मे दूसरा गुण सब ओर सूक्ष्म कहा जाता है। ऐश्वर्य का अप्रतिघाती परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके अति सूक्ष्म परम पद अपवर्ग को जाता है ॥ २३ ॥

॥ पाशुपत योग का स्वरूप ॥

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत् ।
राजस तामस वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥१
तथा सुकृतकर्म्मा तु फल स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥२

तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥३
परिश्रमस्तु यज्ञानां महतार्थेन वर्त्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम् ॥४
अथ च ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
न स स्याद् व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥५
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ।
विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ॥६
गोभिर्मही संयतं पतन्त्रिणं महात्मानं परममति वरेण्यम् ।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ।
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ॥७

श्री वायु देव ने कहा—इस प्रकार से आया हुआ ज्ञान से अथवा राग से कर्म का आचरण न करे। राजस हो अथवा तामस हो उसका भोग करके वहाँ पर ही युक्त होता है ॥ १ ॥ यदि कोई सुकृत कर्मों के करने वाला है तो वह अपने सुकृत कर्मों के प्रभाव से उनका फल स्वर्ग में भोगता है। जब पुण्य कर्मों के फल का भोग समाप्त हो जाता है तो उस स्थान से भ्रष्ट होकर पुन मनुष्य लोक को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ इससे ब्रह्म परम सूक्ष्म है और ब्रह्म शाश्वत कहा गया है अर्थात् ब्रह्म सर्वदा रहने वाला कहा जाता है। ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये क्योंकि ब्रह्म ही परम सुख होता है ॥ ३ ॥ यज्ञों के करने में महान् परिश्रम करना पड़ता है और वह भी बहुत अधिक धन से सम्पन्न किया जाता है। यज्ञादि के करने वाला भी फिर मृत्यु के वश में हो जाता है। इसलिये मोक्ष का प्राप्त करना ही परम सुख होता है ॥ ४ ॥ ध्यान से संयुक्त होता हुआ जो ब्रह्म यज्ञ में परायण होता है वह सौ मन्वन्तरों में भी मारा नहीं जा सकता है ॥ ५ ॥ विश्व नाम वाले विश्व के रूप वाले विश्व के पाद शिर और ग्रीवा वाले विश्व के स्वामी विश्व का पालन करने वाले दिव्य पुरुष विश्व की गन्ध वाले विश्व की माल्य विश्व के अम्बर को धारण करने वाले

प्रभु का योग से दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥ मही इन्द्रियों से पतत्रि, महान् आत्म वाले, परम मति, वरेण्य, कवि, पुराण, अनुशासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान् को सयत करती है उस इन्द्रियो से रहित सुवर्ण के समान वर्ण वाले पुरुष को योग से देखते हैं, चक्षु से नही देखते हैं ॥ ७ ॥

अलिङ्गिन पुरुष रुक्मवर्णं सलिङ्गिन निर्गुण चेतन च ।
नित्य सदा सर्वगतन्तु शौच पश्यन्ति युक्त्या ह्यचल प्रकाशम् ॥८
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमान अपाणि पादोदरपार्श्वजिह्व ।
अतीन्द्रियोऽह्यापि सुसूक्ष्म एक पश्यत्यचक्षु स शृणोत्यकर्ण ॥९
नास्यास्त्यबुद्ध न च बुद्धिरस्ति स वेद सव न च वेदवेद्य ।
तमाहुरग्र्य पुरुप महान्त सचेतन सर्वगत सुसूक्ष्मम् ॥१०
तामाहुर्मुनय सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम् ।
प्रकृति सवभूताना युक्ता पश्यन्ति चेतसा ॥११
सर्वत पाणिपादान्त सर्वतो ऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत श्रुति (म) माल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१२
युक्ता योगेन चेशान सर्वतश्च सनातनम् ।
पुरुप सर्वभूताना तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥१३
भूतात्मान महात्मान परमात्मानमव्ययम् ।
सर्वात्मान पर ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति ॥१४

बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हेम के सदृश वर्ण से युक्त, सलिङ्गी, निर्गुण, चेतन, नित्य, सदा सब मे रहने वाले, शौच, अचल और प्रकाश स्वरूप पुरुप को युक्ति से देखते हैं ॥८। उसकी भावना से युक्त तेज से दीप्यमान, पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा से रहित, इन्द्रियो की पहुँच से परे, बिना नेत्रों वाला और बिना कानो वाला अब भी सुसूक्ष्म एक वह देखता है और सुनता भी है ॥९॥ इसको कुछ भी अबुद्ध नही है इसके बुद्धि भी नही है, वह सब को जानता है और वह वेदो के द्वारा भी जानने के योग्य नही हैं अर्थात् वेद भी उसके यथार्थ स्वरूप को नही बता सकते हैं। उसको सब मे प्रथम पुरुप महान, सचेतन सर्वगत और सुसूक्ष्म कहते हैं ॥१०॥ लोक

मे सब मुनिगण उस को समस्त प्राणियो के प्रसव के धर्म वाली प्रकृति कहते हैं। जो योग से युक्त होते हैं वे ध्यान म चित्त से उसे देखते हैं। ११।। अब उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं कि वह सभी ओर पा ण तथा पादो वाला है सब ओर नेत्र शिर और मुख वाला है सब तरफ श्र तिमान् है और लोक मे सब को आवृत करके स्थित रहता है ।।१२। जो युक्त होते है वे योग से उस ईशान और सदा स्थित सनातन को एव समस्त भूतो के पुरुष का देखते हैं। इसलिय जो ध्याता अर्थात् ध्यान योगी हैं वे कभी मोह को प्राप्त नही होते हैं ।।१३।। समस्त भूतो की आत्मा महान् आत्मा वान अव्यय सब की आत्मा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके मोहित नही होते हैं ।।१४।।

पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिषु ।
पुरि शेते तथाभ्र च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
अथ चेल्लुप्तधर्म्मोत्त सविशेषश्च कम्मभि ।।१५
ततस्तु ब्रह्मयो या व शुक्रशोणितसयुतम् ।
स्त्रीपुमासप्रयोगेण जायते हि पुन पुन ।।१६
ततस्तु गर्भकाले तु कलन नाम जायते ।
कालेन कलनश्चापि बुद्बुदश्च प्रजायते ।।१७
मत्पिण्डस्तु यथा चक्र चक्रवातेन पीडित ।
हस्ताभ्या क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति ।।१८
एवमात्मास्थिसयुक्तो वायुना समुदीरित ।
जायते मानुषस्तत्र यथा रूप तथा मन ।।१
वायु सम्भवते तेषा वातात् सञ्जायते जलम् ।
जलात्सभव त प्राण प्राणाच्छुक्र विवर्द्धते ।।२०
रक्तभागास्त्रयस्त्रिशच्छुक्रभागाश्चतुर्द श ।
भागतोऽर्द्धपल कृत्वा ततो गर्भे निषेवते ।।२१

जिस तरह पवन समस्त मूर्तियो मे विचरता हुआ ग्राह्य हुआ करता है उसी भाँति वह पुर मे शयन करता है तथा अभ्र मे भी स्थित रहता है इसी लिये 'पुरुष'—यह कहा जाता है। इसके अनन्तर सविशेष कर्मों से लुप्त

थम वाला होता है ॥१५॥ इसके पश्चात् वह ब्रह्म शुक्र और शोणित से संयुत होकर योनि में स्त्री और पुमान् के प्रयोग से बार-बार उत्पन्न होता है ॥१६॥ सर्वप्रथम योनि मे पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है तो वह उस गर्भ के समय मे पहिले कलन नाम वाला होता है। कुछ समय मे वही कलन बुद्बुद हो जाता है ॥१७॥ जिस तरह मिट्टी का एक पिण्ड चक्र वात के द्वारा पीडित किया जाता है और हाथो से बनाया हुआ विग्रहत्व को प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ इसी प्रकार से वायु के द्वारा समुदीरित वह आत्मा और अस्थि से संयुक्त मनुष्य उत्पन्न होता है। उसमे फिर जैसा रूप होता है वैसा मन होता है ॥१९॥ वायु उत्पन्न होता है, उस वात से जल होता है, जल से प्राण उत्पन्न होता है और प्राण से शुक्र की वृद्धि होती है ॥२०॥ तेतीस रक्त के भाग होते हैं और शुक्र के चौदह भाग होते है। भाग से आधा पल करके फिर गर्भ मे निषेचित होता है ॥२१

ततस्तु गर्भसंयुक्त पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ।
पितुः शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥२२
ततोऽस्य मातुराहारात् पीतलीढप्रवेशितम् ।
नाभि स्रोत प्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥२३
नवमासान् परिक्लिष्ट संवेष्टितशिरोधर ।
वेष्टित सर्वगात्रैश्च अपर्य्यायक्रमागत ।
नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुख ॥२४
ततस्तु कर्म्मभि पापैर्निरय प्रतिपद्यते ।
असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयो ॥२५
तत्र निर्भर्त्सनञ्चैव तथा शोणितभोजनम् ।
एतास्तु यातना घोरा. कुम्भीपाकसुदु सहा ॥२६
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्ना स्वरूपमुपयान्ति वै ।
तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागत ॥२७
एव जीवस्तु तैं पापैस्तप्यमान स्वय कृतै ।
प्राप्नुयान् कर्म्मभिर्दुःख शेष वा यदि चेतरम् ॥२८

इसके पश्चात् पाँच वायु से वृम और गम से सयुक्त इसके पिता के शरीर से प्रत्येक अङ्ग का रूप उत्पन्न होता है ॥२२॥ इसके अनन्तर माता जो कुछ भी खाया करती है उस उसके आहार से पीया हुआ खाटा हुआ अन्दर प्रवेशित होता है वह नाभि के स्रोत के द्वारा गर्भ तक प्रवेश करता है उससे देह धारियो के प्राणो का आधार होता है ॥२३॥ इस तरह नौ मास पर्यन्त सवेष्टित शिरोधर परिक्लेश से युक्त होता हुआ समस्त गात्रो से वेष्टित होकर अपर्याय क्रम से आया हुआ रहता है नौमास तक वहाँ गर्भ मे रहकर फिर योनि के छिद्र से अवाङ्मुख होता हुआ जन्म ग्रहण किया करता है ॥२४॥ फिर यहाँ पर आकर अनेक पाप कर्म करता है और उन दुष्कर्मों के कारण नरक को प्राप्त किया करता है। असिपत्र वन शाल्मली छेद भेदो के नाम वाले नरक होते हैं उनमे पाप कर्मों से यातना भोगता है ॥२५॥ वहाँ नरक स्थानो में बहुत बुरी तरह फटकार खाता है तथा शोणित का भोजन करना पडता है। ये समस्त अत्यन्त घोर यातनाऐ हैं और कुम्भीपाक नरक की बहुत असह्य यातना होती है ॥२६॥ जिस तरह छिन्न किये हुए जल अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार छिन्न और भिन्न हुए यातना के स्थान में आते हैं ॥२७॥ इस तरह जीवात्मा अपने ही किये हुए पाप कर्मों से तप्यमान होता हुआ कर्मों के द्वारा दुख प्राप्त किया करता है। आदि का जो भी शेष अन्य होता है। उसे भी भोगता है ॥२८॥

एकेनैव तु गन्तव्य सर्वमृत्युनिवेशनम् ।
एकेनैव च भोक्तव्य तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥२९
न ह्येन प्रस्थित कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति ।
यदनेन कृत कर्म्म तदेनमनुगच्छति ॥३०
ते नित्य यमविषये विभिन्नदेहा क्रोशन्त सततमनिष्टसप्रयोगै ।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभि सुभृशमधर्म्मयातनाभि ॥ ३१
कर्मणा मनसा वाचा यदभीष्ट निषेव्यते ।
तत् प्रसह्य हरेत् पाप तस्मात सुकृतमाचरेत् ॥३२
यादृग् जातानि पापानि पूर्व कर्म्माणि देहिन ।

ससार तामस तादृक् षड्विध प्रतिपद्यते ॥३३
मानुष्य पशुभावञ्च पशुभावान्मृगो भवेत् ।
मृगत्वात् पक्षिभावन्तु तस्माच्चैव सरीसृप ॥३४
सरीसृपत्वाद्गच्छोद्धि । स्थावरत्वन्न सशय ।
स्थावरत्व पुन प्राप्तो यावदुन्मिषते नर ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रै वपरिकीर्तित ॥३५

समस्त प्राणियो के मृत्यु के स्थान मे एक ही को अकेले जाना पडता मे अर्थात् अन्य वहाँ कोई भी सहायक नही हो सकता है । और स्वय एक ही को वहाँ नरक स्थान मे कर्मों का फल भोगना पडता है इसलिये सवदा सुकृत ही करना चाहिए ॥२६॥ जब अन्त समय उपस्थित होता है तो मृत्यु के मुख मे प्रस्थान करने वाले इसको कोई भी साथी नही मिलता है और न जाते हुए के पीछे ही कोई जाया करता है । इसने यहाँ लोक मे जो भी भला-बुरा कर्म किया है वही इसके पीछे साथ जाया करता है ॥३०॥ वे वहाँ यमराज के स्थान मे विभिन्न देह वाले नित्य ही बराबर बुरे-बुरे सम्प्रयोगो से रुदन करते हुए शुष्क हो जाते हैं और बहुत-सी अधम यातनाओ से जो कि अत्यन्त ही घोर रूप मे प्राप्त होती है सब तरह वेदना से पूर्ण शरीर वाले होते हैं ॥३१॥ कर्म से मन से और वाणी से जो अभीष्ट का सेवन किया जाता है उस पाप को बलपूर्वक दूर कर देना चाहिए । इससे सुकृत कर्म का ही आचरण करना चाहिए ॥३२॥ इस देहधारी पुरुष के जैसे भी पहिले कर्म तथा पाप हुए हैं उनको यह तामस ससार वैसा ही छै प्रकार वाला प्राप्त हुआ करता है ॥३३॥ मानुष्य से पशुभाव, पशुभाव से मृग होता है । मृगत्व से पक्षिभाव को प्राप्त होता है और फिर उससे सरीसृप होता है ॥३४॥ सरीसृप से स्थावरता को प्राप्त किया करता है, इसमे तनिक भी सन्देह नही है । जब तक नर के उन्मेष को प्राप्त नही होता है बराबर पुन स्थावरत्व को प्राप्त किया करता है । कुम्हार के चाक की भाँति भ्रमण करता हुआ वहाँ ही पर रहा करता है ॥३५॥

इत्येव हि मनुष्यादि ससारे स्थावरान्तके ।

विजयस्तामसो नाम तत्रथ परिवर्त्तते ॥३६
सात्विकश्चापि ससारा ब्रह्मादि परिकीर्तित ।
पिशाचान्त स विज्ञय स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७
ब्राह्म तु केवल सत्व स्थावर केवल तम ।
चतुर्दशाना स्थानाना मध्ये विष्टम्भक रज ।
मर्मसु छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिन ॥३८
ततस्तु परम ब्रह्म कथ विप्र स्मरिष्यति ।
सस्कारात् पूर्वधर्मस्य भावनाया प्रणोदित ।
मानुष्य भजते नित्य तस्मान्नित्य समादधेत ॥३९

इस प्रकार से ससार मे मनुष्य से आदि लेकर स्थावर के अन्त तक तामस भाव जानना चाहिए । यह यहाँ ही परिवर्त्तित होता रहा करता है ॥३६॥ सात्त्विक भी ससार ब्रह्म से आदि लेकर कहा गया है जो कि पिशाच के अन्त तक स्वर्ग स्थानो मे देहधारियो का जानना चाहिए ॥ ३७॥ ब्राह्म मे तो केवल सत्व ही होता है और स्थावर मे केवल तमोगुण ही होता है । चौदह स्थानो के मध्य मे रजोगुण विष्टम्भक होता है जो कि मर्म स्थानो के छिद्यमान होने पर वेदना से आर्त्त देहधारी को हुआ करता है ॥३८॥ इसके पश्चात् विप्र परम ब्रह्म का कैसे स्मरण करेगा ? पूर्व धर्म के सस्कार से भावना से प्रेरित होता हुआ मानुष्य का सेवन किया करता है । इसलिये नित्य ही समाधीत होना चाहिए ॥३९॥

॥ पाशुपत योग–महिमा ॥

चतुर्दशविध ह्य तद्बुद्ध्वा ससारमण्डलम् ।
तथा समारभेत कर्म्म ससारभयपीडित ॥१
तत स्मरति ससारचक्रेण परिवर्त्तित ।
तस्मात् सतत यत्तो ध्यानतत्परयुक्तक ।
तथा समारभेद्योग यथात्मान स पश्यति ॥२
एष आद्य पर ज्योतिरेष सेतुरनुत्तम ।
विवृद्धो ह्य ष भूताना न सम्भेदश्च यावता ॥३

तदेन सेतुमात्मान अग्नि वै विश्वतोमुखम् ।
हृदिस्थ सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् ॥४
हुत्वाटावाहुनी सम्यक् शुचिस्तद्गतमानस ।
वश्वानर हृदि यन्तु यथावदनुपूर्वश ।
अप पूर्व सकृत् प्राश्य तुष्णी भूत्वा उपासते । ५
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुति स्मृता ।
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥६
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ।
स्वाहाकारं पर हुत्वा शेष भुञ्जीत कामत ।
अप पुन सकृत् प्राश्य आचम्य हृदय स्पृशेत् ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—इस प्रकार से चौदह प्रकार वाले इस ससार के मण्डल को समझ कर ससार के भय से पीडित होते हुए वैसे कर्मों के करने का आरम्भ करना चाहिए ॥१॥ इस ससार के चक्र से परिवर्त्तित होते रहने वाला फिर स्मरण किया करता है। इसलिये निरन्तर योग में युक्त होकर ध्यान मे परायण युञ्जान होवे और इस तरह से योग का आरम्भ करना चाहिए कि फिर आत्मा का दशन प्राप्त कर लेवे ॥२॥ यही आद्य परम ज्योति है, यही सर्वोत्तम सेतु है, यह प्राणियों का विशेष रूप से वर्धित होता है और सम्भेद शाश्वित नही है ॥ ३ ॥ इसलिये आत्मा स्वरूप सेतु को, विश्वतोमुख अग्नि को जो कि समस्त प्राणियो के हृदय मे स्थित होता है विधान के ज्ञाता को उसकी उपासना करनी चाहिए ॥४॥ पवित्र होकर उसी मे अपने मन को सन्निविष्ट करने वाले को भली-भाँति आठ आहुतियों से हवन करना चाहिए। जो वैश्वानर हृदय मे स्थित है उसी के लिये यथावत् क्रम से आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्व मे एकबार जल का पान कर फिर मौन होकर उपासना करे ॥५॥ प्रथम आहुति 'प्राणाय स्वाहा'—इससे बताई गई है। दूसरी आहुति 'अपानाय स्वाहा'—इससे देवे और तीसरी आहुति 'समानाय स्वाहा'—इससे देनी चाहिए ॥६॥ उदानाय स्वाहा'—इससे चौथी व्यानाय स्वाहा'—इससे पाँचवी आहुति देवे। स्वाहाकारो से पर को हवन कर शेष का इच्छा पूर्वक

भोजन करे । फिर एकबार जल का पान कर तीन बार आचमन करे और हृदय का स्पर्श करना चाहिए ।।७।

ॐप्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक ।
स रुद्रो ह्या मन प्राणा एवमाप्यायएन स्वयम् ।।८
त्व देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्व चतुरा वृषा ।
मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्य भद्रमेतद्धुत हवि ।।६
एव हृदयमालभ्य पादागष्ठ तु दक्षिणे ।
विश्राव्य दक्षिण पाणि नाभि व पाणिना स्पृशेत् ।
तत पुनरुपस्पृश्य चात्मानमभिसस्पृशेत् ।।१०
अक्षिणी नासिका श्रोत्रे हृदय शिर एव च ।
द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ।।११
तयो प्राणोऽन्तरात्मास्य बाह्योऽपानोऽन उच्यते ।
अन्न प्राणस्तथापान मृत्युर्जीवितमेव च ।।१२
अन्न ब्रह्म च विज्ञेय प्रजाना प्रसवस्तथा ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।
वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते ।।१३
तदेवाग्नौ हुत ह्यन्न भुञ्जते देवदानवा ।
गन्धर्वयक्षरक्षासि पिशाचाश्चान्नमेव हि ।।१४

इसके अनन्तर ओ प्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक । स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्यायेस्स्वयम् —अर्थात् प्राणो की जो ग्रन्थि है उसकी आत्मा विशान्तक रुद्र है । वही रुद्र आत्मा के प्राण हैं । इस प्रकार से स्वय आप्यायित होना चाहिए ।।८।। आप देवो मे भी सबसे बड़े हैं आप उग्र हैं आप चतुर वृष हैं । आप हमारी मत्यु के नाशक है । यह हुत हवि हमारे लिये कल्याणप्रद होवे ।।६।। इस प्रकार हृदय का आलभन कर दक्षिण पाद के अगूठे मे विश्रावित कर फिर दक्षिण पाणि और नाभि का पाणि से स्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् पुन आचमन कर अपने आपको स्पर्श करे ।।१०।। तथा दोनो नेत्रो को नासिका दोनो कानो को हृदय को और शिर को स्पर्श करे ।

प्राण और अपान ये दोनो दो आत्माऐ कही गई हैं ॥११॥ उन दोनो का अन्त-रात्मा प्राण होता है। इसका बाह्य आत्मा अपान है यह कहा जाता है। अन्न प्राण तथा अपान है, मृत्यु और जीवन है ॥१२॥ अन्न को ब्रह्म जानना चाहिए तथा अन्न को प्रजाओ का प्रसव समझना चाहिए। अन्न से प्राणी होते हैं और उनकी स्थिति भी अन्न से कही जाती है तथा भूतो की वृद्धि भी अन्न से ही होती है, इसी लिये अन्न को ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ वही अन्न जब अग्नि मे हुत होता है तो उस अन्न को देव और दानव खाते हैं। गन्धव, यक्ष और राक्षस तथा पिशाच भी अन्न का ही भोग करते हैं ॥१४॥

॥ शौचाचार लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥१
उदकार्थी तु शौचाना मुनीनामुत्तम पदम्।
यस्तु तेष्वप्रमत्त स्यात् स मुनिर्नावसीदति ॥२
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अवमान विष तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३
यस्तु तेष्वप्रमत्त स्यात् स मुनिर्नावसीदति।
गुरो प्रियहिते युक्त स तु सवत्सर वसेत् ॥४
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्।
प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम्।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५
चक्षुपूत व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूत जल पिबेत्।
सत्यपूता वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम् ॥६
आतिथ्य श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित्।
एव ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥७

श्रीवायुदेव कहते हैं—इसके आगे शौचाचार का लक्षण बतलाया जाता है जिसको अनुष्ठित करने पर शुद्ध आत्मा वाला होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उदक को चाहने वाला शुद्ध मुनियो का उत्तम

पद होता है। जो उनम प्रमाद से रहित होता है वह मुनि कभी भी अवसन्न नही होता है ।२।। मान और अपमान ये दोनो हैं और इन्ही दोनो को अमृत तथा विष कहते है । उनमे जो अपमान है वही विष कहा है और मान को अमृत कहा जाता है ।।३।। जो उनमे अप्रमत्त होता है वह मुनि दुःखित नही होता है। जो गुरु के प्रिय कार्य और हितप्रद कर्म मे युक्त होता है वह एक सम्वत्सर तक वास करता है ।।४।। जो नियम निर्धारित हैं उनमे अप्रमत्त होता हुआ सर्वदा धर्मो का पूर्ण पालक होना चाहिए। अनुज्ञा को प्राप्त करके इसके अनन्तर ज्ञान का आगमन उत्तम होता है । सदा धर्म का विरोध न करते हुए ही इस भूमण्डल पर विचरण करना चाहिए ।।५।। नेत्रो से पवित्र करके अर्थात् आँखो से अच्छी तरह देख भाल के मार्ग मे आगे चलना चाहिए तथा वस्त्र से पवित्र करके अर्थात् सर्वदा कपड़े से छानकर ही जल पीना चाहिए। सत्य से पूत करके अर्थात् सचाई से पवित्र की हुई वाणी को बोलना चाहिए यह धर्म मनस्त्र का अनुशासन अर्थात् आज्ञा है ।।६।। योग का वेत्ता पुरुष श्राद्ध यज्ञो मे कही भी आतिथ्य ग्रहण न करे । इस प्रकार से योगी अहिंसक होता है यह विचारणा है ।।७।

वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने ।
विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ।।८
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च ।
युक्तस्तथा चरेद्भैक्ष सतां धर्ममदूषयन् ।।९
भैक्ष चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ।।१०
अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ।।११
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ।
भैक्षचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ।।१२
भैक्ष यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च ।
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं शक्तवोऽपि वा ।।१३

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिना सिद्धिवर्द्धना ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठ भैक्षमिति स्मृतम् ॥१४

वह्नि के धूम रहित तथा व्यङ्गार होने पर तथा सब जनों के भुक्तवान् होने पर मतिमान् योगी को विचरण करना चाहिए किन्तु उन्ही घरों में नित्य नही करे ॥८॥ जिस प्रकार से एव अवमन्यमान होते हैं और जिस तरह परिभूत होते हैं युक्त को उस प्रकार से सत्पुरुषों के धम को दूषित न करते हुए भिक्षा करनी चाहिए ॥९॥ योगी पुरुष को गृहस्थो मे तथा यथा चार गृहो में भिक्षा चरण करना चाहिए । इसके लिये यही वृत्ति परम श्रेष्ठ शास्त्र मे उपदिष्ट की जाती है ॥१०॥ इसके आगे द्विज को जो शालीन गृहस्थ हो उनमें, श्रद्धानो मे दान्तो में, श्रोत्रियो मे और महान् आत्माओ म भिक्षाचरण करना चाहिए ॥११॥ इसके बाद मे आगे फिर जो दुष्ट तथा पतित न हो उनमे एव विवर्णों मे भैक्षचर्या करे किन्तु यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ॥१२॥ भिक्षा मे यवागू, तक्र, पय, यावक फल मूल अथवा विपक्व पिण्याक अथवा जो भी शक्तिपूर्वक दिया गया हो ग्रहण करे ॥१३॥ इतने जो मैंने बताये है वे सब योगियो की सिद्धि के बढाने वाले आहार होते है । उनके सिद्ध हो जाने पर परम श्रेष्ठ भैक्ष कहा गया है ॥१४॥

अबिन्दु य कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते ॥१५
योगिना चैव सर्वेषा श्रेष्ठ चान्द्रायण स्मृतम् ।
एक द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ॥१६
अस्तेय ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ॥१७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्य स्वाध्याय इत्येते नियमा परिकीर्तिता ॥१८
बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्ध कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणा विधीयते ॥१९
प्राप्यते वाचिरा देवाकुशनेव निवारित ।

एव ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मष ।
विमुक्तबन्ध शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०
वेदस्तुत्या सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञ जप्य ज्ञानिनामाहुरग्र्यम् ।
ज्ञानाद्ध्यान सङ्गरागव्यपेत तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धि ॥२१
दम शम सत्यमकल्मषत्व मौन च भूतेष्वखिलेष्वथाऽऽर्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिद तथाऽऽर्जव प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वा ॥२२
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवात्मरतिर्जितेन्द्रिय ।
समाप्नुयुर्योगमिम महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामला ॥२३

जो कुशा के अग्रभाग से मास मास मे जल की बूदो का अशन किया करता है और जो न्याय से भिक्षा किया करता है वह पहिले कहे हुए से भी विशेषता से युक्त होता है ॥१५॥ और योगियो के लिये चान्द्रायण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । एक दो तीन और चार चान्द्रायण व्रतो को शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए ॥१६॥ चोरी न करना ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना लोभ न करना त्याग अहिंसा और परमार्थिता ये व्रत भिक्षुओ के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥१ ॥ क्रोध न करना गुरु की सेवा शौच आहार का हलकापन नित्य वेद का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं ॥१८॥ बीज योनि वाला तथा गुणो के शरीर वाला कर्मों से बँधा हुआ है । अरण्य हाथी की तरह मनुष्यो के लिये विधान किया जाता है ॥१९॥ अङ्कुश से जैसे निवारित होकर शीघ्र ही भाग किया जाता है इसी प्रकार से शुद्ध ज्ञान के द्वारा दग्ध बीज वाला कल्मष हीन विमुक्त बन्धन वाला शान्त यह मुक्त कहा जाता है ॥२ ॥ वेदो से स्तुति से समस्त यज्ञो की क्रिया यज्ञ में जप ज्ञानियो को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । ज्ञान से सङ्ग और राग से विरहित ध्यान कहा गया है । उसके पाने पर शाश्वत पद्य की प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ दम शम सत्य अकल्मषत्व मौन समस्त प्राणियो मे सीधापन तथा आर्जव इसको ज्ञान से विशुद्ध सत्त्व वाले लोग अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं ॥२२॥ समाहित अर्थात् पूर्ण सावधान ब्रह्म मे तत्पर रहने वाले अप्रमादी पवित्र आत्मा मे रति रखने वाले और इन्द्रियों को जीत लेने वाले महान् बुद्धि वाले अनिन्दित एव अमल महर्षिगण इस योग को समाप्त करें ॥२३॥

।। परमाश्रय प्राप्ति ।।

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ।
अत सवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ।।१
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ।
सारभूतमुपासीत ज्ञान यज्ज्ञेयसाधकम् ।।२
इद ज्ञानमिद ज्ञेयमिति यस्तुषितश्चरेत् ।
अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ।।३
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रिय ।
पिधाय बुद्धया द्वाराणि ध्याने ह्येव मनो दधेत् ।।४
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ।
नदीना पुलिने चैव नित्य युक्त सदा भवेत् ।।५
वाग्दण्ड कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रय ।
यस्यते नियता दण्डा स त्रिदण्डी व्यवस्थित ।।६
अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रिय शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ।
इद शरीर प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ।।७

श्रीवासुदेव ने कहा—तीन आश्रमो का त्याग कर परमाश्रम को प्राप्त करे और एक सम्वत्सर के अन्त मे सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति कर लेवे ।। १ ।। श्री गुरुचरण की आज्ञा को प्राप्त करके इस भूमण्डल मे विचरण करे और जो जानने के योग्य एव साधक ज्ञान हो उसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिए क्योकि इस समय परम सार स्वरूप ज्ञान ही अत्यावश्यक होता है ।।२।। यह ज्ञान है और यही जानने के योग्य है—इस प्रकार से तुष्ट होकर विचरण करना चाहिए । सहस्र कल्पो की आयु वाला होकर भी जो जानने के योग्य होता है उसे प्राप्त नही किया करता है ।।३। सब प्रकार के सङ्गो को त्याग देने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, हलका तथा स्वल्प । आहार करने वाला, अपनी इन्द्रियो को काबू में रखने वाला बुद्धि से द्वारो को ढाँककर इस प्रकार से मन को ध्यान मे लगावे ।।४।। जो बिल्कुल शून्य स्थान हो उनमे, अवकाशो मे, गुफाओ मे तथा वन मे एव नदियो के पुलिन मे नित्य युक्त होते हुए सदा रहना चाहिए

॥५॥ वाणी का दण्ड कर्म का दण्ड और मन रूपी दण्ड ये तीन प्रकार के दण्ड कहे गये हैं। जिसके पास ये तीन दण्ड होते हैं वही त्रिदण्डी व्यवस्थित होता है ॥६॥ ध्यान मे रति रखने वाला अवस्थित होकर तथा अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर शुभ एवं अशुभ दोनो प्रकार के कर्मों को त्याग कर इस शरीर को जो त्याग देता है वह शास्त्र की पद्धति से चलने वाला फिर न उत्पन्न होता है और न कभी मृत्यु को ही प्राप्त होता है अर्थात् आवागमन से मुक्त होकर वह मोक्ष प को प्राप्त कर लेता है ॥७॥

॥ प्रायश्चित्त विधि ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ।
प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन या्यकामकृतानि तु ।
अथ कामकृतेप्याहु सूक्ष्मधर्मविदोजना ॥१
पापञ्च त्रिविध प्रोक्त वाङ मन कायसम्भवम् ।
सतत हि दिवा रात्रौ येनेद बध्यते जगत् ॥२
न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीतिपरा श्रुति ।
क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥३
भवेद्धीरोऽप्रमत्तास्तु योगो हि परम बलम् ।
न हि योगात्पर किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ।
तस्माद्योग प्रशसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिण । ४
अविद्या विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परापर धीरा पर गच्छन्ति तत्पदम् ॥५
व्रतानि यानि भिक्षूणा तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकापक्रमे तथा प्रायश्चित्त विधीयत ॥६
उपेत्य तु स्त्रिय कामात प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ।
प्राणायामसमायुक्त कुर्यात्सान्तपन तथा ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—अब इससे आगे यतियो के निश्चय को बतलाते हैं और प्रायश्चित्तों को बतलाया जाता है जो कि तात्त्विक रूप से बिना इच्छा के किये गये हैं। इनके अन तर सूक्ष्म धर्म के ज्ञाता मनुष्य कामकृ ... भी कहते

है ॥ १ ॥ इस लोक मे पाप तीन प्रकार का बतलाया गया है जो कि वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होता है । सर्वदा रात-दिन जिस पाप से यह समस्त ससार बाधित होता रहता है ॥ २ ॥ न तो यहाँ जगत् मे यह और न कर्म ही कोई भी नही रहता है, यह पर–श्रुति है । आयु के विशेष रूप से धारण करने से एक क्षणमात्र ही का प्रयोग करें ॥ ३ ॥ धीर एव अप्रमत्त होना चाहिए । योग सबमे प्रबल बल होता है । इस ससार मे योग से अधिक मनुष्यो का हित साधक अन्य कुछ भी दिखलाई नही देता है । इसी लिये धर्म के तत्त्व के जानने मनीषीगण योग की ही अत्यधिक प्रशसा किया करते हैं ॥ ४ ॥ विद्या से अर्थात् ज्ञान से अविद्या के अन्धकार को पार करके तथा सर्वोत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर पुरुष परापर को देखकर उस परम पद को जाया करते हैं ॥ ५ ॥ जो यतियो के लिये व्रत तथा उपव्रत बताये गये है उनमे एक एक के अपक्रम करने मे प्रायश्चित्त का विधान होता है ॥ ६ ॥ स्वेच्छया स्त्री का उपगमन करे तो प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्राणायाम से समायुक्त होते हुए सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ ७ ॥

ततश्चरति निर्देश कृच्छ्रस्यान्ते समाहित ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ।
न मर्मयुक्त वचन हिनस्तीति मनीषिण ॥८
तथापि च न कर्त्तव्य प्रसङ्गो ह्येष दारुण ।
अहोरात्राधिक कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुति ॥९
हिसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
यदेतद्द्रविण नाम प्राणा ह्येते बहिश्चरा ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥१०
एव कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युत ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ॥११॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन सवत्सरमिति श्रुति ।
तत सवत्सरस्यान्ते भूय प्रक्षीणकल्मष ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रित. ॥१२

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षु पशून् मृगान् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥१३
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥१४

इसके अनन्तर कृच्छ्र के अन्त में निर्देश से चरण करना चाहिए और पुनः समाहित होकर रहना चाहिए । भिक्षु को पुनः अपने आश्रम मे आकर व्रत निरत होते हुए रहना चाहिए । मनीषी लोग कहते हैं कि कभी असंयुक्त वचन के द्वारा हिंसा न करे ॥८॥ लोभी यह दारुण प्रसङ्ग कभी नही करना चाहिए । अहो रात्र से अधिक कोई अधर्म नही है—ऐसी श्रुति है । ९॥ देवताओं तथा मुनियो ने यह सबसे परा हिंसा बताई है । जो यह द्रविण है वह भी प्राण के ही समान है क्योंकि प्राण बहिश्चर ही जाया करते हैं । वह उसके प्राणों का ही हरण किया करता है जो कि उसका धन हरण करता है अर्थात् यहाँ प्राण और धन मे कुछ भी अन्तर नही होता है ॥१ ॥ जो कोई भी ऐसा करता है वह परम दुष्ट होता है आचरण से भ्रष्ट तथा व्रत से च्युत हो जाया करता है । उसे फिर निर्वेद प्राप्त करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥ शास्त्र मे बताई हुई विधि से एक वर्ष पर्यन्त ऐसा करे ऐसी श्रुति है । फिर संवत्सर के अन्त में प्रक्षीण कल्मष वाला होता है । इसके बाद मे फिर निर्वेद को प्राप्त कर भिक्षु को अतन्द्रित होते हुए चरण करना चाहिए ॥१२॥ समस्त प्राणियो की हिंसा न करे और वह कर्म मन तथा वाणी किसी के भी द्वारा नही करनी चाहिए । यदि बिना इच्छा के भी भिक्षु पशु तथा मृग की हिंसा कर तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित करना ही चाहिए और वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत है ॥१३॥ यदि कोई यति किसी स्त्री को देख कर इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण स्कन्दन करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के के लिये सोलह प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए ॥१४॥

दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।
त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१५

रात्रौ स्कन्न शुचि स्नातोशैव तु धारणा ।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विज ॥१६
एकान्न मधु मास वा ह्यामश्राद्ध तथैव च ।
अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥१७
एकैकातिक्रमे तेषा प्रायश्चित्त विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण नत पापात् प्रमुच्यते ॥१८
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाड्मन कायसम्भवम् ।
सद्भि सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥१९
विशुद्धबुद्धि समलोष्टकाञ्चन समस्त भूतेषु चरन् स माहित. ।
स्थान ध्रुव शाश्वतमव्यय सता पर स गत्वा न पुनर्हि जायते २०

दिन मे जो विप्र स्कन्न होता है उसके प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है कि उसे तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१५॥ जो रात्रि मे स्कन्न हो अर्थात् स्खलित हो तो उसे शुद्धि स्नान करके केवल वारह ही प्राणायाम कर लेने चाहिए । इन द्वादश प्राणायामो से वह द्विज निष्पाप हो जाता है ॥१६॥ एक ही अन्न, मधु, मास, आमश्राद्ध, प्रत्यक्ष लवण ये यतियो के अभोज्य वताये गये हैं इनमे किसी भी एक का अतिक्रमण करने मे प्रायश्चित्त का विधान होता है । प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करने से इस पाप से प्रमुक्त होता है ॥१७-१८॥ जो कोई वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होने वाले पाप का व्यतिक्रम करे तो सत्पुरुषो के साथ विशेष रूप से निश्चय करके उसका प्रायश्चित्त जैसा भी वे बतावें करना चाहिए ॥१९॥ यति को सर्वदा विशुद्ध बुद्धि वाला और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक सान दृष्टि से देखते हुए परम समाहित होकर समस्त प्राणियों मे विचरण करना चाहिए । ऐसा यति शाश्वत ध्रुव और अव्यय और सत्पुरुषो का परम स्थान प्राप्त करता है और फिर इस जगत् मे जन्म ग्रहण नही करता है ॥२०॥

॥ अरिष्ट वर्णन ॥

अत ऊर्द्ध्व प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्यु पश्यति चात्मन ॥१

अरुन्धती ध्रुवञ्च व सोम च्छाया महापथम् ।
यो न पश्येत्स नो जीवेन्नर सवत्सरात्परम् ।।२
अरश्मिवन्तमादित्य रश्मिव तञ्च पावकम्
य पश्येन्न च जीवेन मासादेकादशात्परम् ।।३।।
वमे मूत्र करीष वा सुवण रजत तथा ।
प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ।।४
अग्रत पृष्ठतो वापि खण्ड यस्य पदम्भवेत् ।
पामुले कदमे वापि सप्तमासान् स जीवति ।।५
काक कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूद्ध नि ।
क्रव्यादो वा खग कश्चित् षण्मासान्नातिवर्त्तते ।।६
वध्यो वायसपङ्क्तीभि पांशुवर्षेण वा पुन ।
छाया वा विकृता पश्येच्चतु पञ्च स जीवति ।।७

श्रीवायुदेव ने कहा—अब आगे अरिष्टो को बताते है उन्हे जानलो जिस ज्ञान विशेष से अपनी मृत्यु का द खलेता है ।।१।। जो अरुन्धती ध्रुव सोम की छाया और महापथ को नही देखता है वह मनुष्य एक वष से अधिक जीवित नही रहा करता है ।।२।। जो मनुष्य बिना रश्मियो व ले सूय को तथा रश्मियो से युक्त पावक को देखता है वह ग्यारह मास स अधिक जीवित नही रहा करता है ।।३।। जो मनुष्य मूत्र करीष सुवण अथवा रजत का वमन प्रत्यक्ष या स्वप्न मे करता है वह दश मास तक जीवित रहता है ।।४।। रतीले स्थान मे अथवा कीच मे आगे या पीछे स जिसके पद खण्ड हो सात मास पय त जीवन धारण किया करता है ।।५।। काक कपोत अथवा गृध्र जिसके मस्तक पर निलीन हो जावे अथवा क्रव्याद या पक्षी बठ जावे वह मनुष्य छ मास से अधिक जीवित नही रहता है ।।६ । कौओ की पक्तियो स अथवा पाशु की वर्षा स वध्य हो जावे अथवा विकृत छाया को दखे वह मनुष्य चार या पाच मास तक ही जीवित रहता है ।।७।।

अनभ्र विद्युत पश्येद्दक्षिणा दिशमाश्रिताम् ।
उदकेन्द्रधनुर्वापि त्रयो द्वौ वा स जीवति ।।८

अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथात्मानं मासादूर्द्ध्वं न जीवति ॥९
शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धि च यस्य वा ।
मृत्युह्युपस्थितस्तस्य अर्द्धमासं स जीवति ॥१०
सम्भिन्नो मारुतो यस्य गात्रस्थानानि कृन्तति ।
अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥११
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ।
गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१३
छिद्रं वासश्च कृष्णञ्च स्वप्ने यो बिभृयान्नरः ।
भग्नं वा श्रवणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१४

मेघाडम्बर के बिना ही जो दक्षिण दिशा मे आश्रित बिजली को देखता है अथवा उदक मे इन्द्र धनुष को देखा करता है वह तीन या दो मास तक ही जीवित रहा करता है ॥८॥ जलमे अथवा दर्पण मे जो अपने आपको नही देखता है अथवा बिना शिर वाला अपने आपको देखता है वह मनुष्य एक मास से अधिक जीवित नही रहता है ॥९॥ जिसका शरीर शव की गन्ध के समान गन्धवाला हो जावे अथवा वसा (चर्बी) की गन्ध वाला हो जावे उस की मौत उपस्थित ही समझ लेना चाहिए । वह केवल १५ दिन तक ही जीवित रहा करता है ॥१०॥ सम्भिन्न वायु जिसके गात्रस्थानो को कृन्तित किया करता है और जल से स्पर्श हो जाने पर प्रसन्नता का अनुभव नही करता है उस मनुष्य की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेना चाहिए ॥११॥ जो रीछ या बन्दरो से युक्त रथ मे गान करता हुआ दक्षिण दिशा मे स्वप्न मे जावे उसकी मौत उपस्थित ही जान लेनी चाहिए । १२॥ कृष्ण वर्ण के वस्त्रो को धारण करने वाली श्यामा अथवा जाती हुई अङ्गना स्वप्न मे जो दक्षिण दिशा को ले जावे तो वह जीवित नही रहता है ॥१३॥ जो स्वप्न मे छिद्र और कृष्ण वस्त्र को धारण करता है अथवा भग्न श्रवण को देखे उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१४॥

आमस्तकन्तनाथस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ।
दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ॥१५
भस्माङ्गाराश्च केशाश्च नदी शुष्का भुजङ्गमान् ।
पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत तादृश ॥१६ ५
कृष्णश्च विकटश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति ॥१७
सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा ।
क्रोशन्ती सम्मुखाभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः ॥१८
यस्य व स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् ।
जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत् ॥१९
भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा ।
दीपगन्धञ्च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२०
रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥२१

जो नीचे से मस्तक पर्यन्त पङ्क सागर मे निमग्न हो जावे अथवा इस प्रकार का स्वप्न देखे वह तुरन्त ही शेष जीवन वाला हो जाता है ॥१५॥ जो कोई भस्म अङ्गार केश नदी जो सूखी हुई हो और सर्पों को दस रात्रि तक स्वप्न मे बराबर देखा करता है ऐसा आदमी जीवित नही रहा करता है ॥१६॥ कृष्ण वर्ण वाले और विकट आकार वाले तथा उद्यत हथियारो वाले पुरुषो के द्वारा जो स्वप्न मे पाषाणो से ताडित किया जाता हो वह मनुष्य तुरन्त ही मृत्युगत हो जाता है और जीवित नही रहा करता है ॥१७॥ प्रातःकाल मे सूर्य के उदय समय मे गीदड की मादा रोती हुई मुख के सामने से आती है वह मनुष्य गतायु होता है ॥१८॥ जिस पुरुष के केवल स्नान करने ही से हृदय मे बहुत ही अधिक पीडा होती है और दन्तहर्ष होता है वह मनुष्य गतायु होता है अर्थात् यह समझ लेना चाहिए कि अब उसकी आयु समाप्त हो चुकी है ॥१९॥ जो बार-बार दिन मे अथवा रात्रि मे श्वास लिया करता है और दीप गन्ध को नही जानता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही समझ लेनी चाहिए ॥२०॥ जो मनुष्य

रात्रि मे तो देखता हो और दिन मे नक्षत्र मण्डल को देखता हो और दूसरे के नेत्रो मे अपने आप को नहीं देखता है वह जीवित नही रहा करता है ॥२१॥

नेत्रमेक स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यत ।
नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवित ॥२२
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभास च वै मुखम् ।
गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थित ॥२३
मुक्तकेशो हसश्चैव गायन् नृत्यश्च यो नर ।
याम्याभिमुखो गच्छेत्तदन्त तस्य जीवितम् ॥२४
यस्य स्वेदसमुद्भूता श्वेतसर्षपसन्निभा ।
स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थित ॥२५
उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ता स्वप्ने रथेऽशुभा ।
यस्य सोपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गत ॥२६
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूप पर भवेत् ।
घोष न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥२७
श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारश्चास्य न विद्यते ।
न चोत्तिष्ठति य श्वभ्रात्तदन्त तस्य जीवितम् ॥२८

जिसके एक नेत्र मे स्राव होता हो और कान दोनो अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये हो तथा नाक टेढी हो गई हो उस मनुष्य को गतजीवित समझ लेना चाहिये ॥ २२ ॥ जिसकी जिह्वा काली और खरखरी हो गई हो तथा मुखपङ्क की कांति के समान कान्ति वाला हो गया हो एव गण्ड चिपिटक और रक्त हो गये हों उस मनुष्य की उपस्थिति नही समझ लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ खुले हुये केशो वाला, हँसता हुआ, गाता हुआ और नाचता हुआ जो मनुष्य दक्षिण दिशा की ओर मुख किये हुये जाता है उसके जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य के पसीने मे उत्पन्न होने वाली श्वेत सरसो के सदृश श्वेत कण बार बार होते हैं उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिये ॥२५॥ जिस मनुष्य के रथ में ऊँट अथवा गधे जुडे हुये हो और स्वप्न मे दक्षिण की ओर मुख किये हुये जाता हो वह मनुष्य भी जीवित नही रहा करता है ॥२६॥

यहाँ पर ये दो परम अरिष्ट होते हैं और यह रूप भी पर होता है। कानों में ध्वनि न सुनाई देती हो और नेत्र मे ज्योति नहीं देखता हो ॥ २७ ॥ स्वप्न मे जो स्वप्न मे निपतित होवे और इसका द्वार न होवे और जो स्वप्न से नहीं उठता है उसके जीवन का बिल्कुल अन्त समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥

ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्त्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥२९
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं योऽभिहन्यते ।
तं पश्येदथ हन्तारं स हतस्तु न जीवति ॥३
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः ।
स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१
यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः ।
रक्तं कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ ३२
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ।
त्यक्त्वा भयविषादं च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः ॥३३
प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः ।
समस्तस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्ज्जिते ॥३४
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
समकायशिरोग्रीवं धारयेन्नावलोकयेत् ॥३५

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व हो तथा साम्प्रतिष्ठित रक्त एवं फिर सम्परिवर्त्तमान न हो मुख की ऊष्मा (गर्मी) तथा नाभि सुषिरा हो एवं मूत्र अत्यधिक उष्ण हो ऐसा व्यक्ति विषम स्थिति मे ही रहने वाला होता है ॥ २९ ॥ दिन मे अथवा रात्रि मे जो प्रत्यक्ष रूप से हन्यमान होता है उस मारने वाले को देखे जो हत हुआ है वह जीवित नहीं रहता है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य स्वप्न के अन्त मे अग्नि मे प्रवेश किया करता है और स्मृति को उपलब्ध नहीं किया करता है उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपना प्रावरण अर्थात् आच्छादन शुक्ल देखता है तथा स्वप्न मे रक्त और कृष्ण

देखता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ अरिष्ट से सूचित देह मे उस काल के उपस्थित होने पर भय और विषाद का त्याग करके बुद्धिमान मनुष्य को उद्गमन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पूव या उत्तर दिशा मे वाहिर निकलकर पवित्र हो जावे और अ-यन्न स्थावर मगतन देश मे जो कि एकान्त एव जनो मे विवर्जित हो, वहाँ पर उत्तर या पूव की ओर मुख वाला होकर स्वस्थता से बैठ जावे तथा आचमन करे। स्वस्तिक पर उपनिष्ट होते हुये महेश्वर को प्रणाम करे। अपने पूरे शरीर को, ग्रीवा को तथा मस्तक को समस्थिति मे रक्खे। इधर उधर किसी भी ओर नही देखना चाहिये ॥ ३४—३५ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
प्रागुदक् प्रवणे देशे तस्माद्यु जीत योगवित् ॥३६
प्राणे च रमते नित्य चक्षुषो स्पर्शने तथा ।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥३७
कालधर्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्वश ।
द्वादशाध्यात्ममित्येव योगधारणमुच्यते ॥३८
शतमष्ट शत वापि धारणा मूर्ध्नि धारयेत ।
न तस्य धारणायागोद्वायु सर्व प्रवर्त्तते ॥३९
ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहित ।
अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्वक्षरी भवेत् ॥४०

जिस प्रकार निर्वात स्थान मे रक्खा हुआ दीपक बिल्कुल भी उसकी ज्योति नही हिलती है वही उपमा यहाँ पर बताई गई है। प्राक्, उदक्, प्रवण देश मे योग के ज्ञाता व्यक्ति को अभ्यास करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रमण करने वाले प्राण मे, नेत्रो मे, स्पर्शन अर्थात् त्वगिन्द्रिय मे, श्रोत्र मे, मन मे, बुद्धि मे तथा वक्ष स्थल मे धारण करे ॥ ३७ ॥ काल के धर्म को और सब ओर के समूह को जानकर द्वादश अध्यात्म है यही योग का धारण करना कहा जाता है ॥ ३८ ॥ सौ अथवा आठ सौ धारणा को मस्तक मे धारण करना चाहिये। उसकी धारणायागोद्वायु सब प्रवृत्त नही होती है ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर समाहित होकर ओङ्कार से देह को आपूरित करना चाहिये। इसके अनन्तर ओङ्कारमय योगी क्षरित न होते हुये अक्षरी हो जाता हैं ॥ ४० ॥

।। ओङ्कार प्राप्ति लक्षण ।।

अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि ओङ्कार प्राप्ति लक्षणम् ।
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्य जनश्चात्र सस्वरम् ।।१
प्रथमा वद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ।
तृतीया निगु णी विद्या मात्रामक्षरगामिनीम् ।।२
ग धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ।।३
तथा प्रयुक्तमोङ्कार प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ।
तयोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ।।४
प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तन वेद्धव्य शरवत्तन्मया भवेत् ।।५
ओमित्येकाक्षर ब्रह्म गुहाया निहित पदम् ।
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नय ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋकसामानि यजूषि च ।।६
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेया परमार्थत ।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यता व्रजेत् ।।७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बतलाते हैं। यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमे व्यञ्जन जो होता है वह युक्त होता है ।। १ ।। प्रथमा मात्रा वद्युती होती है द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया मात्रा निर्गुणी होती है। इस प्रकार से अक्षरो मे गमन करने वाली मात्रा को जाननी चाहिये ।। २ ।। गान्धार नामक स्वर से समुत्पन्न जो मात्रा है वह गन्धर्वी इस नाम से कही जाती है। पिपीलिका के समान स्पर्श करने वाली मूर्द्धा मे प्रयुक्त की हुई दिखाई देती है ।। ३ ।। उस प्रकार से प्रयोग मे लाया हुआ ओङ्कार मूर्द्धा मे प्रतिनिर्वात होता है। इस तरह यह ओङ्कार से परिपूर्ण योगी अक्षर मे अक्षरी हो जाता है ।। ४ ।। प्रणव धनुष है आत्मा शर है और उसका लक्ष्य स्थान ब्रह्म होता है। यदि अप्रमत्त होते हुये वध्य हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है ।। ५ ।। ओम् यह

एकाक्षर वाला ब्रह्म पद गुहा मे निहित है। 'ओम्'— यह तीन वेद हैं—तीन लोक हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनो ऋक् साम और यजु विष्णु के क्रम हैं ॥ ६ ॥ यहाँ चार मात्राऐ हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लेनी चाहिये। उनमे युक्त जो योगी है वह सालोक्यता को जाता है ॥ ७ ॥

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकार स्वरित स्मृत ।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति सगित ॥८
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते ।
सव्य जनो मकारश्च स्वर्लोकश्च विधीयते ॥९
ओङ्कारस्तु त्रयो लोका शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् ।
भुवनान्तश्च सत्सर्व ब्राह्म तत्पदमुच्यते ॥१०
मात्रापद रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिव पदम् ।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पद समुपासते ॥११
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्र हि तदक्षरम् ।
उपास्य हि प्रयत्नेन शाश्वत पदमिच्छता ॥१२
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम् ।
तत प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ॥१३
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वश ।
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि ॥१४

इस मे अकार को अक्षर समझना चाहिये और उकार स्वरित कहा गया है। मकार प्लुत जानना चाहिये। इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला सक्षिप्त होता है ॥ ८ ॥ इसमे जो अकार है वह भूलोक है और उकार भुवर्लोक कहा जाता है। व्यञ्जन के साथ मकार जो है वह स्वर्लोक होता है ॥ ९ ॥ ओङ्कार जो है वह तीन लोक हैं उसका शिर त्रिविष्टप होता है। वह सब भुवनान्त होता है। ब्राह्म उसका पद कहा जाता है ॥ १० ॥ मात्रा पद रुद्र लोक है और जो अमात्र है वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके पद की समुपासना करते हैं ॥ ११ ॥ इससे ध्यान मे रति रखने वाला होवे और नित्य मात्रारहित उस अक्षर की शाश्वत पद की इच्छा रखने वाले के द्वारा

प्रयत्न के साथ उपासना करनी चाहिये ॥ १२ ॥ प्रथमा जो मात्रा है वह ह्रस्व होती है इसके पश्चात् दीर्घा मात्रा होती है और उसके आगे फिर तृतीया जो मात्रा होती है वह प्लुता होती है अर्थात् प्लुत वाली होती है ॥ १३ ॥ ये यथा विधि अनुपूर्वी के क्रम से मात्राऐं जान लेनी चाहिये। जितनी ही हो सक उतनी ही धारण की जाती हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि ध्यायन्नात्मनि च सदा ।
अत्राष्टमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥१५
मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शत समा ।
न स तत् प्राप्नुयात पुण्य मात्रया यदवाप्नुयात ॥१६
अविन्दु च कुशाग्र ण मासे मासे पिवेन्नर ।
संवत्सरशत पूर्ण मात्रया तदवाप्नुयात ॥१७
इष्टापूर्त्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम् ।
अभक्षणे च मासस्य मात्रया तदवाप्नुयात ॥१८
स्वाम्यर्थे युध्यमानाना शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।
यद्भवेत्तत फल दृष्ट मात्रया तदवाप्नुयात ॥१९
न तथा तपसोग्र ण न यज्ञैर्भूरिदक्षिण ।
यत फल प्राप्नुयात् सम्यग मात्रया तदवाप्नयात ॥२
तत्र वै योऽर्द्ध मात्रो य प्लतो नाभोपदिश्यते ।
एषा एव भवेत कार्या गृहस्थानान्तु योगिनाम् ॥२१
एषा चव विशेषेण ऐश्वर्य समलक्षणा ।
योगिनान्तु विशेषेण एश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे ।
अणिमाद्यति विज्ञ या तस्माद् जीत ता द्विज ॥२२

जो सदा आत्मा मे इन्द्रियो को मन को और बुद्धि को ध्यान करते हुए यदि यहाँ पर आठ मात्रा वाले का भी श्रवण करे तो फल को प्राप्त किया करता है ॥ १५ ॥ मास मास मे अर्थात प्रत्येक मास मे जो सौ वर्ष तक अश्वमेधों का यजन किया करता है वह भी उस पुण्य की प्राप्ति नहीं करता है जो मात्रा के द्वारा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो कुशा के अग्रभाग से जल की बिन्दुओं

को मास-मास मे पीता है और बराबर सौ वर्ष तक पीता रहता है उसका जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त्त-यज्ञ का सत्यवाक्य मे जो फल होता है तथा मांस के न खाने मे जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा हो जाता है ॥ १८ ॥ अपने स्वामी के लिये युद्ध करते हुए शूरवीरो का जो कि पुन. जगत् मे अनिवर्त्ती होते हैं उनका जो पुण्य-फल होता है वही मात्रा से प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥ अत्यन्त उग्र तप के द्वारा और भूरि दक्षिणा वाले यज्ञो के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वही फल भली भाँति मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करते हैं ॥ २० ॥ वहाँ पर जो आधी मात्रा वाला प्लुत इस नाम से कहा जाता है यही गृहस्थ योगियो को करनी चाहिये ॥ २१ ॥ यही मात्रा विशेष रूप से ऐश्वय के समान लक्षण वाली होती है और आठ लक्षण वाले ऐश्वर्य मे योगियो को विशेष रूप से होती है। अणि-मादि ये जाननी चाहिये। इससे द्विज को उसका युञ्जन करना चाहिये ॥२२॥

एवं हि योगी सयुक्त शुचिर्दान्तो जितेन्द्रिय ।
आत्मान विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विज ॥२३
ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तक ॥२४
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूत स तु जायते ।
योगी सङ्क्रमण कृत्वा याति वै शाश्वत पदम् ॥२५
अपि चात्र चतुर्हस्ता ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ।
प्रकृति विश्वरूपाख्या दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६

अजामेता लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी प्रजा सृजमाना स्वरूपाम् ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य ।
अष्टाक्षरा षोडशपाणिपादा चतुर्मुखी त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ।
आद्यामजा विश्वसृजा स्वरूपा ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्व व्रजन्ति ।
ये ब्राह्मणा प्रणव वेदयन्ति न ते पुन ससरन्तीह भूय ॥२७
इत्येतदक्षर ब्रह्म परमोङ्कारसज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुन ॥२८

समारजक्रमुत्सृज्य मुक्तवन्धनवन्धन ।
अचल निर्गुण स्थान शिव प्राप्नोत्यसशय ।
इत्येतद्ध मया प्रोक्तमोङ्कारप्रामि लक्षणम् ॥२९

जो इस प्रकार से शुचि दमनशील जितेन्द्रिय सयुक्त योगी आत्मा का लाभ किया करता है वह ब्राह्मण सभी कुछ को प्राप्त कर लेता है ॥ २३ ॥ ध्यान मे चिन्तन करने वाला ब्राह्मण योग के ज्ञान से ऋक यजु और सामवेद तथा उपनिषदो को प्राप्त कर लेता है अर्थात् एक मात्र योग के द्वारा सबका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥ २४ ॥ समस्त भूतो का लय होकर वह बिना भूतों वाला अभूत हो जाता है। योगी सक्रमण करके शाश्वत पद की प्राप्ति कर लेता है। ॥ २५ ॥ और यहाँ पर भी चार हाथ और चार मुख वाली विश्व रूप नाम से युक्त प्रकृति को दिव्य चक्षु के द्वारा देखता है ॥ २६ ॥ लोहित कृष्ण और शुक्ल वर्ण वाली इस अजा को जो बहुत सी प्रजा का सृजन करने वाली अपने रूप मे स्थित है एक अज सेवन करता हुआ अनुशयन करता है और दूसरा अज भुक्त भोगो वाली इसको त्याग देता है। आठ अक्षर वाली सोलह हाथ और पदो वाली चार मुख वाली तीन शिखा से युक्त और एक श्रृंग वाली आद्या अजा और विश्व के सृजन करने वाले स्वरूप वाली को पण्डितगण जान कर अमृतत्व को प्राप्त किया करते हैं। जो ब्राह्मण प्रणव का वेदन किया करते हैं वे फिर यहाँ दुबारा ससार मे नही आया करते हैं ॥ २७ ॥ यही ओङ्कार सज्ञा वाला अक्षर ब्रह्म है जो परम माना जाता है। जो इसे भली भांति जानता है तथा इसका फिर ध्यान किया करता है वह इस ससार के चक्र का त्यागकर बन्धनो के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है और अचल तथा निर्गुण शिव स्थान को निस्सन्देह प्राप्त करता है। यह इतना मैंने ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बता दिया है ॥ २९ ॥

नमो लोकेश्वराय सङ्कल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्धो हितं यद्ब्रह्मणे नम । सवत्र स्थानिने निर्गुणाय सम्भक्त्योगीश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिर्विशुद्धमिव महामुपतिष्ठत्यविन पवित्राणां पवित्र पवित्रेण परिपूरितेन पवित्रेण ह्रस्वन्दीर्घप्लुतमिति

ङ्कारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासीत अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तनितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवाना हृदय विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्य चास्ति ओङ्कारो-विश्वविश्वा वै यज्ञ यज्ञो वै वेद वेदो वै नमस्कार नमस्कारो रुद्र नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नम । इति सिद्धिप्रत्युपस्थान सायप्रात-र्मध्याह्ने नम इति। सर्वकामफलोरुद्र । यथा वृन्तात् फल पक्व पवनेन समीरितम्। नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पाप प्रणश्यति ॥३०

सङ्कल्प कल्प ग्रहण स्वरूप लोक के स्वामी के लिये नमस्कार है। महान् को उपतिष्ठमान, वह जो हमारा हित है, ऐसे ब्रह्म के लिये नमस्कार है। सब जगह स्थान वाले, निर्गुण और सम्भक्त योगीश्वर के लिये नमस्कार है। जल से कमल पत्र की भाँति विशुद्ध ब्रह्म का उपस्थान कहे। परिपूरित पवित्रता से पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है और ह्रस्वदीर्घ प्लुत स्वरूप वाला उस ओङ्कार को जो शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध से हीन है उसकी उपासना करनी चाहिये। अविद्या के ईशान के लिये उसका विश्वरूप नहीं है ऐसे अविद्येशान के लिये नमस्कार है और योगीश्वर के लिये नमस्कार है जिसने द्यौ को उग्र किया, पृथिवी को दृढ बनाया जिसने स्व को विस्तृत किया, जिसने नाक (स्वर्ग) बनाया और इस अन्तरिक्ष को किया वरीयान, देवो का हृदय विश्व रूप उसका प्राणापानौपम्य नही है। ओङ्कार विश्व-विश्वा है, यज्ञ यज्ञ है, वेद वेद है और नमस्कार नमस्कार है ऐसे रुद्र के लिये नमस्कार है तथा योगेश्वराधिपति के लिये नमस्कार है। यह सिद्धि का प्रत्युप स्थान है। साय, प्रात और मध्याह्न के लिये नमस्कार है। समस्त कामो का फल रुद्र है। जिस प्रकार वृन्त से पका हुआ फल वायु के द्वारा समीरित होता है वैसे ही नमस्कार से अर्थात् रुद्र को किये हुये नमन से पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ० ॥

यथा रुद्रनमस्कार सर्वधर्मफलो ध्रुव ।
अन्यदेवनमस्कारो न तत् फलमवाप्नुयात् ॥३१
तस्मात् त्रिषवण योगी उपासीत महेश्वरम् ।
दशविस्तारक ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ॥३२

ओङ्कार सर्वत काले सव विहितवान् प्रभु ।
तेन तेन नु विष्णुत्व नमस्कार महायशा ॥३३
नमस्कारस्तथा चव प्रणवस्तुवत प्रभुम् ।
प्रणव स्तुवत यज्ञो यश सस्तुवते नम ।
नमस्तुवतिव रुद्रस्तस्माद्रुद्रपद शिवम् ॥३४
इत्येतानि रहस्यानि यतीना वै यथाक्रमम् ।
यस्तु वेदयते ध्यान स पर प्राप्नुयात्पदम् ॥३५

जिस तरह शङ्कर के लिये किया हुआ नमस्कार समस्त धर्मों के फल वाला होता है और ध्रुव होता है वैसे अन्य देव के लिये किया हुआ नमस्कार वह फल प्राप्त नही कराता है ॥ ३१ ॥ इसलिये योगी का कर्त्तव्य है कि वह तीनो कालो मे महेश्वर की उपासना करे। ब्रह्म दश विस्तारक होता है और वह ब्रह्म विस्तार है ॥ ३२ ॥ प्रभु ने सब काल मे सबको ओङ्कार बनाया था। उस उस से विष्णुत्व होता है। नमस्कार महान् यश वाला है ॥ ३३ ॥ नमस्कार प्रणव के लिये है प्रणव प्रभु का स्तवन करता है। यज्ञ प्रणव का स्तवन करता है उस सस्तवन करने वाले के लिये नमस्कार है। नम —यह रुद्र का स्तवन करता है इसलिये रुद्र पद ही शिव है ॥ ३४ ॥ यतियो के ये रहस्य हैं। इनको जो यथाक्रम जानता है और ध्यान करता है वह परम पद को प्राप्त किया करता है ॥ ३५ ॥

॥ कल्प निरूपण ॥

ऋषीणामग्निकल्पानां नैमिषारण्यवासिनाम् ।
ऋषि श्रुतिधर प्राज्ञ सावर्णिर्नाम नामत ॥१
तथा सोप्यग्रतो भूत्वा वायु वाक्यविशारद ।
सातत्य तत्र कुर्वन्त प्रियार्थे सत्रयाजिनाम् ।
विनयेनोपसगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ॥२
विभो पुराणसबद्धा कथा व वेदसंमिताम् ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक प्रसादात्सर्वदर्शिन ॥३

हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ।
कथं तत्तेजसं देवं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥४
कथं च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसम्भवः ।
रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ॥५
कथं च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं प्रीतिरनुत्तमा ।
सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणाः ॥६
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संशयः ।
भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ॥७

श्री सूत जी ने कहा—नैमिषारण्य में निवास करने वाले अग्नि के समान ऋषियों में से श्रुति को धारण करने वाला परम पण्डित सावर्णि नाम वाले ऋषि थे ॥ १ ॥ वचन बोलने में महापण्डित उन सब में अग्रणी होकर सबका यजन करने वालों के प्रिय के लिये सर्वदा वहीं रहने वाले वायु के समीप विनयपूर्वक उपस्थित होकर उस महान् द्युति वाले वायु से पूछा ॥ २ ॥ सावर्णि ने कहा—हे विभो ! पुराणों से सम्बद्ध तथा वेदों से सम्मित कथा को सर्वदर्शी आप से सुनने की हम इच्छा करते हैं आपके प्रसाद से उसे भली भाँति श्रवण करेंगे ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भ भगवान् ने ललाट से नीललोहित अपने पुत्र उस तेजस्वरूप देव को कैसे प्राप्त किया था ? ॥ ४ ॥ कमल से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने आत्मज शर्व का फिर रुद्रत्व कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ ५ ॥ और भगवान् विष्णु की रुद्र के साथ किस तरह सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ? समस्त विष्णुमय देव हैं और सम्पूर्ण गण विष्णुमय हैं ॥ ६ ॥ विष्णु के समान कोई भी गति नहीं होती है । इस प्रकार से समस्त देवता गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । वह हरि नित्य ही भव को क्यों प्रणाम किया करते हैं ॥ ७ ॥

एवमुक्तं तु भगवान् वायुः सावर्णिमब्रवीत् ।
अहो साधु त्वया साधो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ॥८
भवस्य पुत्रमन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा ।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ॥९

द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्विष्णोश्चव भवस्य च ।
यत्रापि कुरुत नित्य प्रणाम शकरस्य च ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च शृणुत ब्रुवतो मम ॥१०
मन्वन्तरस्य सहारे पश्चिमस्य महात्मन ।
आसीत्तु सप्तम कल्प पद्मो नाम द्विजोत्तम ।
वाराह साम्प्रतस्तथा तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११
कियता चैव कालेन कल्प सम्भवत कथम् ।
कि च प्रमाण कल्पस्य तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१२
मन्वन्तराणा सप्ताना कालसख्या यथाक्रमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१३
कोटीनां द्व सहस्र व अष्टौ कोटिशतानि च ।
द्विषष्टिश्च तथा कोटयो नियुतानि च सप्तति ।
कल्पार्द्धस्य तु सख्यायामेतत समुदाहृतम् ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—सावर्णि ऋषि के इस प्रकार से कहने पर भगवान् वायुदेव ने कहा—हे साधो ! आपने यह बहुत ही अच्छा अत्युत्तम प्रश्न किया है ॥ ८ ॥ *जिस तरह महादेव का ब्रह्मा से पुत्र का जन्म लेना हुआ और ब्रह्मा* का पद्म योनित्व जैसे हुआ तथा शकर का रुद्रत्व जिस प्रकार स हुआ ॥ ९ ॥ विष्णु और शिव इन दोनो की पारस्परिक प्रीति जिस तरह से हुई थी और जो नित्य ही विष्णु शकर को प्रणाम किया करते हैं इन सब बातो को मैं तुम्हे विस्तार के साथ बताता हूँ और आनुपूर्वी के सहित बताता हूँ आप लोग मुझसे सब श्रवण कर ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम ! महात्मा पश्चिम मन्वन्तर के सहार हो जाने पर पद्म नाम वाला सप्तम कल्प था । उनमे इस समय वाराह कल्प है उसके विस्तार को बताता हूँ ॥ ११ ॥ सावर्णि ने कहा—कल्प कितने समय मे होता है और वह कैसे होता है ? कल्प का क्या प्रमाण होता है यह पूछने वाले हम को बतलाइये ॥ १२ ॥ वायु ने कहा—सप्त मन्वन्तरो की काल की सख्या क्रम के अनुसार बतलाऊँगा । सक्षेप मे बतलाते हुए मुझसे सब जान लो ॥१३॥ दो सहस्र आठ सौ करोड़ तथा सत्तर नियुत बासठ करोड़ कल्प के आधे भाग की यह सख्या कह दी गई है ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदो वर्षाग्रं लब्धमादिशेत् ।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्तति ।
द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ॥१५
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम् ।
एष कल्पस्तु विज्ञेय कल्पार्द्धं द्विगुणीकृत ॥१६
अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम् ।
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ॥१७
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ।
चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणत ॥१८
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमा ।
एतत् कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रन्तु प्रमाणत ॥१९
एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तितं ।
प्रणवान्ताश्च ये देवा साध्या देवगणाश्च ये ।
विश्वे देवाश्च ये नित्या कल्पं जीवन्ति ते गणा ॥२०
अयं यो वर्त्तते कल्पो वाराह स तु कीर्त्यते ।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्द्दश ॥२१

पूर्व मे उक्त गुणच्छेद लब्ध वर्ष का अग्र बताना चाहिए । एक सौ अठहत्तर करोड दो सौ हजार नब्बे नियुत होता है ॥ १५ ॥ मानुष प्रमाण से जितना वैवस्वतान्तर है कल्प के अर्ध भाग को दुगुना करने पर वह कल्प जान लेना चाहिए ॥१६॥ अनागत सातों के काल की सख्या मे प्रमाण भी यथाक्रम यही होता है, यह ऐश्वर मत है ॥ १७ ॥ अट्ठावन नियुत तथा अस्सी सौ और चौरासी अन्य प्रयुत प्रमाण से होते हैं ॥ १८ ॥ सप्तर्षिगण—मनु और इन्द्रादि देवगण यह काल का वर्षाग्र प्रमाण जान लेना चाहिए ॥ १९ ॥ इसी प्रकार से उनका मन्वन्तर मानुषान्त कहा गया है । प्रणवान्त जो देवता है, साध्य और जो देवगण हैं और जो नित्य विश्वेदेवा हैं वे सब गण एक कल्प पर्यन्त जीवित रहा करते हैं । यह जो कल्प वरत रहा है वह वाराह इस नाम से कहा जाता है । जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु होते है ॥ २०-२१ ॥

यस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्तितः ।
यस्माच्च कारणाद् वा वराह इति कीर्त्यते ॥२२
को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ।
वराहः कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२३
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ।
वाराहश्च यथा कल्पः कल्पत्वं कल्पना च या ॥२४
कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२५
भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ।
आलब्ध्वा भगवानत्र ह्यानन्दः साम्प्रतं स्वयम् ॥२६
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसम्भवम् ।
द्वितीयस्तु भवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७
भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पञ्चमो रम्भ एव च ।
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ॥२८

ऋषियों ने कहा—यह नाम से वाराह कल्प क्यों कहा गया है और किस कारण देव वाराह इस नाम से पुकारे जाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वाराह कौन थे ? किससे उत्पन्न हुए और क्या उनका स्वरूप था ? वाराह उत्पन्न कैसे हुए यह सभी हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥ २३ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—वाराह जिस तरह से उत्पन्न हुए और जिस अर्थ में कल्पित हुए तथा जिस प्रकार से यह वाराह कल्प हुआ और जो कल्पत्व और कल्पना है ॥ २४ ॥ दो कल्पों में जो अन्तर है उसका और इसका जो कल्पित है वह सभी जैसा हम ने देखा है और सुना है कहेंगे ॥ २५ ॥ पहिले लोक के आदि में भव यह प्रथम कल्प प्रसिद्ध हुआ था । यहाँ भगवान् स्वयं साम्प्रत आनन्द जानने चाहिए ॥ २६ ॥ यह दिव्य ब्रह्म स्थान है अथवा दिव्य सम्भव है । दूसरा भुव कल्प है तीसरा तप कल्प कहा जाता है ॥ २७ ॥ चतुर्थ भव-कल्प जानना चाहिए और पञ्चम रम्भ-कल्प होता है । छठा ऋतु कल्प होता है और सातवाँ क्रतु इस नाम से कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवाहन ।
सावित्रो दशम कल्पो भुवस्त्वेकादश स्मृत ॥२९
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदश ।
चतुर्दशस्तु गन्धर्वो गान्धर्वो यत्र वै स्वर ।
उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिता ॥३०
ऋषभस्तु तत कल्पो ज्ञेय पचदशो द्विजा ।
ऋषयो यत्र सम्भूता स्वरो लोकमनोहर ॥३१
षड्जस्तु षोडश कल्प षड जना यत्र चर्षय ।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ॥३२
शरद्धेमन्त इत्येते मनसा ब्रह्मण सुता ।
उत्पन्ना षड्ज ससिद्धा पुत्रा कल्पे तु षोडशे ॥३३
यस्माज्जातैश्च तै षड्भि सद्यो जातो महेश्वर ।
तस्मात् समुत्थित षड्ज स्वरस्तूदधिसन्निभ ॥३४
तत सप्तदश कल्पो मार्जालीय इति स्मृत ।
मार्ज्जालीय तु तत् कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् ॥३५

आठवाँ वह्नि नाम वाला कल्प होता है और नवम कल्प हव्य वाहन नाम वाला होता है। सावित्र इस नाम वाला दशम कल्प होता है और भुव इस नाम से एकादश कल्प प्रसिद्ध होता है ॥ २९ ॥ उशिक बारहवाँ और कुशिक तेरहवाँ कल्प होता है । चौदहवाँ कल्प गन्धर्व होता है जहाँ गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुआ जिसके नाद से यहाँ गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। इसके पश्चात् पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ नाम वाला हुआ। जहाँ द्विज ऋषिवर्ग उत्पन्न हुआ और लोक मनोहर स्वर उत्पन्न हुआ था ॥ ३०-३१ ॥ षड्ज सोलहवाँ कल्प है जहाँ छै जन ऋषि हैं। शिशिर और वसन्त, निदाघ और वर्षा, शरद और हेमन्त ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र उत्पन्न हुए और सोलहवें कल्प में षड्ज से ससिद्ध हुए थे ॥ ३२-३३ ॥ जिससे उत्पन्न उन छै से तुरन्त ही महेश्वर उत्पन्न हुए उनसे उदधि के तुल्य षड्ज स्वर उठ खड़ा हुआ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय इस नाम से कहा गया है। मार्जालीय वह कर्म है जिससे ब्राह्म की कल्पना की गई है ॥ ३५ ॥

ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यत ।
यस्मिस्तु मध्यमो नाम स्वरो धवतपूजित ।
उत्पन्न सर्वभूतेषु मध्यमो व स्वयमुव ॥३६
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वराजक स्मृत ।
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वं ब्रह्मण सुत ॥३७
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिक ।
प्रजापतिमहातेजा बभूव त्रिदशेश्वर ॥ ८
अकामयत गायत्री यजमान प्रजापतिम् ।
तस्माज्जज्ञ स्वर स्निग्ध पुत्रस्तस्य दधीचिन ॥३६
ततो विशतिम कल्पो निषाद परिकीर्त्तित ।
प्रजापतिस्तु त दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभव तदा ।
विरराम प्रजा स्रष्ट निषादस्तु तपाऽन्पत् ॥४०
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रिय ।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामह ॥४१
ऊर्द्ध बाहु तपोग्लान दु खित क्षुत्पिपासितम् ।
निषीदे यन्नीदेन पुत्र शान्त पितामह ।
तस्मान्निषाद सम्भूत स्वरस्तु म निषादवान् ॥४२

इसके पश्चात् मध्यम इस नाम वाला अठारहवाँ कल्प कहा जाता है। जिसमे धैवत पूजित मध्यम इस नाम वाला स्वर उत्पन्न हुआ। समस्त प्राणियों मे मध्यम स्वयम्भुव है॥ ३६॥ इसके अनन्तर उन्नीसवां कल्प वराजक कहा गया है। जहाँ भगवान् वराज ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए हैं॥ ३७॥ उनके पुत्र महात्मा दधीचि परम धार्मिक हुए। त्रिदशेश्वर महान् तेज वाले प्रजापति हुए थे॥ ३८॥ गायत्री ने यजमान प्रजापति की कामना की थी। उससे उस दधीचि का पुत्र स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ॥ ३९॥ इसके अनन्तर बीसवां कल्प निषाद इस नाम से परिकीर्तित हुआ है। उस समय प्रजापति ने स्वयम्भू से उत्पन्न उसे देखकर प्रजा के सृजन के कार्य से विराम ले लिया था। इसके अनन्तर निषाद ने तपश्चर्या आरम्भ करदी॥ ४ ॥ निषाद ~ सहस्र

दिव्य वर्ष तक निराहार और जितेन्द्रिय होकर तपश्चर्या की थी, तब लोक के पितामह महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उससे कहा ॥४१॥ यह निषाद उस समय में ऊर्ध्व बाहुओं वाला—तप में अत्यन्त म्लान—श्रम दुःखित और भूख-प्यास से युक्त होकर तप कर रहा था। तब पितामह ने इस शान्त अपने पुत्र से कहा—'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ। इससे निषाद वाला वह निषाद स्वर उत्पन्न हुआ था ॥४२॥

एकविंशतिम कल्पो विज्ञेय पञ्चमो द्विजा ।
प्राणोऽपान समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४३
ब्रह्मणो मा नसा पुत्रा पञ्चैते ब्रह्मण समा ।
तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वर ॥४४
यस्मात्परिगतैर्गीत पञ्चभिस्तैर्महात्मभि ।
स्वरस्तु पञ्चम स्निग्ध तस्मात्कल्पस्तु पञ्चम ॥४५
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहन ।
यत्र विष्णुमहाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम् ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु अवहन् कृत्तिवाससम् ॥४६
तस्य निश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ।
निर्जगाम महाकाय कालो लोकप्रकाशन ।
यस्त्वय पठ्यते विप्रैर्विष्णुर्वै कश्यपात्मज ॥४७
त्रयोविंशतिम कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा ।
प्रजापतिसुत श्रीमान् चितिश्च मिथुनश्च तौ ॥४८
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता ।
तस्मात्तु चिन्तक सो वै कल्प प्रोक्त स्वयम्भुवा ॥४९

हे द्विजगणो ! इक्कीसवाँ कल्प पञ्चम जानना चाहिए। प्राण—अपान—उदान—समान और व्यान ये ब्रह्माजी के मानस पाँच पुत्र जो कि ब्रह्मा के ही तुल्य ये उत्पन्न हुए। उनके द्वारा युक्त अर्थवादियों ने वाणियों के द्वारा महेश्वर की उपासना की थी ॥४३। ४४॥ जिस कारण से महान् आत्मा वाले उन परिगत पाँच गीतों से गाये गये पञ्चम स्वर बहुत ही स्निग्ध हुए इसी कारण से

पञ्चम कल्प हुआ ।।४५।। बाईसवां कल्प तो मेघवाहन इस नाम वाला जानना चाहिए जहाँ पर महाबाहु विष्णु भगवान् ने मेघ होकर कृत्ति वस्त्र वाले महेश्वर को एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त वहन किया था ।।४६।। भार से आक्रान्त निःश्वास लेते हुए उसके मुख से महान् काया वाला लोक को प्रकाश देने वाला काल निकला था जो कि यह विष्णु ब्राह्मणों के द्वारा कश्यप का पुत्र पढ़ा जाता है ।।४७।। तेईसवाँ कल्प चिन्तक जानना चाहिए। प्रजापति का पुत्र श्रीमान् चित्ति है और वे दोनों का जोड़ा है।४८।। ब्रह्म का ध्यान करते हुए ही चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी यही कारण है जिससे स्वयम्भू के द्वारा यह चिन्तक कल्प कहा गया है।४९।।

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूति कल्प उच्यते।
आकूतिश्च तथा देवी मिथुन सम्बभव ह ।।५
प्रजा स्रष्टु तथाकूति यस्मादाह प्रजापति ।
तस्मात स पुरुषोश य आकूति कल्पसज्ञित ।।५१
पञ्चविंशतिम कल्पो विज्ञाति परिकीर्त्तित ।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुन सम्प्रसूयत ।।५२
ध्यायत पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसज्ञितम्।
विज्ञात व समासेन विज्ञानिस्तु तत स्मृत ।।५३
षड विंशस्तु तत कल्पो मन इत्यभिधीयते।
देवी च शाङ्करी नाम मिथुन सम्प्रसूयते ।।५४
प्रजा वै चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य व तदा।
यस्मात् प्रजासम्भवनादुत्पन्नस्तु स्वयम्भुवा।
तस्मात् प्रजासम्भवनाद्भावनासम्भव स्मृत ।।५५
सप्तविंशतिम कल्पो भावो वै कल्पसज्ञित ।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुन समपद्यत ।।५६

चौबीसवाँ कल्प आकूति कल्प कहा जाता है। आकूति और देवी दोनों का मिथुन हुआ था ।।५०।। क्योंकि प्रजापति ने आकूति से प्रजा के सृजन करने के लिए कहा था इसी से यह पुरुष आकूति कहा गया और उनके नाम

से कल्प जानना चाहिए ॥५१॥ पच्चीसवाँ कल्प विज्ञाति नाम से कहा गया है। विज्ञाति और देवी का मिथुन सम्प्रसूत होता है ॥५२॥ मन में अध्यात्म संज्ञा वाले का ध्यान करते हुए पुत्र की कामना के होने से मनोप माना गया अतएव विज्ञात होने से वह विज्ञाति कहा गया है ॥५३॥ छब्बीसवाँ कल्प मन इस नाम से कहा जाता है और शाङ्करी देवी से यह मिथुन सम्प्रसूत किया जाता है ॥५४॥ उस समय प्रजा की चिन्ता करते हुए प्रजा की सृष्टि की कामना वाले के प्रजा के सम्भवन होने से स्वयम्भू के द्वारा उत्पन्न है इसलिये प्रजा के सम्भवन से भावना सम्भव कहा गया है ॥५५॥ सत्ताईसवाँ कल्प का नाम भाव कहा हुआ है तथा पौर्णमासी देवी से यह मिथुन उत्पन्न हुआ ॥५६॥

प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् ॥५७
अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृत ।
भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते स महावपु ॥५८
ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ।
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यन् सूर्यमण्डलम् ॥५९
यस्माददृश्यो भूताना ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
दृष्टस्तु भगवान् देव सूर्य्य सम्पूर्णमण्डल ॥६०
सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिता ।
यस्मात् कल्पो ह्यय दृष्टस्तस्मात्त दशमुच्यते ॥६१
यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
पुरा वै भगवान् सोम पौर्णमासी तत स्मृता ॥६२
तस्मात्तु पर्वदर्शो वै पौर्णमासश्च योगिभि ।
उभयो पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ॥६३

प्रजा के सृजन की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा परमात्मा ईश्वर का ध्यान करते हुए रश्मि जाल से समावृत अग्नि मण्डलीभूत होकर भू और दिव दोनों को विष्टब्ध करके महान् वपु वाला वह दीप्यमान होता है ॥५७-५८॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष के अन्त मे सम्पूर्ण ज्योति मण्डल मे आविष्ट होने

वाली के साथ उत्पन्न होने वाले सूर्य मण्डल को देखा ॥५६॥ परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा अदृश्य थे, फिर भूतों को भगवान् सम्पूर्ण मण्डल वाले सूर्यदेव दृष्ट हुए अर्थात् पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे ॥६ । समस्त योग और मन्त्र उस मण्डल के साथ ही उत्थित हो गये थे । क्योंकि यह म र देखा गया है इसी से इसका नाम दर्शम्—यह कहा जाता है ॥६१॥ क्योंकि पहिले परमेष्ठी ब्रह्मा के मन मे भगवान् सोम थे इसके पश्चात् पौर्णमासी कही गई है ॥६२॥ इससे पक्षद्वय मे योगियो के द्वारा अपने हित की कामना से दोनो पक्षो मे पौर्णमास ज्येष्ठ होता है ॥६३॥

दर्शञ्च पौर्णमासञ्च ये यजन्ति द्विजातय ।
न तेषा पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ॥६४
योऽनाहिताग्नि प्रयतो वीराध्वान गतोऽपि वा ।
समाधाय मनस्तीव्र म न्त्रमुच्चारयेच्छनै ॥६५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्व पाशग न्धवशिय पूषा विधत्तपासिना ।
इत्येव म न्त्र मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विज ।
अग्नि प्रविशते यस्तु रुद्रलोक स गच्छति ॥६६
सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्र ति ।
तस्माद्य प्रविशेदग्नि स रुद्रान्न निवर्त्तते ॥६७
अष्टा विंशतिम कल्पो बृहदित्यभिसज्ञित ।
ब्रह्मण पुत्रकामस्य स्रष्टु कामस्य व प्रजा ।
ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ॥६८
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहत सर्वतोमुख ।
तस्मात्तु बृहत कल्पो विज्ञ यस्तत्त्वचिन्तक ॥६९
अष्टाशीतिसहस्राणो योजनाना प्रमाणत ।
रथन्तरन्तु विज्ञ य परम सूर्यमण्डलम् ।
तस्मादण्डन्तु विज्ञयमभेद्य सूर्यमण्डलम् ॥७
यत्सूर्यमण्डलञ्चापि बृहत्साम तु भिद्यते ।

भित्वा चैन द्विजायान्ति योगात्मानो दृढव्रता ।
सङ्घातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथन्तरे ।।७१
इत्येतत्तु मया प्रोक्त चित्रमध्यात्मदर्शनम् ।
अत पर प्रवक्ष्यामि कल्पाना विस्तर शुभम् ।।७२

जो द्विजाति गण दर्श और पौर्णमास का यजन किया करते हैं, उनकी फिर ब्रह्मलोक से पुनरावृत्ति कदाचन ही होनी है ।।६४।। जो व्याहित अग्नि वाला न हो वह वीराध्वा को गया हुआ भी मन को समाहित करके शनै मन्त्र का उच्चारण करते हैं ।।६५।। मन्त्र यह है—हे अग्ने ! आप रुद्र हैं असुर हैं, मही हैं, दिव हैं, शर्व हैं और मारुत हैं । आप पूछे हुए हैं, समथ हैं, आप पाश-गन्धव शिव हैं और विधत्त पाणी के द्वारा पूपा हैं--इस इतने मन्त्र को मन से द्विज भली-भाँति धीरे मे उच्चारण करे । जो अग्नि की अचना करता है वह रुद्र के लोक को चला जाता है ।।६५।।६६।। सोम और अग्नि भगवान् काल रुद्र हैं, यह श्रुति है । इसलिये जो अग्नि अचना करता है वह रुद्र से निवर्तमान नही होता है ।।६७।। अट्ठाईसवाँ कल्प 'बृहत्'—इस सज्ञा वाला होता है । पुत्र की इच्छा वाले और प्रजा की सृजन-कामना वाले ब्रह्मा के मन से ध्य न करते हुए बृहत्साम रथन्तर हुआ ।। ८।। क्योंकि वहाँ सर्वतोमुख बृहत् उत्पन्न हुआ था, इसीलिये तत्त्वो के चिन्तकों के द्वारा यह बृहत कल्प जानने के योग्य हुआ है । ।।६६।। अट्ठासी हजार योजनो के प्रमाण से परम रथन्तर सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । इसलिये यह अण्ड न भेदन करने के योग्य सूर्य मण्डल जानना चाहिए । ।।७०।। जो बृहत् साम सूर्यमण्डल भी विद्यमान होता है । दृढ व्रत वाले योगात्मा द्विज इसका भेदन करके जाया करते हैं । सङ्घात को उपनीत अन्य कल्प- रथन्तर मे होते हैं । मैंने यह अध्यात्म दर्शन चित्र बतला दिया है । इससे आगे कल्पो का शुभ विस्तार बताऊँगा ।।७१।।७२।।

।। कल्प-संख्यानिरूपण ।।

अत्यद्भुतमिद सर्वं कल्पानान्ते महामुने ।
रहस्य वै समाख्यात मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ।।१
न तवाविदित किञ्चित् त्रिपु लोकेपु विद्यते ।

तस्माद्विस्तरन्न सर्वा कल्पसख्या ब्रवीहि न ॥२
अत्र व कथयिष्यामि कल्पसख्या यथा तथा ।
युगाग्र च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मण परमेष्ठिन ॥३
एक कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्द प्रकीर्तित ।
एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युग स्मृतम् ॥४
एक युगसहस्र तु सवन तत प्रजापते ।
सवनाना सहस्रन्तु द्विगुण त्रिवृत तथा ॥५
ब्रह्मण स्थितिकालस्य चैतत् सव प्रकीर्तितम् ।
तस्य सख्या प्रवक्ष्यामि पुरस्ताद्व यथाक्रमम् ॥६
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामत परिकीर्तिता ।
तेषा पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसज्ञा यथाक्रमम् ॥७

ऋषियो ने कहा—हे महामुने ! आपने यह अत्यन्त ही अद्भुत कल्पों का सम्पूर्ण रहस्य और मन्त्रों का प्रकल्पन बताया ह ॥१॥ तीनो लोको मे ऐसी कुछ भी वस्तु नही है जो आपको अविदित हो अर्थात् जिसे आप नही जानते हो—तात्पय यही ह कि आप सभी कुछ जानते हैं । इसलिये आप हमारे सामने समस्त कल्पो की सख्या विस्तारपूवक वणन कीजिए ॥२॥ वायुदेव ने कहा—यहाँ मैं आपके आगे यथातथ्य कल्पो की सख्या–युग का अग्रभाग और परमेष्ठी ब्रह्माजी के वर्षों के अग्रभाग को बतलाता हूँ ॥३॥ एक सहस्र कल्पो का ब्रह्मा का एक वष होता ह । इनका आठ सहस्र ब्रह्मा का युग कहा गया है ॥४॥ एक युग सहस्र प्रजापति का सवन होता ह । इस तरह सवनो का सहस्र तथा द्विगुण एव त्रिवृत यह सब ब्रह्मा की स्थिति का काल बताया गया है । उसकी सख्या यथाक्रम पहिले बताऊँगा ॥५॥६॥ कल्पो की अट्ठाईस सख्या नाम से बतला दी गई है । उनकी पहिल कल्प सज्ञा को यथाक्रम कहूँगा ॥७॥

रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ।
कल्पान्ते नाम धेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या ॥८
एकोनविंशत्म कल्पो विज्ञय श्वतलोहित ।
यस्मिंस्तत परमध्यान ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९

श्वेतोष्णीष श्वेतमाल्य श्वेताम्बरधर शिखी ।
उत्पन्नस्तु महातेजा. कुमार पावकोपम ।।१०
भीम मुख महारौद्र सुघोर श्वेतलोहितम् ।
दीप्त दीप्तेन वपुषा महास्य श्वेतवर्च्चसम् ।।११
त दृष्ट्वा पुरुष श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुख ।
कुमार लोकधातार विश्वरूप महेश्वरम् ।।१२
पुराणपुरुष देव विश्वात्मा योगिना चिरम् ।
ववन्दे देवदेवेश ब्रह्मा लोकपितामह ।।१३
हृदि कृत्वा महादेव परमात्मानमीश्वरम् ।
सद्योजात ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हास जगत्पति ।।१४

रथन्तर का साम का ऊपर से समझ लो, जिसकी जो मन्त्रोत्पत्ति है और जो नामधेय हैं ।।८।। उन्नीसवाँ कल्प श्वेत लोहित जानना चाहिए जिसमें ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का परम ध्यान है ।।९।। श्वेत उष्णीष (पगड़ी) वाला–श्वेत माला धारण करने वला–श्वेत वस्त्र धारी–महान् तेज से युक्त पावक के समान दीप्ति वाला शिखी कुमार उत्पन्न हुआ ।।१०।। जिसका मुख भीम–महान् रौद्र–सुघोर और श्वेत लोहित है । दीप्त वपु से दीप्यमान–महान् मुख वाले और श्वेत वर्चस उसको देखकर विश्वतोमुख श्रीमान पुरुष ब्रह्माजी ने लोकों के धाता–विश्वरूप–महेश्वर–कुमार और पुराण पुरुष देव-देव को विश्वात्मा लोक पितामह की वन्दना की ।। ११–१२–१३ ।। परमात्मा ईश्वर महादेव को हृदय मे स्थित करके ब्रह्म तुरन्त उत्पन्न हुआ है ऐसा ब्रह्माजी ने चिन्तन किया और ज्ञान प्राप्त करके परम प्रसन्न देवेश जगत्पति ने हास्य किया ।। १४ ।।

ततोऽस्य पार्श्वत श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चस ।
प्रादुर्भूता महात्मान श्वेतमाल्यानुलेपना ।।१५
सुदन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दन ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ।।१६

तस्याग्र श्वेत वर्णाभ श्वेतनामा महामुनि ।
विजज्ञ ऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञ नरस्त्वसौ ।।१७

तत्र ते ऋषय सर्वे सद्य ।जात महेश्वरम् ।
तस्माद्विश्वेश्वर देव ये प्रपश्यन्ति व द्विजा ।
प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिन ।।१८

ते सवे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्च स ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोक व्रजन्ति च ।।१९

ततस्त्रिशत्तम कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तित ।
रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्ण मधारयत् ।।२०

ध्यायत पुत्रकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भूतो महातेजा कुमारो रक्तविग्रह ।
रक्तमाल्याम्बर धरो रक्तनेत्र प्रतापवान् ।।२१

इसके अनन्तर इसके पार्श्व में ब्रह्मवर्चस श्वेत ऋषिगण प्रादुर्भूत हुए जो महान् आत्मा वाले और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपन वाले थे ॥ १५ । सुनन्दक विश्वन" और भन्दन ये महान् आत्मा वाले शिष्य थे जिनसे वह ब्रह्म आवृत था ॥ १६ ॥ उसके आगे श्वेतवर्ण की आभा वाले श्वेत नाम वाले महामुनि उत्पन्न हुए जिससे महान् तेज वाला वह नर उत्पन्न हुआ था ॥ १७ ॥ वहाँ वे सब ऋषिगण सद्य उत्पन्न हुए विश्वेश्वर महेश्वर देव को देखते हैं और जो ब्राह्मण उसका दर्शन करते हैं वे प्राणायाम मे परायण तथा ब्रह्म मे व्यवसाय से युक्त थे ॥ १८ ॥ वे सब पापो से निर्मुक्त हुए बिना मल वाले ब्रह्मवर्चस ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को चले जाते हैं ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर तीसवा जो कल्प था वह रक्त—इस नाम से कहा गया है । जहाँ महान् तेज से युक्त रक्त था उसने रक्तवर्ण को धारण किया था ॥ २ ॥ पुत्र की कामना वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के ध्यान करते हुए महान् तेज वाला रक्त विग्रह से युक्त कुमार उत्पन्न हुआ था जो रक्तमाल्य और रक्त वस्त्र के धारण करने वाला रक्त नेत्रों वाला तथा प्रताप वाला था ॥ २१ ॥

स त दृष्ट्वा महादेव कुमार रक्तवाससम् ।
ध्यानयोग परङ्गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ॥२२
स त प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रित ।
वामदेव ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मक व्यचिन्तयत् ॥२३
एव ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ॥२४
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेह पितामह ।
दृष्ट परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ॥२५
तस्माद्ध्यान पर प्राप्य कल्पे कल्पे महातपा ।
वेत्स्यसे मा महासत्व लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा तत शर्व अट्टहास मुमोच ह ॥२६
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारका ।
सम्बभूव र्म महात्मानो विरेजु शुद्धवुद्धय ॥२७
विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावन ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिन ॥२८

उस रक्त वस्त्र धारी महादेव कुमार को उसने देखकर और पर ध्यान-योग मे स्थित होकर विश्व-रूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया ॥ २२ ॥ भगवान परम यन्त्रित ब्रह्मा जी ने उसको प्रणाम करके फिर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मात्मक वाम-देव का विशेप रूप से चिन्तन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा ध्यान किये हुए महादेव प्रीति से युक्त मन से पितामह से कहा ॥ ३४ ॥ हे सत्तम ! पुत्र की कामना रखने वाले और ध्यान करने वाले तुमने पितामह मुझे परम भक्ति से तथा ध्यान के योग से देखा था ॥ २५ ॥ इसलिये परम ध्यान प्राप्त करके महान् तप वाले कल्प-कल्प मे हे महासत्व ! लोकों के धाता ईश्वर मुझको भली भाँति जान लोगे । इस प्रकार से कह कर पश्चात् शर्व ने बडा अट्टहास किया था ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उसके महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे और शुद्ध बुद्धि वाले महात्मा विशेप रूप से दीप्तिमान हुए थे ॥ २७ ॥ वे विरज, विवाह, विशोक और विश्वमानव थे तथा ब्रह्मण्य, वीर, अध्यवसायी और ब्रह्म के ही तुल्य थे ॥ २८ ॥

रक्ताम्बरधरा सवे रक्तमाल्यानुलेपना ।
रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचना ॥२६
ततो वपसहस्र'न्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिन ।
गृणन्तश्च माहात्मानो ब्रह्म तद्वामदवकम् ॥३०
अनुग्रहाथ लोकाना शिष्याणा हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिल कृत्वा ते ब्राह्मणा स्वयम् ।
पुनरेव महादेव प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१
येऽपिचान्ये द्विजश्रेष्ठा यु जाना वाममीश्वरम् ।
प्रपद्यन्ति महादे ा तद्भक्तास्तत्परायणा ॥३२
ते सवे पापनिमु क्ता विमला ब्रह्मच स ।
रुद्रलोक गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुलभम् ॥३३

सब रत वस्त्रो के धारण करने वाले और रक्त-माल्य तथा अनुलेपन से युक्त थे। वे रक्त भस्म से अनुलिप्त अङ्गों वाले रक्त मुख से युक्त तथा रक्त नेत्रो वाले थे ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्षों के अ त मे वे ब्रह्मण्य महात्मा और व्यवसायी उस वामदेव ब्रह्म को ग्रहण करने वाले थे ॥ ३ ॥ लोको के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और शिष्यो के हित की कामना से समस्त धम का उपदेश करके वे ब्राह्मण स्वय पुन अव्यय रुद्र स्वरूप महादेव मे प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ और जो भी अन्य श्रेष्ठ द्विज वाम ईश्वर के यु जान होते हुए उनके परम भक्त एव उन ही मे परायण रहने वाले थे वे महादेव को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ वे सभी पापो से छुटकारा पाने वाले होकर विमल अर्थात् मल से र ि त विशुद्ध होने वाले ब्रह्मवचस रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस ससार मे आवृत्ति दुलभ हुआ करती है ॥ ३३ ॥

॥ माहेश्वरावतार-योग ॥

एकत्रिंशत्तम कल्प पीतवासा इति स्मृत ।
ब्रह्मा यत्र महातेजा पीतवर्णत्वमागत ॥१
ध्यायत पुत्रकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भू तो महातेजा कुमार पीतवस्त्रवान् ॥२

पीतगन्धानुलिप्ताङ्ग पीतमाल्यधरो युवा ।
पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुज ॥३
त दृष्ट्वा ध्यानसयुक्त ब्रह्मा लोकेश्वर प्रभुम् ।
मनसा लोकधातार ववन्दे परमेश्वरम् ॥४
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरी पराम् ।
अपश्यद्गा विरूपा च महेश्वरमुखच्युताम् ॥५
चतुष्पदा चतुर्वक्त्रा चतुर्हस्ता चतु स्तनीम् ।
चतुर्नेत्रा चतु शृङ्गी चतुर्दंष्ट्रा चतुर्मुखीम् ।
द्वात्रिंशल्लोकसयुक्तामीश्वरी सर्वतोमुखीम् ॥६
स ता दृष्ट्वा महातेजा महादेवी महेश्वरीम् ।
पुनराह महादेव सर्वदेवनमस्कृत ॥७

श्री वायुदेव ने कहा इक्तीसवाँ कल्प पीतवासा इस नाम से कहा गया है जहाँ महान् तेज वाला ब्रह्मा पीत वर्णता को प्राप्त हो गया है ॥ १ ॥ पुत्र के पाने की कामना से युक्त ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के पीत-वस्त्र वाला तथा महान् तेज से युक्त कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥ २ ॥ वह कुमार पीत गन्ध से अनुलिप्त अङ्ग वाला था और वह युवा पीत-माल्य के धारण करने वाला था। वह महान् भुजाओ वाला पीतवर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला था और पीत ही मस्तक उष्णीष अर्थात् शिरोवस्त्र पहिने हुए था ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ने ध्यान मे सयुक्त उस लोकेश्वर प्रभु को देखकर मन से लोक धाता परमेश्वर की वन्दना की ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर ध्यान मे स्थित ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुखच्युत विरूप पर माहेश्वरी गौ को देखा ॥ ५ ॥ वह गौ चार पदो वाली, चार मुखो वाली चार ही हाथो से युक्त और चार स्तन वाली थी तथा उसके चार नेत्र, चार श्रृङ्ग, चार दाढ और चार मुख थे। वह बत्तीस लोकों से सयुक्त, सर्वतोमुखी और ईश्वरी थी ॥ ६ ॥ वह महान् तेज वाला उस महादेवी महेश्वरी को देखकर समस्त देवो के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित महादेव फिर बोले ॥ ७ ॥

मति स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमान पुन पुन ।
एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्भृशम् ॥८

विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ।
अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थ भविष्यसि ॥६
अथनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ॥१०
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यं प्रपद्य तां महेश्वरीम् ।
गायत्रीन्तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः ॥११
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ।
जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा । १२
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतः ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ पुनः ॥१३
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः ।
ततोऽस्य सर्वतो दास्ताः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ॥१४

मति स्मृति और बुद्धि यह गाते हुए और बार बार यही गायन करते हुए महादेवी आइये-आइये यह कहते हुए वह अत्यन्त प्राञ्जलि होकर वहाँ स्थित हो गये ॥ ८ ॥ योग से विश्व को आवृत करके इस समस्त जगत् को वश में करो । अथवा आप महादेव के साथ रुद्राणी हो जाओगी । ब्राह्मणों के हित के लिये आप परमार्थ हो जाओगी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर इसको ध्यान करने वाले पुत्र की इच्छा वाले परमेष्ठी को देव देवेश ने चार पादों वाली महेश्वरी को दे दिया । इसके पश्चात् उसको ध्यान के योग से परमेश्वरी जान लिया था ॥ १० ॥ लोकों के द्वारा नमस्कार करने के योग्य ब्रह्मा जी ने उस महेश्वरी के शरण में आकर इसके पश्चात् रौद्री गायत्री का ध्यान कर ब्रह्मा जी सुयन्त्रित हो गये ॥ ११ ॥ इस प्रकार से इस वैदिकी विद्या अर्पित रौद्री गायत्री का जप करके रुद्र लोक के द्वारा नमस्कृत महादेवी भली भाँति जाप में संलग्न हो गये थे और फिर ध्यान से युक्त चित्त से महादेव की प्रसन्नता से प्राप्त हो गये थे

॥ १२ ॥ इसके अनन्तर महादेव ने पुन दिव्य योग दिया और ऐश्वर्य, ज्ञान रूपी सम्पत्ति तथा वैराग्य प्रदान किया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त ईश्वर ने भीषण एवं दीप्त अट्टहास किया। इससे इसके सब ओर प्रादुर्भूत कुमार दीप्त हो गये ॥ १४ ॥

पीतमाल्याम्बरधरा पीतगन्धविलेपना ।
पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्या पीतमूर्द्धजाः ॥१५
ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजस ।
योगात्मानस्तत स्नाता ब्राह्मणाना हितैषिण ॥१६
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणा दीर्घसत्रिणाम् ।
उपदिश्य तु ते योग प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम् ।
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रिया ॥१८
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चस ।
प्रविशन्ति महादेव रुद्रन्ते त्वपुनर्भवा ॥१९
ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुव ।
पुनरन्य प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामत ॥२०
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकाम प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुखित ॥२१

वे सभी कुमार पीत माल्य तथा अम्बर के धारण करने वाले थे और पीतवर्ण की गन्ध के अनुलेपन से युक्त थे। इनके मस्तक पर उष्णीष अर्थात् शिरोवेष्टन वस्त्र था वह भी पीत था, पीत मुख से युक्त तथा पीत ही केशों वाले थे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर एक सहस्र वर्षों के अन्त मे निवास करके विमल ओज वाले, योगात्मा और स्नान किये हुए तथा ब्राह्मणों के हितों के चाहने वाले धर्म के तथा योग के बल से उपेत वे सब दीर्घ सत्र का यजन करने वाले ऋषियों को अपना उपदेश देकर रुद्र ईश्वर योग मे प्रविष्ट हो गये ॥ १६-१७ ॥ इस प्रकार से जो इस विधि से महेश्वर को प्रसन्न हुए तथा अन्य लोग भी ध्यान से युक्त नियत आत्मा वाले जितेन्द्रिय थे वे सभी अपने पापों से छूटकर विरज

और महातमस से महादेव रूप में प्रवेश किया करते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १८ १९ । श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू की पीतवर्ण वाले कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम सित कल्प हुआ ॥ २ ॥ उस समय सर्वत्र एकमात्र समुद्र के दिव्य एक सहस्र वर्ष हो जाने पर प्रजा के सृजन की कामना करने वाले ब्रह्माजी परम दुःखित होते हुए चिन्ता करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य व प्रभो ।
कृष्ण समभवद्वर्णो ध्यायत परमेष्ठिन ॥२२
अथापश्य महातेजा प्रादुर्भूत कुमारकम् ।
कृष्णवर्ण महावीर्य दीप्यमान स्वतेजसा ॥२३
कृष्णाम्बरवरोष्णीष कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णेन मौलिना युक्त कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥२४
स त दृष्ट्वा महात्मानममर घोर मन्त्रिणम् ।
ववन्दे देवदेवेश विश्वेश कृष्णपिङ्गलम् ॥२५
प्राणायामपर श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
मनसा ध्यानसयुक्त प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥२६
एव व ध्यायतस्तस्य ब्रह्मण परमष्ठिन ।
मुमोच भगवान् रुद्र अट्टहास महास्वनम् ॥२७
अथास्य पार्श्वत कृष्णा कृष्णस्रगनुलेपना ।
चत्वारस्तु महात्मान सम्बभूवु कुमारका ॥२८

इस तरह से चिन्ता करने वाले पुत्र की कामना से युक्त प्रभु परमेष्ठी का ध्यान मे सलग्न रहते रहते ही कृष्णवर्ण हो गया ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भाव होने वाले कृष्णवर्ण से युक्त महान् वीर्य वाले अपने तेज से दीप्यमान कुमार को देखा ॥ २३ ॥ वह कुमार काले वस्त्र और शिरोवेष्टन वाला था तथा कृष्ण उपवीत धारण कर रहा था । उसका मस्तक भी कृष्ण था तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त था ॥ २४ ॥ उस महान् आत्मा

वाले घोर मन्त्र से युक्त अमर उनने देखकर श्रीमान् पिङ्गल विश्वेश तथा देव देवेश उसको प्रणाम किया ॥ २५ ॥ प्राणायाम करने मे परायण होकर श्रीमान् उसने हृदय मे उसको स्थित करके ध्यान से संयुक्त यतियो के स्वामी महेश्वर को मन से प्रसन्न हुआ था और इसके पश्चात् यह अघोर है, ऐसा ब्रह्मा ने उस ब्रह्म का चिन्तन किया था ॥ २६ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्माजी के ध्यान करते हुए भगवान् रुद्र ने उस समय बहुत ही अधिक ध्वनि से युक्त महान् अट्टहास किया था ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् इसके पार्श्व प्रदेश मे कृष्णवर्ण वाले तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमारों का सम्भव (जन्म) हुआ था ॥ २८ ॥

कृष्णा कृष्णाम्बरोष्णीषा कृष्णास्या कृष्णवाससः ।
तैश्चाट्टहासः सुमहान् हुङ्कारश्चैव पुष्कलः ।
नमस्कारश्च सुमहान् पुनः पुनरुदीरितः ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत् पारमेश्वरम् ।
उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ॥३०
योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥३१
एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः ।
स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ॥३२
ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके ।
अन्यः प्रवर्त्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ॥३३
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥३४
विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ।
विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् ॥३५
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ।
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम् ॥३६

वे चारों उत्पन्न होने वाले कुमार एकदम कृष्ण वर्ण वाले थे। उनके वस्त्र और शिरोवेष्टन भी कृष्ण थे कृष्ण वर्ण का ही उन सब का मुख था और कृष्ण वस्त्रधारी थे। उन्होंने सुमहान् अट्टहास और बहुत अधिक हुङ्कार एवं बार बार सुमहान् नमस्कार का उच्चारण किया था ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तब योग से उस परम ईश्वर की उपासना करके महाभाग वाले उन्होंने शिष्यों को दे दिया ॥ ३ ॥ योग से सम्पन्न होते हुए योग के बल से वे मन से अमल निर्गुण विश्व स्वरूप ईश्वर के स्थान मे प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार से इसी योग से जो अन्य भी द्विजाति थे जो कि इस विधान के ज्ञाता थे वे अवश्य रुद्र के समीप मे गमन करने वाले स्मरण करेंगे ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर उस कृष्ण रूप वाले भयानक कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम विश्व रूप था ॥ ३३ ॥ संहार के निवृत्त हो जाने पर और फिर इस चराचर के सृष्ट हो जाने पर पुत्र की कामना रखने वाले तथा ध्यान मे संलग्न रहने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के महान् नाद (ध्वनि) वाली विश्व रूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई अर्थात् सरस्वती ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ४ ॥ विश्व माल्य को धारण करने वाले तथा विश्व के अम्बर के धारण करने वाले विश्व यज्ञोपवीत के धारी विश्व का उष्णीष धारण करने वाले विश्वगन्ध विश्व स्थान और महान् भुजा वाले उसका युक्तात्मा ब्रह्मा ने मन से ध्यान करके उस सर्वत्र गमन करने वाले सब के स्वामी ईशान देव की वन्दना की ॥ ५ ३६ ॥

ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्।
उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि ॥ ७
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम्।
उवाच भगवान् ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥३८
यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगं विश्वमीश्वरम्।
एतद् वेदितुमिच्छामि कस्माय परमेश्वर ॥३९
कथा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी।

चतु.शृङ्गो चतुर्वक्त्रा चतुर्दन्ता चतुस्तनी ॥४०
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथ स्मृता ।
किन्नामधेया कोऽस्यात्मा किवीर्या वापि कर्मत ॥४१

हे महादेव ! ओमीशान आपके लिय नमस्कार है इस प्रकार से ध्यान में सलग्न होने वाले एव प्रणाम करते हुए पितामह से भगवान् ईश ने कहा—मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हूँ, बतलाओ तुम क्या चाहते हो ? ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त प्रणत होकर और अपनी वाणियो से महेश्वर की बहुत कुछ स्तुति करके परम प्रसन्न चित्त से ब्रह्माजी ने कहा ॥ ३८ ॥ जो आपका यह विश्व रूप है, विश्व में सर्वत्र गमन करने वाला और इस विश्व का ईश्वर स्वरूप है इसे मैं जानना चाहता हूँ कि यह परमेश्वर कौन है ? ॥ ३९ ॥ और मैं यह भी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ कि यह भगवती चार पादो वाली तथा चार मुखो वाली, चार सीग, चार मुख, चार दाँत एव चार स्तनो वाली देवी कौन है जिसके चार हाथ हैं चार नेत्र है। यह विश्वरूपा कैसे कही गई है ? इसका क्या नाम है, इसकी आत्मा कौन हैं इसका वीर्य (पराक्रम) क्या होता है और इसका कर्म क्या है, यह सभी मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

रहस्य सर्वमन्त्राणा पावन पुष्टिवर्द्धनम् ।
शृणुष्वेतत्पर गुह्यमादिसर्गे यथा तथम् ॥४२
अय यो वर्त्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृत ।
यस्मिन् भवादयो देवा षड्विंशन्मनव स्मृता ॥४३
ब्रह्मस्थानमिद चापि यदा प्राप्त त्वया विभो ।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥४४
शत शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुव ।
पुरस्तात्तव देवेश तान्शृणुष्व महामुने ॥४५
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दस्ते महालय ।
गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागत ॥४६
त्वयि योगश्च साङ्ख्यश्च तपो विद्याविधि क्रिया ।

ऋता सत्यश्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमा ॥४७
ध्यान ध्यानवपु शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्धृ'ति ।
कान्ति शान्ति स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती ।
तुष्टि पुष्टि क्रिया चैव लज्जा क्षान्ति प्रतिष्ठिता ॥४८
षडविंशत्तद्गुणा ह्य षा द्वात्रिंशाक्षरसज्ञिता ।
प्रकृतिं विद्धि ता ब्रह्म स्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम ॥४६

महेश्वर ने कहा—यह समस्त म ो का रहस्य है और यह पावन तथा पुष्टि के वर्धन करने वाला है तुम अब मुझ से इस परम गोपनीय विषय को सुनो जो कि आदि सर्ग मे हुआ था ॥ ४२ ॥ जो यह कल्प इस समय वर्तमान है वह विश्वरूप इस नाम वाला कहा गया है जिसमें भवादि देव छब्बीस मनु कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ हे विभो ! यह ब्रह्म-स्थान है जब कि आपने इमे प्राप्त किया है। तब से ही लेकर यह तेईसवाँ कल्प कहा गया है ॥ ४४ ॥ हे देवेश ! आपके सम्मुख ही जो सकडो और सहस्रों स्वयम्भु बीत गये उनकी कथा बतलाता हूँ। उस समय तुम्हारा नाम आनन्द था ॥ ४५ ॥ तुम्हारा महालय भी आनन्द ही होता है। गालव्य गोत्र तप से तुम मेरे पुत्रता को प्राप्त हुए हो ॥ ४६ ॥ तुममे योग सांख्य तप विद्या विधि क्रिया ऋत सत्य जो ब्रह्म है वह अहिंसा सन्तति क्रम प्रतिष्ठित हैं ॥ ४७ ॥ ध्यान ध्यान का वपु शान्ति विद्या अविद्यामति धृति कान्ति शान्ति स्मृति मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती तुष्टि पुष्टि क्रिया लज्जा और क्षान्ति ये सब तुम मे प्रतिष्ठित हैं ॥ ४८ ॥ ये छब्बीस गुण बत्तीस अक्षरो की संज्ञा से युक्त हैं। हे ब्रह्मन् ! उनको आपकी प्रसूति महेश्वरी प्रकृति समझना चाहिए ॥ ४६ ॥

सषा भगवती देवी तत्प्रसूति स्वयम्भव ।
चतमुखी जगद्योनि प्रकृतिगी प्रकीर्तिता ।
प्रधान प्रकृति चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥५०
अजामेता लोहिता शुक्लकृष्णां विश्व सप्रसृजमानां सुरूपाम ।
अजोऽहं वै बुद्धिमा विश्वरूपा गायत्री गा विश्वरूपा हि बुद्धा ॥५१
एवमुक्त्वा महादेव अट्टहासमथाकरोत् ।

वलितास्फोटितरव कहाकहनदन्नथा ।।५२
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्या सवरूपा कुमारका ।
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्ध मुण्डश्च जज्ञिरे ।।५३
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजस ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ।।५४
धर्मोपदेश नियत कृत्वा योगमय दृढम् ।
शिष्टाना नियतात्मान प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ।।५५

वह यह भगवती देवी स्वयम्भू की तत्प्रसूति है और यह चतुर्मुखी, जगद्योति, प्रकृति और गौ कही गई है । तत्त्वो के चिन्तन करने वाले पुरुष इसको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ।। ५० ।। बुद्धिमान् ! मैं अज हूँ यह अजा, लोहिता, कृष्ण शुक्ला विश्व का सम्प्रजन करने वाली सुरूपा, विश्वरूप वाली, गौ और गायत्री जानी गई है ।। ५१ ।। महादेव ने इस प्रकार से कहकर अट्टहास किया और वलित एव स्फोटितरव वाला कहकहे की ध्वनि की ।। ५२ ।। इसके अनन्तर उसके पार्श्व देश मे जटी, मुण्डी शिखण्डी और अर्धमुण्ड दिव्य सवरूप कुमार उत्पन्न हुए ।। ५३ ।। इसके पश्चात् महान् ओज से युक्त यथोक्त योग के द्वारा उन्होने दिव्य एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर की उपासना की ।। ५४ ।। फिर योगमय नियत दृढ धर्मोपदेश करके शिष्टो मे नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र मे प्रविष्ट हो गये ।। ५५ ।।

।। शार्व–स्तोत्र ।।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदु ।
कृत त्रेता द्वापर च तिष्य चेति चतुर्युगम् ।।१
एतत्सहस्रपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मण स्मृतम् ।
यामाद्यास्तु गणा सप्त रोमवन्तश्चतुर्द्दश ।।२
सशरीरा श्रयन्ते स्म जनलोक सहानुगा ।
एव देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जन तप ।।३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवा सर्वे महौजस ।
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्व सायुज्य कल्पवासिनाम् ।।४

समेत्य देवस्ते देवा प्राप्ते सङ्कालने तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्धं कल्पवासिषु वै जनम् ॥६
तत्संहृत्या ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष में चार युग कहते हैं कृत त्रेता द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र जब तक हो जाता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। यामादि साध्य गण और शेष वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ महर्लोक का सेवन करते थे। इस प्रकार से देवों के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २ ३ ॥ मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् ओज से युक्त समस्त देव होते हैं। इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त होने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४ ५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त वे शून्य लोक महान् भुवादि और देवों को कि कल्पवासी थे ऊर्द्ध में गमन में जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त उस संहृति से ब्रह्मा देव ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब को दाह वृष्टि से संस्थापना किया करते हैं ॥ ६ ७ ।

सोऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः ।
समुद्रः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवः ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥८
मायर्यैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्य युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ।।१०
फणासहस्रकलित तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ।।११
एव तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्ट नाभ्या तु पङ्कजम् ।।१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्ड महोत्सेध लीलया प्रभविष्णुना ।।१३
तस्यैव क्रीडमानस्य समीप देवमीढुष ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रिय ।
चतुर्मुखो विशालाक्ष समागम्य यदृच्छया ।।१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ।। ८ ।। उस एक समुद्र मे मैने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रो वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाऐ थीं, महान् चौडा वक्षस्थल था और जो समस्त लोको की योनि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग मे स्थित होकर ध्यान करते थे ।। ९ १० ।। एक सहस्र फनो से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ।। ११ ।। इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीडा के लिये अपनी नाभि में एककमल नाल की सृष्टि की थी।।१२।। वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ।। १३ ।। इस तरह क्रीडा करने वाले

समेत्य देवस्ते देवा प्राप्ते सङ्कालन तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते व चतुर्दश ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेष च तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्ध कल्पवासिषु व जनम ॥६
तत्संहृत्या ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति व सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष में चार युग कहते हैं कृत त्रेता द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र जब तक हो । है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । यामादि सात गण और गोम वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ जनलोक का सेवन करते थे । इस प्रकार से देवों के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २-३ ॥ मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् ओज से युक्त समस्त देव होते हैं । इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त हो ने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४-५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त वे शून्य लोक महान् भुवादि और देव जो कि कल्पवासी थे ऊर्ध्व भाग में जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त उस संहृति से ब्रह्मा देव ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से संस्थापना किया करते हैं ॥ ६-७ ।

योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया व परिकीर्तितः ।
समुद्रः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवः ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥८
मायथैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्य युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैव क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ़ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र मे मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाएँ थी, महान् चौडा वक्षस्थल था और जो समस्त लोकों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग मे स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९ १० ॥ एक सहस्र फनो से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीडा के लिये अपनी नाभि मे एक कमल नाल की सृष्टि की थी ॥१२॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीडा करने वाले

उपक समीप मे शेष की उपासना करने वाला हेम ब्रह्माण्ड से उत्पन्न सुवर्ण के समान वर्ण वाले इन्द्रियों से परे ब्रह्माजी यह छा स आये जो कि चार मुखों से युक्त विशाल नेत्रों वाले थे ॥ १४ ॥

श्रिया युक्तेन मध्येन सुप्रभेण सुगन्धिना ।
तं क्रीडमानं पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तं भेजिवान् ॥१५
स विस्मयमथागम्य शस्य सपूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भवान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६
अथ तस्याच्युतं श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः
उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१७
प्रत्युवाचोत्तरं चैव क्रियते यच्च किञ्चन ।
द्यौरन्तरिक्षं भूतञ्च परं पदमहं प्रभुः ॥१८
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत ।
कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान् कुतः ।
कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ॥१९
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्वं कर्त्तव्यं किञ्च ते मया ।
एवं ब्रुवाणं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः ॥२०
यथा भवास्तथा ह्याहमादिकर्त्ता प्रजापतिः ।
नारायणसमाख्यातः सर्वं वै मयि तिष्ठति ॥२१

ब्रह्माजी ने श्री से युक्त सुन्दर प्रभावाले सुगन्ध से अन्वित नवीन कमल से क्रीडा करते हुए उनका दर्शन कर उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ इनके उपरान्त वह अन्य त आश्चर्य में भरकर शस्य सम्पूर्ण वाणी से बोले इस जल के मध्य में आश्रय लेकर शयन करने वाले आप कौन हैं ? ॥१६॥ इसके अनन्तर भगवान् अच्युत उन ब्रह्माजी के इस शुभप्रश्न स्वरूप वचन को सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होते हुए पर्यङ्क से उठ बैठे ॥१७। और उन्होंने ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर दिया कि जो कुछ भी किया जाता है और अन्तरिक्ष (आकाश) एवं भूत उन सबमे मैं परम पद प्रभु हूं ॥१८॥ उन ब्रह्मा जी से इस तरह भगवान् विष्णु ने कह कर फिर वे यह बोले आप कौन हैं

जो यहाँ पर आये हो और आप कहाँ से आये हैं ? यहाँ आपका आगमन किस लिये हुआ है और फिर कहाँ जाना है तथा आपका आश्रय स्थान कौन सा है ? ॥१६॥ आप विश्वमूर्ति कौन हैं और मुझ से आप को क्या करना है ? इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् विष्णु को पितामह ब्रह्माजी ने उत्तर दिया ॥२०॥ जिस प्रकार आप हैं वैसे ही आदि कर्त्ता प्रजापति मैं भी हूं । मुझे नारायण इस नाम से कहा गया है और यह सभी कुछ मेरे अन्दर ही रहता है अर्थात् स्थिति प्राप्त करता है ॥२१॥

सविस्मय पर श्रुत्वा ब्रह्मणा लोकवर्तृणा ।
सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भव' ॥२२
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादशद्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान् ।
प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥२३
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महयशा ।
अहाऽस्य तपसो वीर्य्य पुन पुनरभाषत ॥२४
पर्य्यटन् विविधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ।
ततो वर्षसहस्रान्तेनान्त हि ददृशे तदा ॥२५
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतन ।
अजातशत्रुर्भगवान पितामहमथाब्रवीत् ॥२६
भगवन् आदि मध्यञ्च अन्त कालदशोर्न च ।
नाहमन्त प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूय पितामहमिद हरि ।
भवानप्येवमेवाद्य ह्युदर मम शाश्वतम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् द्विजोत्तम ॥२८

लोकों के कर्त्ता ब्रह्माजी ने परम आश्चर्य के साथ इस को सुन कर भगवान् ने विश्व सम्भव भगवान विष्णु को अनुज्ञात किया ॥२२॥ कौतूहल से वह महान् योगी ब्रह्मा के मुख मे प्रविष्ट हो गये । उस महान् तेज वाले ने प्रवेश

करके समुद्रो और पर्वतो के सहित इन अठारह द्वीपो को आनुपूर्व्य से तथा भुवन एव सनातन ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सात लोको को सबको ब्रह्मा के उदर में देखकर महान यश वाले विष्णु ने मन मे सोचा हो हो इसके तप का कितना आश्चर्य पूर्ण पराक्रम है ? इस के अनन्तर वे बार बार बोले ॥२३ २४॥ विष्णु अनेक लोक और विविध भाँति के आश्रमो का पर्यटन करते रहे पर एक सहस्र वर्षों के अन्त मे भी उनका अन्त उन्होने नहीं देखा ॥२५॥ तब उस समय इनके मुख से पन्नगेन्द्रारि केतन अर्थात् पन्नग सर्पों के शिरोमणि के शत्रु गरुड के केतन वाले ने निकल कर अजात शत्रु अर्थात् ऐसे जिन का कोई शत्रु उत्पन्न ही न हुआ हो भगवान इसके अनन्तर पितामह ब्रह्माजी से बोले ॥२६॥ हे अनघ ? हे भगवान ? आदि मध्य और अन्तकाल और दिशा का अन्त तथा आपके उदर का अन्त मैं नही देख पारहा हूँ ॥२७॥ इस प्रकार से कह कर भगवान् हरि फिर पितामह से यह बोले हे सुरोत्तम ! ऐसे ही आप भी मेरे शाश्वत उदर मे प्रवेश करके उपमा से रहित इन लोको को देखें ॥२८॥

मन प्रह्लादनी वाणी श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।
श्रीपतेरुदर भूय प्रविवेश पितामह ॥२९
तानेव लोकान् गर्भस्थ पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रम ।
पर्यटित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरे ॥३०
ज्ञात्वागमन्त च पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णु ।
विभुर्मन कर्त्तु मियेष चाशु सुख प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ॥३१
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्यते ।
सूक्ष्म कृत्वात्मनो रूप नाभ्या द्वारमविन्दत ॥३२
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामह ।
उज्जहारात्मनो रूप पुष्कराच्चतुरानन ।
विरराजारविन्दस्थ पद्मगर्भसमद्युति ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कारस्न्य त ।
प्रवर्त्तमाने संहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥३४
ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वर ।

शूलपाणिर्ममहादेवो हैमचीराम्बरच्छद ।
आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरि ॥३५

उनकी अनेकों प्रसन्नता प्रदान करने वाली इस वाणी को सुनकर तथा उसका भली भाँति अभिनन्दन करके पितामहने श्रीपति के उदर मे प्रवेश कियाथा ॥२९॥ चिन्तन करने के योग्य विक्रम वाले भगवान् हरि ने गर्भ मे स्थित होते हुए उन्ही लोको को देखकर और चारो ओर पर्यटन करके आदि देव हरि का अन्त उन्होने नही देखा ॥३०॥ उन पितामह के आगम को जान कर भगवन् विष्णु ने समस्त द्वारो को बन्द करके विभुने मन मे यह करने की इच्छा की कि शीघ्र ही सुख पूवक इस महान् जलौध मे शयन कर जाऊ ॥३१॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी को समस्त द्वार पिहित दिखलाई दिये तब ब्रह्माजी ने अपने स्वरूप को सूक्ष्म बनाकर नाभि मे द्वार प्राप्त किया था ॥३२॥ तब पितामह ने कमल सूत्र के अनुमार्ग के द्वारा अनुगमन करके फिर चतुरानन ने कमल से अपने रूप का उद्धार किया था । उस अरविन्द मे स्थित होकर पद्म के गर्भ के समान द्युति वाले ब्रह्मा विशेष रूप से शोभित हुए ॥३३॥ इस बीच मे उन दोनो में एक-एक को पूर्ण तथा हर्ष के उत्पन्न हो जाने से उस समुद्र के मध्य मे पूर्ण समभाव हुआ था ॥३४॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमेय आत्मा वाले प्राणियो के स्वामी ईश्वर हैमचीराम्बर को धारण करने वाले शूल हाथ मे लिये हुए महादेव वहाँ आगये जहाँ कि नागभोग के पति वह अनन्त हरि वर्त्तमान थे ॥३५॥

शीघ्र विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिता ।
उद्धूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दव ।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।
अबिन्दवो हि स्थूलोष्णा कम्पते चाम्बुज भृशम् ।
एत मे सशय ब्रूहि किञ्चान्यत् त्वञ्चिकीर्षसि ॥३७

एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् ।
श्रुत्वाप्रतिमकर्माह भगवानसुरान्तकृत् ॥३८
किन्नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् ।
वदति प्रियमत्यर्थं विप्रियेपि च ते मया ॥३९
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ।
किन्त्वत्र भगवांस्तस्मिन् पुष्करे जातसम्भ्रम ॥४०
किं मया यत् कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ।
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्वत ॥४१
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रान्तु तत्वगाम् ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभासको ब्रह्मा वेदनिधि प्रभु ॥४२

शीघ्र विक्रम करने वाले उसके पादों से अत्यन्त पीड़ित आकाश में शीघ्र मोटी जल की बिन्दु उद्भूत हुई थी। वे अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल थी। वहाँ पर वायु बहुत ही अधिक चलने लगी ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा जी ने महान् आश्चर्य देखकर भगवान विष्णु से कहा—ये परम स्थूल एवं उष्ण जल की बूँदें इस कमल को बहुत ही अधिक कंपाती हैं। आप मेरे इस संशय को बतलाइये आप और क्या करना चाहते हैं ? ॥ ३७ ॥ पितामह के मुख से उद्भूत इस वाक्य को सुनकर असुरों के अन्त करने वाले अप्रतिम अर्थात् अनुपम कर्म करने वाले भगवान बोले ॥ ३८ ॥ निश्चय ही मेरी इस नाभि में क्या अन्य प्राणी आलय करने वाले हैं ऐसा कहते हैं। मेरे द्वारा तुम्हारे अत्यन्त विप्रिय होने पर भी इसे अत्यन्त प्रिय ही कहते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से मन से ध्यान करके यह उत्तर बोले। क्या यहाँ पर आप उस कमल में सम्भ्रम वाले हो गये हैं ॥ ४ ॥ हे देव ! मैंने जो किया है हे पुरुष श्रेष्ठ ! उस अनुत्तम प्रिय को मुझे बोल रहे हैं आप किस लिये ऐसा कर रहे हैं ठीक-ठीक मुझे बतलाइये ॥ ४१ ॥ इस तरह बोलने वाले देवेश से अम्बुज की आभा वाले वेदों के निधि प्रभु ब्रह्मा जी ने तत्व शाली जो लोक यात्रा थी उसे बतलाया था ॥४२॥

योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ।
यथा ममोदरे लोका सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टा कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४३

ततो वर्षसहस्रान्ते उपावृत्तास्म्य मेऽनघ ।
नून मत्सरभावेन मा वशीकर्तुमिच्छता ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुन ॥४४
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन चेतसा ।
लब्धो नाभ्या प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गम ॥४५
माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽत्र कथञ्चन ।
इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्गिकी ॥४६
यन्म यानन्तर कार्यं मयाध्यवसित त्वयि ।
त्वाञ्चाबाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुन ॥४७
न तेऽत्र थावमन्तव्यो मान्य पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽपकृतन्तव ।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्व पद्मादवतर प्रभो ॥४८
नाह भवन्त शक्नोमि सोढुन्तेजोमय गुरुम् ।
स चोवच वर ब्रूहि पद्मादवतराम्यम् ॥४९

आपकी इच्छा से जो मैंने पहिले आप के उदर मे प्रवेश किया था तब मैंने आपके उदर मे पूर्ण रूप से, उसी रूप से समस्त लोक देखे जैसे कि हे प्रभो! आपने मेरे उदर में सम्पूर्ण लोक देखे थे ॥ ४३ ॥ हे अनघ ! फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इधर-उधर वहाँ पर पर्यटन करने वाले मुझ को मात्सर्य के भाव से वश मे करने की इच्छा वाले आपने शीघ्र ही समस्त द्वार घटित कर दिये अर्थात् बन्द कर दिये थे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर मैंने अपने चित्त से सोच-विचारकर नाभि मे प्रवेश प्राप्त किया जिससे कि पद्मसूत्र से मेरा फिर विनिर्गम हुआ ॥ ४५ ॥ आपके मन को थोडा-सा भी किसी प्रकार का व्याघात न होवे, यह विष्णु के कार्यों की औपसर्गि की अनुगति होती है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जो मुझे करना चाहिए मैंने आप मे अध्यवसित (निश्चित) कर लिया है। तुमको कोई भी बाधा न करने की इच्छा वाले मैंने यह इच्छा से क्रीडा-पूर्वक शीघ्र समस्त द्वार पुन घटित कर दिये ॥ ४७ ॥ आपको इस विषय में

कुछ अन्य प्रकार की बात नहीं समझनी चाहिए। आप मेरे मान्य एवं पूजा करने के योग्य होते हैं। हे कल्याण स्वरूप! आपका जो भी मैंने कुछ अपकार किया है उसे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इसलिये मेरे द्वारा कहे हुए आप पद्म से अवतरण करें॥ ४८॥ मैं तेजपूर्ण गुरु आपको सहन नहीं कर सकता हूँ। इस पर वह बोले—वर माँग लो मैं पद्म से अवतरण करता हूँ॥ ४९॥

पुत्रो भव ममारिघ्न मुद प्राप्स्यसि शोभनम।
सत्य धनो महायोगी त्वमीड्य प्रणवात्मक ॥५०
अद्यप्रभृति सर्वेश श्व तोष्णीषविभूषण।
पद्मयोनिरितीत्येव ख्यातो नाम्ना भविष्यसि।
पुत्रो मे त्व भव ब्रह्मन् सवलोकाधिप प्रभो ॥५१
तत स भगवान् ब्रह्मा वर गृह्य किरीटिन।
एव भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सर ॥५२
प्रत्यासन्नमथायात बालार्काभ महाननम्।
भूतमत्यद्भुत दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ॥५३
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरो रुह।
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुख ॥५४
लोकप्रभु स्वय साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली।
मेढ्रे णोर्ध्वे न महता नदमानोऽतिभैरवम ॥५५
क खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिमहाद्युति।
व्याप्य सर्वा दिशो द्याञ्च इत एवाभिवर्त्तते ॥५६

भगवान् विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न! मेरे पुत्र हो जाओ बहुत ही अच्छा आनन्द प्राप्त करोगे। सत्य धन वाले और महान् योगी आप प्रणव स्वरूप स्तुति करने के योग्य हैं। ५ ॥ हे सर्वेश! आज से लेकर श्वेत शिरोवेष्टन से विभूषित आप पद्मयोनि इस नाम से विख्यात हो जाओगे। हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त लोकों के अधिप! तुम मेरे पुत्र हो जाओ॥ ५१॥ इसके अनन्तर उन भगवान् ब्रह्मा जी ने किरीटी (विष्णु) के वरदान को ग्रहण करके ऐसा ही होगा यह कहकर प्रसन्न आत्मा वाले और मत्सरता से रहित हो

गये थे ॥ ५२ ॥ समीप मे आये हुए बाल सूर्य के समान आभा वाले महान् आनन (मुख) से युक्त हुए अत्यन्त अद्भुत नारायण को देखकर बोले— ॥ ५३ ॥ अप्रमेय अर्थात् समझ मे नही आने के योग्य, महान् मुख से युक्त द्रष्ट्राधारी, ध्वस्त बालो वाले, दश भुजाओ से युक्त, त्रिशूल के चिह्न वाले, नेत्रो से विश्वतोमुख, स्वय लोको के स्वामी, साक्षात् विकृत स्वरूप वाले, मूँज की मेखलाधारी, महान् ऊर्द्ध मेढ से ध्वनि करते हुए, हे विष्णो ! यह कौन ऐसा पुरुष है जो तेज की राशि और महाद्युति वाला है और समस्त दिशा मे व्याप्त होकर इधर की ओर ही आ रहा है ॥ ५४-५५-५६ ॥

तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणम ब्रवीत् ।
पद्भयान्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।
वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशया ॥५७
छटाभिर्विष्णुतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्म सम्भव ।
घ्राणजेन च वातेन कम्पमान त्वया सह ।
दोधूयते महापद्म स्वच्छन्द मम नाभिजम् ॥६८
स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभु ।
भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्युपतिष्ठाव गोध्वजम् ॥५९
तत क्रुद्धोऽम्बुजाभास्क ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
न भवान् न्यूनमात्मान लोकाना योनिमुत्तमम् ॥६०
ब्रह्माण लोककर्त्तार माञ्च वेत्ति सनातनम् ।
कोऽय भो शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥६१
तस्य तत् क्रोधज वाक्य श्रुत्वा विष्णुरभाषत ।
मा मैव वद कल्याण परिवाद महात्मन ॥६२
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रद ।
हेतुरस्यात्र जगत पुराण पुरुषोऽव्यय ॥६३

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा— जिससे विक्रम से पदो के तल निपातन से समुद्र मे महान् वेग से, आकाश में समस्त जलाशय व्यथित हो गये है, छटाओ के द्वारा विष्णु से भी अधिक पद्म-

सम्भव सिच्यमान होते है और प्राण से उत्पन्न वायु से आपके साथ कम्पमान होकर मेरे नाभि से उत्पन्न इस स्वच्छ महान् पद्म को भी कपा रहे हैं वह यह भगवान् ईश हैं जो अनादि और अन्त करने वाले विभु है। मैं और आप इन गोध्वज की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करें ॥ ५७–५८–५९ ॥ इसके पश्चात् क्रोध युक्त ब्रह्मा अम्बुज की आभा वाले केशव से बोले—आप उत्तम लोको की योनि लोको के करने वाले मुझको सनातन ब्रह्म को न्यूनात्मा नही जानते हैं। यह शङ्कर कौन है जो हम दोनो से भी अधिक बन रहा है। ॥ ६०–६१ ॥ उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर विष्णु ने कहा—हे कल्याण! ऐसा महान् आत्मा वाले की परिवाद (निन्दा) मत कहो ॥ ६२ ॥ यह महान् मायायोग का ईश्वर धर्म दुराधर्ष वर प्रदान करने वाले इस जगत् के हेतु पुराण और अव्यय पुरुष हैं ॥ ६३ ॥

जीव खल्वेष जीवात्मा ज्योतिरेक प्रकाशते।
बालक्रीडनकं द्वेव' क्रीडते शङ्कर. स्वयम् ॥६४
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्त प्रकृतिस्तम ।
अस्य चैतानि नामानि नित्य प्रसवधर्मिण ।
य क स इति दुःखार्तैर्मृग्यते यतिभि शिव ॥६५
एष बीजी भवान् बीजमहं योनि सनातन ।
एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्म विष्णुमभाषत ॥६६
भवान्योनिरहं बीज कथ बीजी महेश्वर ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्त सशय छेत्तुमर्हसि ॥६७
ज्ञात्वा चैव समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा।
इद परमसादृश्य प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥६८
अस्मान्महत्तर गुह्य भूतमन्यन्न विद्यते।
महत परम धाम शिवमध्यात्मिना पदम् ॥६९
द्वैधीभावेन चात्मान प्रविभज्य व्यवस्थित ।
निष्कल सूक्ष्ममव्यक्त' सकलश्च महेश्वर. ॥७०

यह जीवो का निश्चय ही जीव है और एक ज्योति को प्रकाशित करते

हैं। यह देव शङ्कर स्वय बच्चो के खिलौनों से क्रीडा किया करते हैं ॥ ६८ ॥ नित्य ही प्रसव के धर्म वाले इनके प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तम ये नाम कहे जाते हैं। वह कौन है जो दुखो के आर्त्त होने वाले यतियो के द्वारा खोजा जाया करता है? वह यही शिव हैं ॥ ६५ ॥ यह बीज वाले है, आप बीज हैं, मैं योनि हूँ जो कि सनातन हूँ। इस प्रकार से कहे गये विश्वात्मा ब्रह्म से बोले—॥ ६६ ॥ आप योनि हैं अर्थात् वह स्थान हैं जहाँ बीज पडा करता है, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीज वाले है, यह मुझे बहुत बडा सशय हो रहा है इसलिये आप इस मेरे सन्देह का छेदन करने मे समर्थ हो ॥ ६७ ॥ लोक-तन्त्री ब्रह्मा के द्वारा समुत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर भगवान हरि ने इस परम सादृश्य प्रश्न को बतलाया था ॥ ६८ ॥ इससे अधिक महान् अन्य कोई भी भूत नहीं है। शिव महान् का परम धाम और अध्यात्मवादियो का पद होता है ॥ ६६ ॥ अपने स्वरूप के दो विभाग कर प्रविष्ट होते हुए यह व्यवस्थित रहते हैं। सूक्ष्म अव्यक्त एक निष्कल स्वरूप है और दूसरा सकल अर्थात् कलाओ से युक्त महेश्वर स्वरूप होता है ॥ ७० ॥

अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिङ्ग भवद्वीज प्रथम त्वादिसर्गिकम् ॥७१
मयि योनौ समायुक्त तद्वीज कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमपारन्तद्योन्यामण्डमजायत ॥७२
शतानि दशवर्षाणामण्ड चाप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥७३
कपालमेक द्यौर्जज्ञे कपालमपर क्षिति ।
उल्वन्तस्य महोत्सेध योऽसौ कनकपर्वत ॥७४
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववर प्रभु ।
हिरण्यगर्भो भगवानह जज्ञे चतुर्भुज ॥७५
ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् ।
अतारार्केन्दुनक्षत्र शून्य लोकमवेक्ष्य च ।
कोऽयमत्रे त्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवस्तदा ॥७६

प्रियदर्शनास्सुतनवो येऽतीता पूर्वजास्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।
भुवनानलसङ्काशा पद्मपत्रायतेक्षणा ॥७७

इस माया की विधि को जानने वाले तथा अगम्य एवं गहन का पहिले आदि सर्गिक प्रथम लिङ्ग बीज हुआ जो कि आप है ॥ ७१ ॥ काल के पर्याय से वह बीज योनि स्वरूप पुरुष मे समायुक्त हुआ । वह उस समय योनि मे अपार हिरण्मय अण्ड के रूप मे उत्पन्न हो गया था ॥ ७२ ॥ वह अण्ड दश सहस्र वर्ष तक जल मे ही प्रतिष्ठित रहा फिर अन्त मे हजार वर्ष के बाद वह वायु के द्वारा दो कर दिया गया ॥ ७३ ॥ उसका एक कपाल अर्थात् आधा भाग ने द्यौ को उत्पन्न किया और दूसरे कपाल से क्षिति उत्पन्न हुई । उत्वन्त का महोत्सेध जो है वह यह कनक पर्वत है ॥ ७४ ॥ इसके पश्चात् उससे प्रबुद्ध आत्मा वाला देवो मे श्रेष्ठ प्रभु देव हिरण्यगर्भ आप और चार भुजाओ वाला मैं उत्पन्न हुआ ॥७५॥ फिर एक सहस्र वर्ष के अन्त मे वायु ने पुन दो टुकड़े किये । तारा सूर्य चन्द्र से रहित शून्यलोक को देखकर यहाँ पर यह कौन है ऐसा अभिध्यान करने पर उस समय वे कुमार हुये ॥ ७६ ॥ देखने मे परम प्रिय सुन्दर शरीर वाले आप के जो पहिले होने वाले पूर्वज थे वे ही एक सहस्र वर्षों के अन्त मे आपके अब आत्मज हैं । जो भुवन की अग्नि के समान तथा पद्मपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाले हैं ॥ ७७ ॥

श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्च वोढ्रं रेतसौ ।
सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दन ।
उत्पन्ना समकाल ते बुद्धयाऽतीन्द्रियदर्शना ॥७८
उत्पन्ना प्रतिपारमानो जगदुश्च सदैव हि ।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिता ॥७९
अस्य सौम्य बहुक्लेश जराशोकसमन्वितम् ।
जीवित मरण चैव सभवश्च पुन पुन ॥८०
स्वप्नभूत पुन स्वर्गे दुखानि नरकास्तथा ।
विदित्वा चागम सर्वमवश्य भवितव्यताम् ॥८१

नमस्ते ह्यस्मदादीना भूताना प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मविदानाना द्रव्याणा प्रभवे नम ॥९३

नमो योगस्य प्रभवे साख्यस्य प्रभवे नम ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणा पतये नम ॥९४

विद्युदशनिमेघाना गर्ज्जितप्रभवे नम ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपाना प्रभवे नम ॥९५

अद्रीणा प्रभवे चैव वर्षाणा प्रभवे नम ।
नमो नदाना प्रभवे नदीना प्रभवे नम ॥९६

नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणा प्रभवे नम ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीना प्रभवे नम ॥९७

नमो रसाना प्रभवे रत्नाना प्रभवे नम ।
नम क्षणाना प्रभवे कलाना प्रभवे नम ॥९८

निमेष प्रभवे चैव काष्ठाना प्रभवे नम ।
अहोरात्रार्द्धमासाना मासाना प्रभवे नम ॥९९

हमारे सदृश प्राणियो के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है । वेद-कर्म और अवदान द्रव्यो के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥९३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा साख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है । ध्रुव निशीथ ऋषियो के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९४॥ विद्युत्-वज्र और ..ो तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है । समस्त समुद्रो को जन्म

प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्वा जगद्गुरुम् ।
त्वाञ्च माञ्च व सक्रुद्धो नि श्वासान्निद् हृदयम् ।।८७
एव ज्ञात्वा महायोग अभ्युत्तिष्ठन् महाबल ।
अह त्वामग्रत कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ।। ८
ब्रह्माणमग्रत कृत्वा तत स गरुडध्वज ।
अतीतञ्च भविष्यञ्च वर्त्तमानस्तथैव च ।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इद स्तोत्रमुदीरयत् ।।८९
नमस्तुभ्य भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नम क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नम ।।९०
अमेढ्रायोर्ध्वमेढाय नमो वकुण्ठरेतसे ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ।।९१
नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय व नम ।
गह्वराय धनेशाय हेमचीराम्बराय च ।।९२

आपके ही इस माहात्म्य को तथा आत्मा से ही अपने आपको देखकर एव ईश्वर के सद्भाव तथा अभ्युत्थान मुझको जानकर महान् योग वाले प्राणियों को वर देने वाले प्रभु महादेव को जो कि प्रणव के स्वरूप वाले हैं प्राप्त करके जगत् के गुरु को नमस्कार करके यह क्रुद्ध होकर तुमको और मुझको निश्वास से निर्दग्ध कर देते हैं ।। ६।।८७।। इस प्रकार से महान् बल वाले इस महायोग का ज्ञान प्राप्त करके अभ्युत्थित होता हुआ मैं तुमको आगे करके उस अनल के समान प्रभा वाले की स्तुति करूंगा ।।८८।। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गरुडध्वज विष्णु ने ब्रह्माजी को आगे करके अतीत (गुजरे हुए) आगे आगे वाले तथा वर्तमान नामों से और छान्दसों के द्वारा इस स्तोत्र का उच्चारण किया था ।।८९।। सुन्दर व्रत वाले अनन्त तेज से युक्त भगवान् आपके लिये नमस्कार है । क्षेत्र के अधिपति बीज वाले शूली के लिये नमस्कार है ।।९ ।। मेढ़ू से रहित तथा ऊर्ध्व मेढ़ वाले वैकुण्ठरेता आपके लिये नमस्कार है । ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रथम के लिये नमस्कार है ।।९१।। हव्य पूज्य और सद्य उत्पन्न होने वाले के लिये नमस्कार है । गह्वर धनेश और हेमचीराम्बर धारण करने वाले के लिये नमस्कार है ।।९२।।

नमस्ते ह्यस्मदादीना भूताना प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मावदानाना द्रव्याणा प्रभवे नम ॥६३

नमो योगस्य प्रभवे साख्यस्य प्रभवे नम ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणा पतये नम ॥६४

विद्युदशनिमेघाना गर्जितप्रभवे नम ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपाना प्रभवे नम ॥६५

अद्रीणा प्रभवे चैव वर्पाणा प्रभवे नम ।
नमो नदाना प्रभवे नदीना प्रभवे नम ॥६६

नमश्चौपधिप्रभवे वृक्षाणा प्रभवे नम ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीना प्रभवे नम ॥६७

नमो रसाना प्रभवे रत्नाना प्रभवे नम ।
नम क्षणाना प्रभवे कलाना प्रभवे नम ॥६८

निमेप प्रभवे चैव काष्ठाना प्रभवे नम ।
अहोरात्रार्द्धमासाना मासाना प्रभवे नम ॥६६

हमारे सदृश प्राणियो के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है । वेद-कर्म और अवदान द्रव्यो के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥६३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा साख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है । ध्रुव निशीथ ऋपियो के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥६४॥ विद्युत्-वज्र और मेघो तथा गजन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है । समस्त समुद्रो को जन्म देने वाले तथा सम्पूर्ण द्वीपो को उत्पन्न करने वाले के लिये नमस्कार है ॥६५॥ पवतो के प्रभव स्थान के लिये तथा वर्पो के उत्पत्ति स्वरूप वाले के लिये नमस्कार है । नद और नदियों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६६॥ औपधियो के तथा वृक्षो के प्रभु के लिये नमस्कार है । धर्म के अध्यक्ष तथा धम स्वरूप एव समस्त स्थितियो के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥६७॥ समस्त रसो के तथा सम्पूर्ण रत्नो के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है । क्षण और कलाओ के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६८॥ निमेप-काष्ठा अहोरात्र-अर्द्धमास और मासों के प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है ॥६६॥

नम ऋतूना प्रभवे सख्याया प्रभवे नम ।
प्रभवे च परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नम ॥१०
नम पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नम ।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥१०१
कल्पोदये निबद्धाना वार्त्ताना प्रभवे नम ।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नम ॥१०२
विद्याना प्रभवे चव विद्याना पतये नम ।
नमो व्रताना पतये मन्त्राणा पतये नम ॥१०३
पितृणा पतये चव पशूना पतये नम ।
वाग्वृषाय नमस्तुभ्य पुराणवृषभाय च ॥१०४
सुचारुचारुकेशाय ऊर्ध्वचक्षु शिराय च ।
नम पशूना पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥१०५

समस्त ऋतुओ के स्वामी तथा सम्पूर्ण सख्या के प्रभु के लिये नमस्कार है। परार्द्ध के प्रभु तथा पर के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१ ॥ पुराणों के प्रभु–युग के अधिपति और चारों प्रकार के सर्ग के स्वामी अनन्त चक्षु वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१ १॥ कल्प के उदय के समय मे वार्त्ताओ के प्रभु के लिये नमस्कार है। इस विश्व के प्रभु तथा ब्रह्मादि के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१ २॥ समस्त विद्याओ के स्वामी तथा प्रभु के लिये नमस्कार है। समस्त व्रतो के तथा सम्पूर्ण मन्त्रो के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥१ ३॥ पितृगण के स्वामी एवं पशुओ के प्रभु के लिये नमस्कार है। वाणी के वृषभ तथा पुराणो के वृषभ के लिये हमारा नमस्कार है ॥१ ४॥ सुन्दर केशो वाले के लिये तथा ऊर्द्ध चक्षु एव शिर वाले के लिये नमस्कार है। पशुओ के पति तथा वृष एव इन्द्र ध्वज के लिये नमस्कार है ॥१ ५॥

प्रजापतीना पतये सिद्धाना पतये नम ।
गरुडोरगसर्पाणा पक्षिणा पतये नम ॥१ ६
गोकर्णाय च गोष्ठाय शकुकर्णाय च नम ।
वाराहायाप्रमेयाय रक्षाधिपतये नम ॥१ ७

नमो ह्यप्सरसापत्ये गणाना (पतये) ह्लीमये नम ।
अम्भसा पतये चैव तेजसा पतये नम ॥१०८
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्लीमते नम ।
बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥१०९
दीर्घश्रृङ्गैक शृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने ।
नम स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥११०
भूताय च भविष्याय वर्त्तमानाय वै नम ।
सुवर्च्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥१११
वरदाय वरेण्याय नम सर्वगताय च ।
नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥११२

समस्त प्रजापतियों के पति तथा समस्त सिद्धो के स्वामी के लिये नमस्कार है । गरुड तथा उरग एव सर्पो के एव पक्षियो के पति के लिये नमस्कार है ॥१०६॥ गोकर्ण गोष्ट और शकु कर्ण के लिये नमस्कार है । वाराह–अप्रमेय और राक्षसो के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥१०७॥ अप्सराओ के पति तथा गणो के स्वामी और ह्लीमय के लिये नमस्कार है । जलो के पति तथा तेजो के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०८॥ श्री लक्ष्मी के स्वामी–श्रीमान् और ह्लीमान् के लिये नमस्कार है । बल तथा अबल के समूह स्वरूप एव अक्षोभ्य और क्षोभण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥१०९॥ दीर्घश्रृङ्ग वाले, एक श्रृङ्ग वाले, ककुद वाले वृषभ के लिये नमस्कार है । स्थैर्य के वपु वाले तथा तेज स्वरूप एव सुन्दर प्रभा वाले के लिये नमस्कार है ॥११०॥ भूत-भविष्य तथा वर्त्तमान के लिये नमस्कार है । सुन्दर वर्चस वाले वीर-शूर और अतिग के लिये नमस्कार है ॥१११॥ वरदान देने वाले, वरेण्य और सबमें निवास करने वाले के लिये नमस्कार है । भूत-भव्य-भव और महान् के लिये नमस्कार है ॥११२॥

जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ।
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥११३
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च ।

अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥११४
नमः पाशाय हस्ताय नमः स्वाभरणाय च ।
हुताय अपहुताय प्रहुतप्रशिताय च ॥११५
नमोऽस्त्विष्टाय मूर्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च ।
नमः ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः ॥११६
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च ।
अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥११७
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ।
नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे ॥११८
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ।
सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥११९

तप स्वरूप जनरूप और वरद के लिये नमस्कार है । वन्दना करने के योग्य मोक्ष स्वरूप जन और नरक के लिये नमस्कार है ॥११३॥ भव भजमान इष्ट याचक अभ्युदीर्ण दीप्त तत्त्व निर्गुण के लिये नमस्कार है ॥११४॥ पाश हस्त और स्वाभरण के लिये नमस्कार है । हुत अपहुत प्रहुत तथा प्रशित के लिये नमस्कार है ॥११५॥ इष्ट मूर्त और अग्नि सोम ऋत्विज के लिये हमारा नमस्कार है । ऋत एवं सत्य तथा भूतों के अधिपति के लिये नमस्कार है ।११६। सदस्य के लिये तथा दक्षिणावभृथ के लिये नमस्कार है । अहिंसा के लिये तथा लोकों के पशु मन्त्र एवं औषध के लिये नमस्कार है ॥११७॥ तुष्टि के प्रदान करने वाले त्र्यम्बक और सुन्दर गन्ध वाले के लिये नमस्कार है । इन्द्रियों के पति परिहार तथा स्रग्धारी के लिये नमस्कार है ॥११८॥ विश्व विश्वरूप और विश्व से अक्षि मुख सभी ओर हाथ और पद वाले अप्रमित और रुद्र के लिये नमस्कार है ॥११९॥

नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः ।
नमः सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥१२०
सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ।
सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२१

नमो नम सुपर्णाय तपनीयनिभाय च ।
विरूपाक्षायत्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२२
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नम सौम्येक्षणाय च ।
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२३
पिशिताय पिशङ्गाय पिताय च निषङ्गिणे ।
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नम· ॥१२४
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ।
नम श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥१२५
नम कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे ।
नम कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥१२६

हव्य और कव्य तथा हव्य कव्य के लिये नमस्कार है । सिद्ध, मेध्य चेष्ट और अव्यय के लिये नमस्कार है ॥१२०॥ सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्य क्षोभण, सुमेधा, सुप्रजा, दीप्त और भास्कर के लिये नमस्कार है ॥१२१॥ सुपर्ण और तपनीय के तुल्य के लिये नमस्कार है विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, और महान् ओज वाले के लिये नमस्कार है ॥१२२॥ दृष्टि के हनन करने वाले के लिये नमस्कार है और सौम्य नेत्र वाले के लिये नमस्कार है । धूम्र, श्वेत, कृष्ण और लोहित के लिये हमारा नमस्कार है, ॥१२३॥ पिशित, पिशङ्ग, पीत और निषङ्ग वाले के लिये हमारा नमस्कार है विशेषता से युक्त तथा निर्विशेष के लिये नमस्कार है ॥१२४॥ पद्म जैसे वर्ण वाले, मृत्यु के नाश करने वाले तथा मृत्यु स्वरूप के लिये नमस्कार है । श्याम, गौर, कद्रु और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१२५॥ कान्त सन्ध्या के समान अभ्र वर्ण वाले तथा बहुत, से रूप वाले के लिये नमस्कार है । कपाल हाथ में रखने वाले, दिशाओं के वस्त्र वाले अर्थात् तनग्न था कपर्दी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥

अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव विभ्राणाय कृशानवे ॥१२७
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ।
अर्कप्रभशरीराय वलिने रहसाय च ॥१२८

नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च।
नदते कूदते चैव नम प्रमुदिताय च ॥१४२
नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च।
ध्यायते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नम ॥१४३
चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे।
नम कृताय कम्पाय मुण्डाय विकराय च ॥१४४
नम उन्मत्तवेषाय किङ्किणीकाय च नम।
नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च ॥१४५
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च।
नम प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च ॥१४६
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च।
नमो गणाय गुह्याय अगम्यागमनाय च ॥१४७

विशेषरूप से भीषण भीम भग के प्रमथन करने वाले सिद्धों के स्वामी (सधुनाथ) के द्वारा गान किये हुए तथा महाभाग के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४१॥ अट्टहास को छोड़ने वाले क्ष्वेडित से आस्फोटित कूदन करने वाले और प्रमुदित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४२॥ अद्भुत शयन करने वाले धावन करते हुए प्रस्थान किये हुए ध्यान करने वाले जृम्भा लेते हुए तुदन करते हुए और द्रवित होते हुए आपके लिये नमस्कार है ॥१४३॥ चलते हुए क्रीडा करते हुए लम्बोदर शरीर वाले कृत कम्प मुण्ड और विकिर के लिये नमस्कार है ॥१४४॥

उन्मत्त वेष वाले किङ्किणीक विकृत वेष वाले क्रूर उग्र और अमर्षण के लिय नमस्कार है ॥१४५॥ अप्रमेय दीप्त दीप्त निर्गुण प्रिय और मुद्रा मणि के धारण करने वाले आपके लिय हमारा नमस्कार है ॥१४६। तोक तनु और गुणों से अप्रतिम गण गुह्य अगम्य और अगमन के लिय नमस्कार है ॥१४७

लोकधात्री त्वियं भूमि पादौ सज्जनसेवितौ।
सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानन्तवोदरम् ॥१४८
मध्येऽन्तरिक्ष विस्तीर्णन्तारागणविभूषितम्।
तारापथ इवाभाति श्रीमान् हारस्तवोरसि ॥१४९

दिशो दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिता ।
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपम ॥१५०
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषित ।
दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षमनौपम्य मुख तव ॥१५१
पद्ममालाकृतोष्णीष शीर्षण्य शोभते कथम् ।
दीप्ति सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थर्ये भूर्ह्यनिलो वले ॥१५२
तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्द शैत्यमप्सु च ।
अक्षरोत्तमनिष्पन्दान् गुणानेतान्विदुर्बुधा ॥१५३
जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वर ।
पुरेशयो गुहावासी खेचरी रजनीचर ॥१५४

यह लोको की धात्री भूमि है और ये चरण सज्जनो के द्वारा सेवित है। समस्त सिद्धि योगो का आपका उदर अधिष्ठान है ॥ १४८ ॥ मध्य में विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है जो कि तारागणो से विभूषित है। आपके उरस्थल मे श्री से सम्पन्न हार तारापथ की भाँति शोभा देता है ॥ १४९ ॥ ये दश दिशाऐ आपकी भुजाऐ हैं जो कि केयूर और अङ्गदो से विभूषित हैं। नील अम्वुदो के समूह के समान विस्तीण परिणाह है ॥ १५० ॥ आपका यह कण्ठ हेमसूत्र से विभूषित होकर परम शोभा वाला हो रहा है। दंष्ट्रा की करालता से दुर्धर्ष और उपमा से रहित आपका मुख है ॥ १५१ ॥ पद्मों की मालाओ से शिरोवेष्टन वाला शीर्षण्य किस प्रकार से शोभा दे रहा है जैसे सूर्य में दीप्ति, चन्द्र मे वपु, स्थिरता मे भूमि और बल मे अनिल होता है ॥ १५२ ॥ अग्नि मे तीक्ष्णता, चन्द्र में प्रभा, आकाश मे ध्वनि और जल मे शीतलता इन अक्षर और उत्तम निष्पन्द वाले गुणो को बुध लोग जानते हैं ॥ १५३ ॥ महादेव महेश्वर जप, जप्य, महान योगी, पुरेशय, गुहावासी, खेचर और रजनीचर हैं ॥ १५४ ॥

तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्द्धन ।
हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहन ॥१५५
वोद्धव्यो वोधनो नेता धूर्वहो दुष्प्रकम्पक ।
बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जय ॥१५६

घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः ।
कवची पट्टिशी शङ्खी पाशहस्तः परश्वधः ॥१५७
अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दनः ।
त्वां प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥१५८
अग्निस्त्वं चार्णवान् सर्वान् पिबन्न व न तृप्यसे ।
क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ॥१५९
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्वं शिष्टपूजितः ।
वेदानामव्ययः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः ॥१६०
हव्यञ्च वेद वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः ।
प्रीते त्वयि महादेव वय प्रीता भवामहे ॥१६१

भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा
लोकानान्त्वं कर्ता ह्यादिसर्गः ।
साङ्ख्याः प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वा
क्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति । १६२
योगेन त्वां ध्यानिनो नित्ययुक्ता
ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते
कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते । १६३
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः ।
कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः ।
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१६४

यह महेश्वर तप की खान गुहा के गुह नन्दन और नन्दिवर्धन हैं। ऊर्ध्व शीर्ष धरा के धाता विधाता तथा श्रुति को वहन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ यह बोध करने के योग्य वीरन नेता ध्रुवह, दुष्प्रकम्पक वृहद्रथ भीम कर्म करने वाले वृहत्कीर्ति और धनञ्जय हैं। १५६ ॥ यह महेश्वर घण्टाप्रिय ध्वजी छत्रधारी पताकाध्वजिनी के स्वामी कवचधारी पट्टिशधारण करने वाले शङ्खधारी हाथ में पाश ग्रहण करने वाले और परशुभृत हैं ॥ १५७ ॥ यह

अगम, अनघ, शूर, देवराज के शत्रुओं को मर्दन करने वाले हैं। आपको प्रसन्न कर हमने युद्ध में पहिले शत्रुओं को मारा था ॥ १५८ ॥ आप अग्नि स्वरूप है समस्त समुद्रो का पान करते हुए भी तृप्त नही होते है। आप क्रोध के घर हैं, प्रसन्न आत्मा वाले है, काम के नाशक तथा काम के प्रदान करने वाले प्रिय है ॥ १५९ ॥ आप ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणो की रक्षा करने वाले, ब्रह्मचारी, गौओ का नियन्त्रण करने वाले तथा शिष्ट पुरुषो के द्वारा पूजित हैं। आप वेदो के अव्यय-कोश हैं और आपने यज्ञ की कल्पना की है ॥ १६० ॥ हव्य वेद का वहन करता है और हव्य वाहन वेदोक्त का वहन करता है। हे महादेव ! आपके प्रसन्न होने पर हम सब प्रसन्न होते हैं ॥ १६१ ॥ आप भवानी के स्वामी, आदिमान् न होने वाले, धामो के समूह, लोको के ब्रह्मा, आदिसर्ग और आप कर्त्ता हैं। साख्य शास्त्र के ज्ञाता आपको प्रकृतियो से पर जान कर क्षीण ध्यान वाले वे मृत्यु मे प्रवेश नही करते हैं ॥ १६२ ॥ ध्यान करने वाले योग के द्वारा आप मे नित्य युक्त होते हुए जानकर फिर उन समस्त भोगो का त्याग कर देते हैं। जो अन्य मनुष्य आपकी शरणागति मे जाते है वे विशुद्ध होकर कर्मों से दिव्य भोगो का सेवन किया करते है ॥ १६३ ॥ अप्रमेय तत्व को जैसे अपनी शक्ति से जानते है वैसे ही परमात्मा आपका अपार माहात्म्य का कीर्त्तन किया। आप जो भी कोई हो वह हो, हमारे लिये सर्वत्र शिव होवे। आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥ १६४ ॥

॥ प्रकर्ण २५—मधुकैटभ उत्पत्ति ॥

सविवन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षण ।
प्रहृष्टवदनोऽत्यथममवच्च स्वकीर्त्तनात् ॥१
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशन ।
पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचन ॥२
तत स भगवान देव श्रुत्वा वाक्यामृत तयो ।
जानन्नपि महाभाग प्रीतपूर्वमथाब्रवीत् ॥३
को भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ।
समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥४

ताव् चतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किन्च तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ।
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारभृते त्वया ॥५
उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण वदाम्यहम् ॥६
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवन्तौ माननीयौ मे मम इष्टतरावुभौ ।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उन दोनों को भली भाँति ध्यान करते हुए की भाँति देखकर मधु पिङ्ग एवं आयत नेत्रों वाले महेश्वर अपने कौतुक से अत्यन्त प्रहृष्ट मुख वाले हो गये ॥ १ ॥ उमा के स्वामी विरूप नेत्रों वाले दक्ष प्रजा पति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले पिनाकधारी खण्ड परशु भूत प्राण और तीन नेत्र वाले उन भगवान महादेव ने इन दोनों के वचनामृत को सुनकर फिर महाभाग जानते हुए भी प्रीति के साथ बोले—॥ २-३ ॥ इस घोर जन के विप्लव में परस्पर में हित के चाहने वाले महान आत्मा वाले आप दोनों कौन हैं ? आप कमल के समान नेत्रों वाले यहाँ इकट्ठे होते कौन हैं ? ॥ ४ ॥ उन दोनों महात्माओं ने परस्पर में भली भाँति देखकर कहा—हे भगवान ! हे विभो ! तथ्य को जानने वाले आपके बिना अनन्त सुख इच्छाचार कहाँ हो सकता है ॥ ५ ॥ भगवान् देव मधुर और स्निग्ध वाणी से बोले—हे हिरण्य गर्भ ! हे कृष्ण ! मैं आप दोनों से कहता हूँ मैं आपकी इस भक्ति से प्रसन्न हो गया हूँ जो कि शाश्वताक्षर से युक्त है। अब आप दोनों ही मेरे परम मान नीय और अतिप्रिय हो गये हैं। मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि वरों में अतिश्रेष्ठ क्या तुम दोनों का वरदान दूँ ॥ ५-७ ॥

तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत् ।
ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ॥८
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि ध्रुवहम् ।
तत स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सु पुनलिप्सया ॥९

अथ विष्णुरुवाचेद प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
वीरमप्रतिम पुत्र यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥१०
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्व देवदेव महेश्वरम् ।
स तस्य वाक्य सपूज्य केशवस्य पितामह ॥११
ईशान वरद रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलि ।
उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ॥१२
यदि मे भगवान् प्रीत पुत्रकामस्य नित्यश ।
पुत्रो मे भव विश्वात्मन् स्वतुल्यो वापि धूर्वह ।
नान्य वरमह वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥१३
तस्य ता प्रार्थना श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ।
निष्कल्मषममायश्च बाढमित्यब्रवीद्वच ॥१४

उनके द्वारा इस प्रकार से कहने पर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से बोले—हे महाभाग ! बोलो-बोलो जो भी वर आपको विवक्षित हो ॥ ८ ॥ हे विष्णो ! मैं प्रजा का कामना रखने वाला हूँ । मैं धुरी का वहन करने वाला पुत्र चाहता हूँ । इसके पश्चात् पुत्र की लिप्सा से वर की चाहना रखने वाले यह भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रजा की इच्छा वाले प्रजापति से भगवान् विष्णु ने यह कहा—कि जो आप परम धीर और अनुपम धुरी के वहन करने वाला पुत्र चाहते हो तो आप देवो के देव महेश्वर को ही पुत्रत्व के रूप मे अभियुक्त करें । तब पितामह ने केशव भगवान् के इस वचन का आदर किया ॥ १०-११ ॥ कृताञ्जलि होकर वर देने वाले ईशान रुद्र को प्रणाम करके विष्णु के साथ ही पुत्र की कामना रखने वाले ब्रह्माजी ये वाक्य बोले ॥ १२ । यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो नित्य ही पुत्र की कामना रखने वाले मेरे हे विश्वात्मन् ! आप पुत्र होवें अथवा अपने ही सदृश धुरी का वहन करने वाला पुत्र दो । मैं इसके अतिरिक्त कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ । हे महेश्वर ! आप जब प्रसन्न है तो यही वरदान मुझे देवें ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर भग के नेत्रो का हनन करने वाले भगवान् महेश्वर बिना किसी कल्मष तथा माया के 'अच्छा यही होगा' यह वचन बोले ॥ १४ ॥

यदा कार्यसमारम्भे कस्मिश्चित्तव सुव्रत ।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वा समुपेष्यति ।
आत्मकादश ये रुद्रा विहिता प्राण हेतव ॥१५
सोऽहमेकादशात्मा व शूलहस्त सहानुग ।
ऋषिर्मिश्रो महात्मा च ललाटाद्भविता तदा ॥१६
प्रसादमतुल कृत्वा ब्रह्मणस्तादृश पुरा ।
विष्णु पुनरुवाचेद ददामि च वरन्तव ॥१७
स ह्युवाच महाभागो विष्णुर्भवमिद वच ।
सवमेतत् कृत देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ॥१८
एवमुक्तस्ततो देवस्तमभाषत केशवम् ।
विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहन्तव शाश्वत ॥१९
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गम स्थावरश्च यत् ।
विश्वरूपमिद सव रुद्रनारायणात्मकम् ॥ ०
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरह दिनम् ।
भवानृतमह सत्य भवान् ऋतुरह फलम् ॥२१

हे सुव्रत ! जब तुम्हारे किसी काय के समा म्भ मे काय की सिद्धि न होने पर आपको क्रोध आवेगा तब अपने एकादश रुद्र जो प्राणो के हेतु स्वरूप बनाये हैं वह मैं एकादश स्वरूप व ला हाथ मे शूल धारण किये हुए अनुचरों के साथ महात्मा ऋषि मिश्र उस समय ललाट से होऊगा ॥ १५ १६ ॥ उस समय ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार का अतुल प्रसाद करके फिर विष्णु भगवान् से यह बोले—मैं आपको वरदान देता हूं ॥ १७ ॥ तब महाभाग वह विष्णु भव अर्थात् महेश्वर से यह वचन बोले—हे देव ! यह सब किया गया है यदि मुझ पर आप अत्यन्त परितुष्ट एव प्रसन्न हैं तो हे अम्बु वाहन ! आप मे मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति होवे ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से कहे हुए महादेव ने केशव से कहा—हे विष्णो ! हे शाश्वत ! हे देव ! आप सुनो मैं आप से बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १९ ॥ प्रकाश और अप्रकाश स्थावर और जङ्गम जो यह विश्व का रूप है

वह सब रुद्र और नारायण के स्वरूप वाला ही है ।। २० ।। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं । आप रात्रि हैं तो मैं दिन हूँ । आप ऋत हैं तो मैं सत्य हूँ, आप ऋतु हैं तो मैं फल हूँ ।। २१ ।।

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेय यज्जपित्वा सदा जना ।
मा विशन्ति त्वयि प्रीते जना सुकृतकारिण ।
आवाभ्या सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ।।२२
आत्मान प्रकृति विद्धि मा विद्धि पुरुष शिवम् ।
भवानर्द्धशरीर मे त्वहन्तव यथैव च । २३
वामपार्श्वमहम्मह्य श्याम श्रीवत्सलक्षणम् ।
त्वञ्च वामेतर पार्श्वं त्वह वै नीललोहित ।।२४
त्वञ्च मे हृदय विष्णो तव चाह हृदि स्थित ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम् ।।२५
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ।
एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वर ।।२६
ततः सोऽन्तर्हिते देवे सम्प्रहृष्टस्तदा पुन ।
अशेत शयने भूप प्रविश्यान्तजले हरि ।।२७
त पद्म पद्मगर्भाभ पद्माक्ष पद्मसम्भव ।
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्म तदासनम् ।।२८

आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु हूं । जिसका जप करके सवदा मनुष्य जो सुकृत करने वाले है आपके प्रसन्न होने पर मुझ मे प्रवेश किया करते है । हम दोनो के सहित ही गति है और युग के क्षय मे अन्य कोई भी गति नही होती है ।। २२ ।। अपने आपको प्रकृति समझो और मुझ शिव को पुरुष जानलो । आप मेरे आधे शरीर हैं और इसी प्रकार से मैं आपका भी आधा शरीर हूँ ।। २३ ।। मैं वाम पार्श्व हूँ और मेरे लिये श्याम श्रीवत्स का लक्षण है । और आप वाम से इतर अर्थात् दक्षिण पार्श्व हैं और मै नील लोहित हूँ ।। २४ ।। हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदय मे स्थित हूँ । आप समस्त कार्यों के कर्ता हैं और मैं उन सब का अधिदैवत हूं ।। २५ ।। हे

वत्स ! हे अम्बुद प्रभ ! सो अब आइये आपका कल्याण हो अब मैं जाता हूँ ।
इस प्रकार से कहकर विष्णु के देव ईश्वर अन्तर्धान हो गये ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् महादेव के अन्तर्हित हो जाने पर यह भगवान् विष्णु फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर हे भूप ! हरि ने जल मे अन्दर प्रवेश किया और अपनी शय्या मे शयन करने लगे ॥ २७ ॥ पद्म के समान नेत्र वाले पद्म से समुत्पन्न सम्प्रहृष्ट मन वाले ब्रह्माजी ने पद्माभ की आभा वाले उस ब्राह्म आसन का सेवन किया ॥ २८ ॥

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावभौ ।
महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२९
ऊचतुश्च व वचनं भक्ष्यो व नौ भविष्यसि ।
एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्द्धानं गतावभौ ॥ ०
दारुणन्तु तयोर्भावं ज्ञात्वा पुष्करसम्भव ।
माहात्म्यं चात्मनो बुद्ध्वा विशातुमुपचक्रमे ॥३१
कर्णिकाघटनं भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम् ।
तत स पद्मनालेन अवतीर्य्य रसातलम ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं ददर्शोऽन्तजले हरिम् ॥३२
स च तं बोधयामास विबुद्ध चेदमब्रवीत् ।
भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शङ्कुरु ॥३३
तत स भगवान् विष्णु सप्रहासमरिन्दम ।
न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनि स्वयम् ॥३४
तस्मात्पूर्वं त्वया चोक्त भूतेभ्यो मे महद्भयम ।
तस्माद्भूतादिकावेतौ दैत्यौ त्वं नाशयिष्यसि ॥३५

इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् वहाँ पर भी अप्रतिम महाबल वाले महासत्व से युक्त दो भाई मधु और कैटभ यह वचन बोले कि हमारे भक्ष्य होओगे इतना कहकर वे दोनो वहाँ फिर अन्तर्धान हो गये । २९ ३० ॥ पुष्कर सम्भव ब्रह्माजी ने उन दोनों के इस दारुण भाव को जानकर और अपना माहात्म्य समझ कर इनके जानने का उपक्रम किया ॥ ३१ ॥ फिर

जब कर्णिका घटन गति को नहीं जाना तो इसके उपरान्त उनने कमल नाल के द्वारा रसातल मे अवतरण किया और वहाँ जल के भीतर कृष्णाजिन के उत्तरा सङ्ग वाले हरि का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ वहाँ उन्होने उनको बताया और विशेष रूप वृद्ध होने वाले उनसे यह कहा—हे देव ! मुझे भूतो मे भय होता है, आप उठिये, मेरी रक्षा कीजिए और मेरा कल्याण करिये ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु जो कि शत्रुओ के दमन करने वाले हैं, हास के सहित बोले—आप को डरना नहीं चाहिए और डरो मत, यह वचन स्वय मुनि ने कहे ॥ ३४ ॥ इससे पूर्व आपने कहा था कि भूतो से मुझे महान् भय हो रहा है सो भूतादि वाक्यो के द्वारा आप उन दोनो दैत्यो का नाश कर देगे ॥ ३५ ॥

भूर्भुव स्वस्ततो देव विविशुस्तमयोनिजम् ।
तत प्रदक्षिण कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥३६
गते तस्मिततोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात् ।
विष्णु जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमन पुन ॥३७
चक्राते रूप सादृश्य विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ ।
कृतसादृश्यरूपौ तौ नाभेवाभिमुखौ स्थितौ ॥३८
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माण दारुण वच ।
अस्माक युध्यमानाना मध्ये वै प्राश्निको भव ॥३९
ततस्तौ जलमाविश्य सस्तम्भ्याप स्वमायया ।
चक्रतुस्तुमुल युद्ध यस्य येनेप्सित तदा ॥४०
तेषान्तु युध्यमानाना दिव्य वर्षशतङ्गतम् ।
न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्य सन्यवर्त्तत ॥४१
लक्षणद्वयसस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ।
सादृश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमन् ॥४२

इसके अनन्तर "भूर्भुव स्व" ये उस अयोनिज देव के अन्दर प्रविष्ट हो गये। इसके पश्चात् उनने प्रदक्षिणा की और उसी आसन पर पुन आ गये और बैठ गये ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् उस अनन्त मे दो भाई मुख से उद्गीर्ण

होकर विष्णु और जिष्णु स बोले ब्रह्मा की रक्षा करी क्योंकि पुनः उन दोनों मधु और कटभ का आगमन जान लिया था ॥ ३७ ॥ विष्णु और जिष्णु के रूप की समानता उन दोनो ने बनाली थी और सादृश्य रूप वाले होकर उन दोनो के ही सामने मे स्थित हो गये थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दत्य ब्रह्माजी से बोले और अत्यन्त दारुण वाक्य कहे कि हमारे युद्ध करने वालों के मध्य मे प्रश्निक बन जाओ । ३९ ॥ इसके पश्चात् वे दानो जल मे प्रविष्ट होकर अपनी माया से उन्होंने जल को स्तम्भित कर दिया और फिर वहाँ उन दोनो ने उस समय तुमुल युद्ध जसा भी जिसने चाहा किया था ॥ ४० ॥ उनको वहाँ युद्ध करते हुए दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अन्योन्य का युद्ध करने के मद की अधिकता का अभिमान कम नहीं हुआ ॥ ४१ ॥ लक्षण द्वय के सस्थान से रूप वाले वे स्थित इङ्गित वाले थे । उन दोनो के समान रूपता से व्याकुल मन वाले ब्रह्माजी ध्यान मे स्थित हो गये थे ॥ ४२ ॥

स तयोरन्तर बुद्धा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा ।
पद्मकेसरज सूक्ष्म ववन्ध कवचन्तयो ।
आमेखलञ्च गात्रञ्च ततो मन्त्र मदाहरत् ॥४३
जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता ।
पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ।
ता दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ मयाद्गुणविवर्जितौ ॥४४
तत प्रोवाच ता कन्या ब्रह्मा मधुरया गिरा ।
काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥ ४५
साम्ना सपूज्य सा कन्या ब्रह्माण प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनी विद्धि मा माया विष्णो सन्देशकारिणीम् ॥४६
त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽहं ब्रह्मन् प्राप्ता त्वरायुता ।
अस्या प्रीतमना ब्रह्मा गौण नाम चकार ह ॥४७
मया च व्याहृता यस्मात्त्वञ्च व समुपस्थिता ।
महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यति ॥४८
उर्मता च शिरो भित्वा सावित्री तेन चोच्यते ।

एकानशास्तु यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ।।४९

तब ब्रह्माजी ने उन दोनो का अन्तर समझ कर उन दोनो के पद्म केशर से उत्पन्न सूक्ष्म कवच बांध दिया था । मेखला और गात्र तक इसके पश्चात् मन्त्र का उच्चारण किया ।। ४३ ।। इसके अनन्तर जप करते हुए उनके विश्वरूप से समुत्थित एक कन्या हुई जो कि पद्म हाथ मे ग्रहण किये हुए और सती तथा पद्म एवं चन्द्र के समान मुख वाली थी । वे दोनो दैत्य उसे देखकर बहुत ही व्यथित तथा भय से वर्ण विवर्जित हो गये ।। ४४ ।। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने मधुर वाणी से उस कन्या से कहा—हे अनिन्दिते ! आप कौन है ? और मैं आपको क्या समझूँ ? आप सत्य-सत्य मुझे बतलाने की कृपा करें ।। ४५ ।। तब उस कन्या ने सामवेद से ब्रह्मा की पूजा करके और प्राञ्जलि होकर कहा—मुझको आप विष्णु भगवान् की सन्देश का पालन करने वाली मोहिनी समझ लीजिए ।। ४६ ।। हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा सङ्कीर्त्यमान होती हुई मैं यहाँ बहुत ही शीघ्रता से प्राप्त हुई हूँ । तब प्रसन्न मन वाले ब्रह्माजी ने इसका गौण नाम किया ।। ४७ ।। क्योंकि आप मेरे द्वारा व्याहूत हुई हैं और अब यहाँ उपस्थित हो गई हैं इस लिये अब से आपका नाम महाव्याहृति संसार मे प्रचलित हो जायगा ।। ४८ ।। वह शिर का भेदन करके उत्थित हुई थी इसलिये वह सावित्री इस नाम से भी कही जाती है । क्योंकि बिना अंश वाली एक है इसलिये अनेक अंश वाली भी हो जांयगी ।। ४९ ।।

गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च ।
नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादात् शुभानने ।।५०
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् ।
अनावृते नौ मरणं पुत्रत्वञ्च भवेत्तव ।।५१
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्यमसादनम् ।
अनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ।।५२
एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ।।५३
पुत्रत्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत ।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ।
सक्षेपसम्प्लवाद्घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ॥५५
स तस्य वचसा देवः संहारमकरोत्तदा ।
मही निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थांश्च जङ्गमान् ॥५६

ये सबके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे शुभानने ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पीड़ित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया विष्णु कटभ को और जिष्णु मधु को ले गये। ५२ ॥ इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ से दोनों दैत्य मारे गये थे। तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ अब जिस तरह से अपने आपको पुत्र के रूप में ईश ने दिया था वह समझ लो। तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी संक्षेप तथा सम्प्लव से घोर अपने स्थान को जाता हूँ ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था। इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भद्रं ते क्षितस्ते यादसां पतिः ।
ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मिवर्द्धन ॥५७
बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयाने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥५८
तन्तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूद्गुणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥५९
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत् ॥६०
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामापतन्नश्रुबिन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे वृषध्वज ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे कृपाल ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से संज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ़ गया था ॥ ६१ ॥ जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पड़ी थी । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलङ्कृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पांस्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्ध मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अथ वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ।
सर्वेपसप्लवद्घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ॥५५
स तस्य वचसा देवः संहारं करोत्तदा ।
मही निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थां च जङ्गमान् ॥५६

ये भव के गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे सुधानने ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर पीड़ित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दानों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया विष्णु कटभ को और जिष्णु मधु को ले गये। ५२ ॥ इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ वे दोनों दैत्य मारे गये थे। तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ अब जिस तरह से अपने आपको पुत्रत्व के रूप में ईश ने दिया था वह समझ लो। तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कैटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी संक्षेप तथा सम्प्लव से घोर अपने स्थान को जाता हूँ ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था। इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भद्रन्ते क्षिप्तस्ते यादसां पतिः ।
ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मिवर्द्धन ॥५७
बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयोने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥५८
तन्तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनृणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥५९
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।

प्रजा स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ॥६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रुविन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुविन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वा स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे लक्ष्मिवचन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियो का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से सज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल न हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ गया था ॥ ६१ । जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओ की बूँदें निकल पडी थी । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओ से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिको से अलकृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पास्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसा मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

मूर्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापति ॥६५
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात् कारुण्यपूर्वकम् ।
अथैकादश ते रुद्रा प्रोद्भूता रुदतस्तथा ।
रोदनात् खलु रुद्रास्ते रु त्व तेन तेषु तत् ॥६६
ये रुद्रा खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मका ।
प्राणा प्राणभृता ज्ञेया सर्वभूतेष्ववस्थिता ॥६७
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ।
तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहित ।
ललाटान् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मक ॥६८
ब्रह्मण सोऽददात् प्राणानात्मज स तदा प्रभु ।
प्रहृष्टवदनो रुद्र किंचित् प्रत्यागतासवम् ।
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माण परम वच ॥६९
उपयाचस्व मा ब्रह्मन् स्मत्तु महसि चात्मन ।
मा च वेत्थात्मज रुद्र प्रसाद कुरु मे प्रभो ॥७०

ब्रह्माजी ने सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले उन सर्पों को देखकर अपने आपको बहुत कुछ बुरा समझा था अहो ! इस मेरे तप को धिक्कार है। यह मुझ ऐसा उसका फल मिला है कि मैंने सबसे पूर्व यह लोकों के विनाश करने वाली प्रजा ही आदि मे उत्पन्न की है ॥६४॥ उस समय ब्रह्माजी को बहुत ही तीव्र मूर्छा हो गई जो कि क्रोध और अमर्ष से ही पैदा हुई थी। तब प्रजापति ने उस मूर्छा के अभिताप से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥६५॥ उनके उस अप्रतिम वीर्य वाले के देह से करुणा के साथ एकादश रुद्र रुदन करते हुए उत्पन्न हुए ! क्योंकि वे रोदन कर रहे थे इसलिये ही उनमे रुद्रत्व के नाम की प्रसिद्धि हुई थी ॥६६॥ जो रुद्र हैं वे प्राण हैं और जो प्राण हैं वे तदात्मक हैं। समस्त भूतों मे अवस्थित प्राणधारियों के उन्हे प्राण समझना चाहिए ॥६७॥ अत्यन्त उग्र महत्त्व और साधु के चरित उनके प्राणों को नीललोहित त्रिशूली ने फिर दे दिया था जो कि पद्मयोनि ब्रह्माजी के ललाट से एकादशात्मक प्रभु उत्पन्न हुए थे ॥६८॥ उस आत्मज प्रभु ने ब्रह्माजी को प्राणों को दिया था।

और कहा—हे प्रभो ! आप मुझको अपना आत्मज रुद्र समझें और मुझ पर प्रसन्नता करें ॥७०॥

श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतस्य मनोगतम् ।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभे ॥७१
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७२
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ।
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥७३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ।
ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजैः सह ॥७४
यत्ते वरं मह ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ।
पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५
लोकेषु विश्रुतं कार्यं सर्वविश्वात्मसम्भवे ।
विषादन्त्यज देवेश लोकास्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥७६
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् ।
रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥७७

ब्रह्माजी ने इस परम सुन्दर वचन को सुनकर जिसे कि मन में वे चाहते ही थे, पितामह को बहुत ही प्रसन्नता हुई और उनके नेत्र विकसित कमलों के समान हो गये थे ।।७१।। इसके अनन्तर प्रत्यागत प्राणों वाले भगवान् ब्रह्मा विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले होकर अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर वाणी से बोले ।।७२।। हे महाभाग ! आप मेरे मन को बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं । आप अब मुझे बतलाइये कि एकादश स्वरूप वाले विश्व की मूर्ति स्वरूप आप कौन हैं ? ।।७३।। इस प्रकार से भगवान् ब्रह्मा के द्वारा कहे गये जो कि ब्रह्माजी अनन्त तेज से उस समय युक्त थे, भगवान् रुद्र ने अपने आत्मजों के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम करके उत्तर दिया था ।।७४।। हे ब्रह्मन् ! आपने भगवान् विष्णु के साथ मुझसे जो वरदान माँगा था कि आप स्वयं या आपके ही तुल्य पुरी को वहन करने वाला मेरा पुत्र होवे ।।७५।। हे देवेश !

आप लोको मे समस्त विश्वात्म सम्भव एव विभुतो के द्वारा जो कार्य लोकों के सृजन का करना चाहते हैं उसे अब विषाद को त्याग कर करें ॥७६॥ इस तरह से कहे हुए ब्रह्माजी के मन को बडी प्रसन्नता हुई और फिर भगवान ब्रह्मा लोकान्त मे नील लोहित रुद्र से कहने लगे ॥७७॥

साहाय्य मम कालर्थ प्रजा सृज मया सह ।
बीजो ऽ स सवभूताना तत्प्रपन्नस्तथा भव ।
बाढमित्येव ता वाणी प्रतिजग्राह शङ्कर ॥७८
तत स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषित ।
मनोऽग्र सोऽसृजद् वो भूताना धारणा तत ।
जिह्वा सरस्वतीञ्च व ततस्ता विश्वरूपिणीम् ॥७९
भृगुमङ्गिरस दक्ष पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ।
वसिष्ठञ्च महातेजा ससृजे सप्त मानसान् ॥८०
पुत्रानात्मसमानयात् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ।
तेषा भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८१
ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवता ।
एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामह ॥८२
दक्षाद्यान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ।
प्रजा सृजत भद्र वो रुद्रेण सह धीमता ॥८३
अनुगम्य महात्मान प्रजाना पतयस्तदा ।
वयमिच्छामहे देव प्रजा स्रष्टु त्वया सह ।
ब्रह्मणस्त्वेष स देशस्तव चैव महेश्वर ॥८४

आप अब मेरी सहायता करें और मेरे साथ में रहकर मेरे काय के लिए प्रजा का सृजन करो । आप समस्त प्राणियो के बीज हैं । अब आप उसी रूप मे प्रपन्न हो जावें । तब तो 'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा'—इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने ब्रह्माजी की इस वाणी को ग्रहण कर लिया था ॥७८॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने जो कि कृष्णाजिन से विभूषित थे सबसे आगे मन का सृजन किया फिर देव ने प्राणियों की धारणा का सृजन किया । इसके उपरान्त विश्व-

रूपिणी जिह्वा तथा सरस्वती की सृष्टि की थी ॥७९॥ इसके अनन्तर भृगु अङ्गिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रो को महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया ॥८०॥ फिर उनने अपने ही तुल्य अन्य विश्व-सम्भव पुत्रो का सृजन किया फिर उनके अनुमार्ग से मुख से गौओ को जन्म दिया ॥८१॥ लोको के पितामह ब्रह्माजी ने ओङ्कार की प्रमुखता वाले वेदो को तथा अन्य देवताओ को और इस प्रकार से यथाप्रोक्त इन सबको उत्पन्न किया। ॥८२॥ भगवान् प्रभु ने इन सृजन किए हुए दक्ष आदि मानस पुत्रो से कहा— आप सब धीमान् रुद्र के साथ प्रजा का सृजन करो। आपका कल्याण होगा ॥ ॥८३॥ तब उस समय प्रजाओ के पति सब महान् आत्मा वाले के पास जाकर पहुंचे और कहा—हे देव! हम सब आपके साथ प्रजा का सृजन करने की इच्छा करते हैं। हे महेश्वर! यह ब्रह्माजी का तथा आपका सन्देश है ॥८४॥

तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्र प्रोवाच तान् प्रभु ।
ब्रह्मणश्चात्मजा मह्य प्राणान् गृह्य च वै सुरा ॥८५
कृत्वाप्रजाप्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान् ।
भवन्त स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति व ॥८६
तेनैवमुक्ता प्रत्यूचु रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम् ।
यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥८७
अनुमान्य महादेव प्रजाना पतयस्तदा ।
ऊचुर्दक्ष महात्मान भवान् श्रेष्ठ प्रजापति ।
त्वा पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजा स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८
एवमस्त्विति वै दक्ष प्रत्यपद्यत भाषितम् ।
तै सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकाम प्रजापति ।
सर्गस्थिते तत स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥८९
अथारथ सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतु ।
ऋभु सनत्कुमारश्च तपो लोकनिवासिनौ ।
ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत प्रभु ॥९०

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उनसे कहा—आप सब देवता ब्रह्माजी के पुत्र हो सो तुम सब मेरे लिये प्राणों को ग्रहण करो। मेरे आत्मज आगे जन्म लेने वाले इन अग्रज ब्राह्मणों को वर्जित करके मेरे स्वरूप वाले ब्रह्मादि से स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों की आप लोग सृष्टि करने के योग्य होते हैं। मेरे इस वचन से आपका कल्याण होगा ॥८५॥८६॥ इस तरह रुद्र के द्वारा कहे गये उन्होंने आद्य त्रिशूली रुद्र से कहा—हे देव! जैसी भी आप आज्ञा प्रदान करते हैं वही सब किया जायगा ॥८७॥ तब समस्त प्रजापतियों ने महादेव का सम्मान करके महात्मा दक्ष से कहा कि आप सबमें परम श्रेष्ठ प्रजापति हैं। हम सब आपको ही आगे करके प्रजा का सृजन करेंगे। आपका भद्र हो ॥८८॥ तब दक्ष प्रजापति ने कहा—ऐसा ही होगा और प्रजा की कामना वाले दक्ष ने उन सबके साथ सृष्टि करने के काम का आरम्भ कर दिया। सर्ग के स्थित होने वाले स्थाणु से फिर ब्रह्माजी ने सर्ग का सृजन किया था ॥८९॥ इसके अनन्तर सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर तपोलोक के निवास करने वाले ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। फिर इसके पश्चात् प्रभु ने अन्य मानस महर्षियों का सृजन किया था ॥९०॥

॥ प्रकरण २६—स्वरोत्पत्ति वर्णन ॥

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते।
त्वयोक्तानि यथातत्त्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥१
तत्र व संशयो मह्यमभवता (वा) रेषु शूलिनः।
किं कारणं महादेव कलिं प्राप्य सुदारुणम्।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतारं करोति च ॥२
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो।
अवतारं कथञ्चैक एतदिच्छामि वेदितुम् ॥३
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदिह लोके परत्र च।
भक्तानामुपदेशार्थं विनयात् पृच्छतो मम।
कथय त्वं महाप्राज्ञ यदि श्राव्यं महामते ॥४
एवं पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रतः।

इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृत ॥५
एतद्गुह्यतम लोके यन्मान्त्व परिपृच्छसि ।
तत्सर्वं शृणु गाधेय उच्यमान यथाक्रमम् ॥६
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दु खित ॥७

श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! अहो ! आपने तो विस्मय करने के योग्य रहस्यो को बतला दिया है और वह भी लोको पर अनुग्रह करके यथातत्त्व वर्णन किया है ॥१॥ उसम भगवान् शूली के अवतारो मे हमको बडा सशय होता है । क्या कारण है कि महादेव पूर्व युगो को छोडकर इस सुदारुण कलियुग को प्राप्त कर अवतार ग्रहण करते हैं ॥२॥ हे प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कैसे अवतार लिये । यह सब हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥३॥ आपसे तो कोई भी बात इस लोक की हो चाहे परलोक की हो अविदित नही है । भक्तो के उपदेश के लिये विनय के साथ पूछने वाले मुझको हे महाप्राज्ञ ! यह सब बतलाइये यदि यह महामत श्रवण कराने के योग्य है तो अवश्य श्रवण करा दे ॥४॥ श्री लोमशजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये भगवान् वायुदेव जो कि सर्वदा लोक के हित मे अनुराग रखने वाले थे, महान् तेज वाले लोको के द्वारा नमस्कृत वायुदेव ने यह कहा ॥५॥ यह लोक मे परम गोपनीय विषय है जो कि आप मुझसे इस समय पूछ रहे हैं । हे गाधेय ! वह सब यथाक्रम कहा हुआ मुझसे श्रवण करो ॥६॥ पहिले एकार्णव के हो जाने पर दिव्य एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तब प्रजा के सृजन करने की कामना वाले ब्रह्माजी अत्यन्त दु खित होकर चिन्ता करने लगे ॥७॥

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूत कुमारक ।
दिव्यगन्ध सुघ्रापेक्षी दिव्या श्रुतिमुदीरयन् ॥८
अशब्दस्पर्शरूपान्तामगन्धा रसवर्जिताम् ।
श्रुति ह्युदीरयन् देवो यामविन्दन्नतुर्मुख ॥९
ततस्तु ध्यानसयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ।
चिन्तयामास मनसा त्रितय कोऽन्वयन्त्विति ॥१०

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ।
अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् ॥११
अथोत्तमं स लोकेषु स्वमूर्त्तिञ्चापि पश्यति ।
ध्यायन्देव स तदा देवमथन पश्यते पुनः ॥१२
तं श्वेतमथ रक्तञ्च पीतं कृष्णं तदा पुनः ।
वर्णस्य तत्र पश्येत न स्त्री न च न पुंसकम् ॥१३
ततस्तं सुचिरं ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः ॥१४

इस तरह चिन्ता में मग्न रहते हुए उसके कुमार प्रादुर्भूत हुए जो कि दिव्य गन्ध वाले और सुधापेक्षी थे तथा दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहे थे ॥ ॥८॥ चतुर्मुख देव ने शब्द स्पर्श और रूप से रहित अन्त वाली तथा गन्धहीन एवं रस वर्जित श्रुति का उच्चारण करते हुए लाभ किया था ॥९। इसके पश्चात् ध्यान में संयुक्त होकर भरव तपश्चर्या में स्थित होकर मन से सोचने लगे कि यह नितय कौन है ॥१०॥ उनके चिन्तन करते हुए शब्द स्पर्श रूप से रहित तथा रस और गन्ध से वर्जित वह अक्षर प्रादुर्भूत हुआ ॥११॥ इसके अनन्तर उसने लोकों में अपनी मूर्ति को देखा। तब देव का ध्यान करते हुए पुनः इस देव को ही देखा ॥१२॥ पहिले श्वेत फिर रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण में स्थित उसको वहाँ देखा न तो वहाँ कोई स्त्री थी और न कोई पुरुष ही था। ॥१३॥ उस सबका बहुत समय तक ध्यान करके और उस अक्षर का चिन्तन करते हुए उसके चिन्तन करने वाले के कण्ठ से अक्षर उठता है ॥१४॥

एकमात्रो महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः ।
स ओंकारो भवेद्वेद अक्षरं वै महेश्वरः ॥१५
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरं वै स्वयम्भुवः ।
प्रादुर्भूतं तु रक्तन्तु स देवः प्रथमः स्मृतः ॥१६
ऋग्वेदः प्रथमं तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ।
एतां दृष्ट्वा ऋचं ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ।
तदक्षरं महातेजाः किमेतदिति लोककृत् ॥१७

तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वर ।
द्विमात्रमक्षर जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥१८
तत पुनर्द्विमात्र तु चिन्तयामास चाक्षरम् ।
प्रादुर्भूत च रक्त तच्छेदने गृह्य सा यजु ॥१९
इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो व सविता पुन ।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजु स्मृतम् ॥२०
ततो वेद द्विमात्र तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ।
द्विमात्र चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षर पुनरीश्वर ॥२१

एकमात्र–महाघोष–श्वेत वर्ण वाला तथा सुनिर्मल वह ओङ्कार अक्षर को महादेव ने वेद समझा था ॥१५॥ उस अक्षर का चिन्तन करने वाले स्वयम्भू के रक्त प्रादुर्भूत हुआ और वह प्रथम देव कहा गया है ॥१६॥ उसके प्रथम ऋग्वेद को "अग्निमीले पुरोहितम्" इस ऋचा को ब्रह्माजी ने देखा और फिर चिन्तन मे लग गये, महान् तेज वाले तथा लोको के कर्त्ता ने विचार किया कि यह अक्षर क्या है ? ॥१७॥ इस प्रकार से उसके चिन्तन करते हुए महेश्वर ने उससे ईशत्व से दो मात्रा वाला द्विमात्र अक्षर उत्पन्न किया ॥१८॥ इसके पश्चात् फिर द्विमात्र अक्षर का चिन्तन किया । फिर उसके छेदन मे रक्त वर्ण वाला यजु प्रादुर्भूत हुआ ॥१९॥ जिसकी ऋचा यह है—"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो व सविता पुन" । ऋग्वेद तो एकमात्र है और यजु द्विमात्र कहा गया है ॥२०॥ इसके पश्चात् वेद को द्विमात्र देखकर फिर ईश्वर ब्रह्मा उस अक्षर को द्विमात्र चिन्तन करने मे सलग्न हो गये थे ॥२१॥

तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कार सम्बभूव ह ।
ततस्तदक्षर ब्रह्मा ओङ्कार समचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्तत पीतामृच चैव समुत्थिताम् ।
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ।
चिन्तयित्वा च भगवान्निमन्ध्य यत्रिरक्षरम् ।
त्रिवर्ण यत् त्रिपत्रणमोङ्कार ब्रह्मसज्ञितम् ॥२४

ततश्च व त्रिसयोगान् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ।
लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यं च सहितं त्रिदिवं त्रिकम् ।।२५
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं चैव शाश्वतम् ।
तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः ।।२६
तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः ।
चतुर्द्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ।
तमोङ्कारं स कृत्वादौ विज्ञेयः स स्वयम्भुवः ।।२७
चतुर्मुखमुखारास्मादजायन्त चतुर्द्दश ।
नानावर्णाः स्वराः दिव्यमाद्यं तच्च तदक्षरम् ।
तस्मात् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवा स्मृताः ।।२८।।

इस प्रकार से उनके चिन्तन करते हुए ओङ्कार समुत्पन्न हुआ । इसके पश्चात् उस अक्षर ओङ्कार का ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ।।२२।। इसके अनन्तर समुत्थित पीत वर्ण वाली ऋचा को देखा जिसका स्वरूप है— अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।।२३।। इसके पश्चात् उस महान् तेज वाले ने समुत्पन्न वेदों को देखकर भगवान ने तीनों सन्ध्याओं में जो निरन्तर था उसका चिन्तन किया जोकि तीन वर्ण वाला त्रिपवर्ग ब्रह्म की संज्ञा से युक्त ओङ्कार था ।।२४।। इसके पश्चात् तीन के सयोग से तीन वर्ण वाला वह अक्षर लक्ष्य और अलक्ष्य से प्रदृश्य त्रिदिव के सहित त्रिदिव त्रिक त्रिमात्र त्रिपद त्रियोग और शाश्वत वह अक्षर था उसका प्रभु ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ।।२५।।२६।। इससे वह स्वयम्भू के ब्रह्म रूप उस अक्षर को चतुर्दश मुख वाले देव को जोकि दीप्त तेज वाला था देखा । उसने उस ओङ्कार को आगे करके उसे स्वयम्भू का ही जानना चाहिए ।।२७।। उस चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुख से चौदह उत्पन्न हुए और नाना वर्ण वाले स्वर तथा आद्य वह दिव्य अक्षर उत्पन्न हुए । इससे अकार प्रभव तिरेसठ वर्ण कहे गये हैं ।।२८।।

तस्य साधारणाधर्मि वर्णानान्तु स्वयम्भुवः ।
अकाररूप आदौ तु स्थितः स प्रथमः स्वरः ।।२९
ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्द्दश महामुखाः ।
मनवः सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वराः ।।३०

चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञित ।
ब्रह्मकल्प समाख्यात सर्ववर्ण प्रजापति ॥३१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनु स्वायम्भुव स्मृत ।
अकारस्तु स विज्ञेय श्वेतवर्ण स्वयम्भुव ॥३२
द्वितियात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुख स्मृत ।
नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्ण पाण्डुर उच्यते ॥३३
तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषा वर ।
यजुर्मय स चादित्यो यजुर्वेदो यत स्मृत ॥३४
ईकार स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्ण प्रतापवान् ।
तत क्षत्र प्रवर्त्तन्ति तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रिय ॥३५

इसके अनन्तर वर्णों के साधारण अर्थ के लिये स्वयम्भू का अकार रूप आदि में स्थित हुआ जोकि प्रथम स्वर कहा जाता है ॥२९॥ इसके उपरान्त उन स्वरों से चौदह महामुख मनु उत्पन्न होते हैं जोकि मन्वन्तर मे विश्व स्वर हैं ॥३०॥ चतुर्दश मुख वाला जो अकार है वह ब्रह्म की सज्ञा से युक्त है ब्रह्म-कल्प अर्थात् ब्रह्म के ही सदृश, सब वर्ण और प्रजापति कहा गया है ॥३१॥ उसके प्रथम मुख से स्वायम्भुव मनु कहा गया है वह अकार तो स्वयम्भू का श्वेत वर्ण जानना चाहिए ॥३२॥ द्वितीय उसके मुख से आकार मुख कहा गया है वह नाम स्वारोचिष है और उसका वर्ण पाण्डुर कहा गया है ॥३३॥ उसके तीसरे मुख से यजु मे श्रेष्ठ इकार है । वह आदित्य यजुर्मय है इसीसे वह यजुर्वेद कहा गया है ॥३४॥ ईकार प्रताप वाला रक्तवर्ण से युक्त मनु जानने के योग्य है । इससे क्षत्र प्रवृत होता है । इसीलिये क्षत्रिय रक्त होता है ॥३५॥

चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकार स्वर उच्यते ।
वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्र स मनुस्तामस स्मृत ॥३६
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ।
पीतको वर्ण तश्चैव मनुश्चापि चरिष्णव ॥३७
तत षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कार कपिल. स्मृत ।
वरिष्ठश्च तत षष्ठो विजय स महातपा. ॥३८

सप्तमात्त मुखात्तस्य ततो वैवस्वतो मनु ।
ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णन कृष्ण उच्यते ॥३९
अष्टामात्ता मुखात्तस्य ऋकार श्यामवर्णत ।
श्यामाक्षरसवर्णश्च तत सावर्णिरुच्यते ॥४०॥
मुखात्त नवमात्तस्य लृकारो नवम स्मृत ।
धूम्रो वर्ण तथापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ॥४१
दशमात्ता मुखात्तस्य लृकार प्रभ रुच्यते ।
समश्च व सवर्णश्च वभौ सावर्णिको मनु ॥४२

उसके सप्तम मुख से ऋकार स्वर कहा जाता है। यह वर्ण से ताम्र कहा गया है और यह तामस मनु प्रसिद्ध हुआ है ॥३६॥ उसके पञ्चम मुख से ऊकार नाम वाला उत्पन्न होता है। यह वर्ण से पीत तथा चरिष्ण मनु कहा गया है ॥३७॥ इसके पश्चात् उसके छठे मख से ओङ्कार हुआ जो कपिल कहा गया है। वह षष्ठ मन्व में वरिष्ठ विजय और महान् रूप वाला है ॥३८॥ उसके सप्तम मुख से वैवस्वत मनु हुए जिसका स्वर ऋकार है और वर्ण कृष्ण कहा जाता है ॥३९॥ उसके अष्टम मुख से ऋकार हुआ वर्ण श्याम है। श्यामाक्षर सवर्ण होता है इसी लिये वह सावर्णि कहा जाता है ॥४०॥ नवम मुख से उसके लृकार हुआ जो नवम कहा गया है। यह वर्ण से धूम्र होता है और धूम्र मनु ही कहा जाता है ॥४१॥ उसके दशम मख से लृ कार होता है जोकि प्रभु कहा जाता है। यह सम और सवर्ण है इसी लिये सावर्णिक मनु इस नाम से कहा गया है ॥४२॥

मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यत ।
पिशङ्गो वर्णतश्चव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥४३
द्वादशात्त मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ।
पिशङ्गो भस्मवर्णाभ पिशङ्गो मनुरुच्यते ॥४४
त्रयोदशा मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ।
पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तम ॥४५
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ।
कर्बुरो वर्णतश्चव मनु सावर्णिरुच्यते ॥४६

इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पत ।
विज्ञेया हि यथातत्त्व स्वरतो वर्णतस्तथा ॥४७
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् वृता हि वै ।
तस्मात्तेषा सवर्णत्वाद न्वयस्तु प्रकीर्तित ॥४८
सवर्णा सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजा ।
तस्मात् प्रजाना लोकेऽस्मिन् सवर्णा सर्वसन्धय ॥४८
भविष्यन्ति यथाशील वर्णाश्च न्यायतोऽर्थत ।
अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेया स्वरा इति ॥५०

एकादश मुख से उसके एकार हुआ जो मनु कहा जाता है। वर्ण से यह पिशङ्ग होता है इसी लिये पिशङ्ग इस नाम से कहा जाता है ॥४ ॥ उसके बारहवें मुख से ऐकार नाम वाला हुआ। वह पिशङ्ग और भस्म के वर्ण की आभा के समान आभा वाला था इसे पिशङ्ग मनु कहा जाता है ॥४४॥ उसके तेरहवें मुख से ओकार वर्ण उत्पन्न हुआ है। यह पञ्च वर्णा से युक्त उत्तम वर्ण ओकार है ॥४५॥ उसके चौदहवें मुख से औकार वर्ण हुआ। वह वर्ण से कर्बुर और सावार्णी मनु कहा जाता है ॥४६॥ ये मनु स्वर और वर्ण कल्प से जानने चाहिए। ये स्वर और वर्ण से ही यथातत्व और हैं ॥४७॥ क्योंकि स्वर पर स्वर मे सर्वाङ्गत हुए हैं। इसालिये उनके सवण होने से अन्वय कहा गया है ॥४८॥ ये सवर्ण और कल्प मे होने वाले सदृश उत्पन्न हुए है। इसलिये इस लोक मे प्रजाओ के सर्व सन्धि वाले ये सवर्ण होते हैं ॥४६॥ यथाशील न्याय से और अथ से ये होगे। अभ्यास से सन्धियाँ भी हैं इसी से इ हें स्वर जानना चाहिए ॥५०॥

॥ प्रकर्ण २७—ऋषि वंश कीर्त्तन ॥

भृगो ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदु खयो ।
शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तर विचारणौ॥१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

सा तु नारायण देव पतिमासाद्य शोभनम् ।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ॥२
तस्यास्तु मानसा पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिण ।
ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥ ३
द्वे तु कन्ये स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्च व तयो पुत्रौ दृढव्रतौ ॥४

पाण्डुश्च व मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ।
मनस्विन्या मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ॥५
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायत ।
पीवर्यां वेदशिरस पुत्रा वंशकरा स्मृता ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगा ॥ ६

पाण्डोश्च पुण्डरीकाया द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ।
तयो पुत्राश्च पात्राश्च भार्गवाणां परस्परम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीते मरीचे शृणुत प्रजा ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भृगु से ख्याति ने सुख दुःख के स्वामी समस्त प्राणधारियों को शुभ तथा अशुभ को ग्रहण करने वाले मन्वन्तर के विचार करने वाले धाता और विधाता दो देव उत्पन्न किये थे ॥ १ ॥ उनकी ज्येष्ठ भगिनी लोकभाविनी श्री देवी थी। उसने नारायण देव को अपना पति प्राप्त किया जो कि परम शोभन थे। उस साध्वी देवी से नारायण के पुत्र बल और उत्साह उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ उसके अन्य दिव्यचारी मानस पुत्र थे जो कि पुण्य-कर्म करने वाले देवों के विमानों का वहन किया करते हैं ॥ ३ ॥ दो कन्याऐं हुईं जो विधाता और धाता की भार्या हुई थी। उन दोनों के आयति और नियति नाम वाले दृढव्रत दो पुत्र हुए ॥ ४ ॥ पाडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए। मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उसका पुत्र वेदशिरा हुआ जो मूर्द्धन्या में उत्पन्न हुआ था। वेदशिरा से पीवरी में वंश चलाने वाले पुत्र कहे गये हैं। ये सब वेद के पारगामी ऋषिगण मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुए ॥ ६ ॥

पाण्डु से पुण्डरीका में द्युतिमान आत्मज हुआ। द्युतिमान और सृजमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनो के पुत्र और पौत्र आपस मे भार्गवों के हुए। स्वायम्भुव के अन्तर व्यतीत हो जाने पर अब मरीचि की प्रजा के विषय मे श्रवण करिये ॥ ७ ॥

पत्नी मरीचे सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम् ।
प्रजायते पूर्णमास कन्याश्चेमा निबोधत ।
तुष्टि पृष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचिति शुभा ॥८
पूर्णमास सरस्वत्या द्वौ पुत्रवुदपादयत् ।
विरजश्चैव धर्मिष्ठ पर्वसश्चैव तावुभौ ॥९
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुत ।
सुधामसुतवैराज प्राच्यान्दिशि समाश्रित ॥१०
लोकपाल सुधर्मात्मा गौरीपुत्र प्रतापवान् ।
पर्वस सर्वगणाना प्रविष्ट स महायशा ।११
पर्वम पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ ।
यज्ञवामश्च श्रीमन्त सुत काश्यपमेव च ।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१२
स्मृतिश्चाङ्गिरस पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुता ॥१३
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।
तथैव भरताग्निश्च कीर्त्तिमन्तश्च तावुभौ ॥१४

मरीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास उत्पन्न होता है। और उसके जो कन्याऐ हुई उन्हे समझ लो। तुष्टि, पुष्टि, त्विषा, अपचिति और शुभा ये कन्याऐ हुई ॥ ८ ॥ पूर्णमास ने सरस्वती मे ही पुत्र उत्पन्न किये थे जिनका नाम विरज और धर्मिष्ठ पर्वस था। ये दोनो पुत्र थे ॥ ९ ॥ विरज का पत्र बडा विद्वान सुधामा इस नाम से विश्रुत था। सुधामा का पुत्र वैराज था जो कि पूर्व दिशा का आश्रय लेकर स्थित रहता था ॥ १० ॥ लोकपाल, सुधर्मात्मा और प्रताप वाला गौरी पुत्र पर्वस

प्रीति पुत्र धीमान दत्तात्रि की पत्नी ने सुभक्षान्ति बहुत से पत्रो का प्रसव किया था। वे सब स्वायम्भवान्तर मे पौलस्त्य इस नाम से विख्यात् तथा कहे गये थ ॥ २३ ॥ क्षमा ने प्रजापति पलह के पत्रो को उत्पन्न किया। वे सब ही अग्निवचस थ जिनकी कीर्त्ति लोको मे प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ वे कदम अम्ब रीष और सहिष्णु ये तीन हैं और धनक पीवान ऋषि तथा पीवरी शभ कन्या थी ॥ २५ ॥ कदम की पत्नी श्रुति आत्रयी ने पुत्रो को जन्म दिया। पुत्र शङ्खपद था तथा काम्या कन्या थी ॥ २६ ॥ वह धीमान शङ्खपद लोको का पालक और प्रजापति था। दक्षिण दिशा मे रत होकर काम्या को प्रियव्रत के लिये दे दिया था। काम्या न प्रियव्रत से स्वायम्भुव के समान पुत्रों को प्राप्ति की थी। पत्र दश थ और दो कन्या उनमे थी जिन्होने यहाँ क्षत्र को सम्प्रवृत्त किया था ॥ २७—२८ ॥

पुत्रो धनकपीवाश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुत ।
यशोधारी विजज्ञ व कामदेव सुमध्यम ॥२९
ऋतो क्रतुसम पुत्रो विजज्ञ सन्तति शुभा ।
नपा भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्व रेतस ।
षष्ट्य तानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुता ॥३०
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ।
आभूतसम्प्लवात्सवे पतङ्गसहचारिण ॥३१
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते ।
पवसस्य स्नुपे ते व पूणमाससुतस्य व ॥३२
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा व सप्त जज्ञिरे ।
ज्यायसी च स्वसा तेपा पुण्डरीका सुमध्यमा ॥ ३
जननी सा द्युतिमत पाण्डोस्तु महिषी प्रिया ।
अस्या स्त्विमे यवीयासो वासिष्ठा सप्त विश्रुता ॥३४
रज पुत्रोऽर्द्धवाहुश्च सवनश्चाधनश्च य ।
सुतपा शुक्ल इत्येते सवे सप्तर्षय स्मृता ॥३५
रजसो चाप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी ।

प्रतीच्यां दिशि राजन्यं केतुमन्तं प्रजापतिम् ॥३६
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ।
स्वायम्भुवेन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥३७
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्त्तितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥३८

पुत्र धनक पीवान् था जो सहिष्ण के नाम से विश्रुत हुआ। यशोधारी ने सुमध्यम कामदेव को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ ऋतु का क्रतु के तुल्य ही पुत्र हुआ और वह शुभा सन्तति थी । इनकी कोई भी भार्या नहीं थी और न इनका कोई पुत्र ही था क्योंकि वे सभी ऊर्द्ध रेता थे । ये सब साठ हजार थे जो बालखिल्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३० ॥ सूर्य को परिवृत करके ये अरुण के आगे जाया करते हैं और भूत सम्प्लव में लेकर ये सब पतङ्ग (सूर्य) के ही सहचरण करने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ भगिनी दो छोटी थी जिनका नाम पुण्या और आत्म सुमति था । वे दोनों पर्वस की स्नुषा थी जो कि पूर्णमास का पुत्र था ॥ ३२ ॥ ऊर्जा में वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी ॥ ३३ ॥ वह द्युतिमान् की माता थी और पाण्डु की प्यारी रानी थी । इसमें ये यवीयान् सात वासिष्ठ प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३४ ॥ रज, पुत्र, अर्द्धबाहु, सवन, अधन सुतपा और शुक्ल ये सब सप्तर्षि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥ यशस्विनी मार्कण्डेयी रज से जनन किया । प्रतीची दिशा में प्रजापति राजन्य केतुमान् को उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ उन महात्मा वासिष्ठों के नामों से गोत्र हैं । ये स्वायम्भुव अन्तर में अतीत हो गये हैं । अब अग्नि की प्रजा का श्रवण करो ॥ ३ ॥ यह ऋषियों का सर्ग अनुबन्ध के सहित कह दिया गया है । अब विस्तार से तथा आनुपूर्वी के साथ अग्नि की प्रजा को सुनो ॥ ३८ ॥

॥ प्रकर्ण २८—अग्नि वंश वर्णन ॥

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ॥१
पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः ।

शुचि शौरस्तु विज्ञ य' स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु ते ॥२
निर्मथ्य पवमानस्तु शुचि शौरस्तु य स्मृत ।
पावका वद्युताश्च व तेषा स्थानानि यानि च ॥३
पवमानात्मजश्चव कव्यवाहन उच्यते ।
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाह' शुचे सुत ॥४
देवानां हव्यवाहोऽग्नि पितृणां कव्यवाहन ।
सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नय ॥५
एतेषा पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवव तु ।
वक्ष्यामि नामतस्तेषा प्रविभाग पृथक पृथक ॥६
वद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मण सुत ।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुत ॥७

स्वायम्भुवान्तर मे जो यह अग्नि था वह बहुत अभिमान वाला था। यह ब्रह्माजी का मन से उत्पन्न होने वाला मानस पुत्र था उससे स्वाहा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ यह पावक पवमान और पावमान इन नामों से कहा गया है। शुचि शौर और विज्ञय ये तीन स्वाहा के पुत्र थे ॥ २ ॥ पवमान निमथन करके शुचि और शौर जो कहा गया है। पावक और वद्युत उनके ये स्थान हैं ॥ ३ ॥ पवमान का आत्मज कव्यवाहन कहा जाता है। पावक से सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह था ॥ ४ ॥ देवों का जो अग्नि है वह हव्यवाह होता है और पितृगण का जो अग्नि होता है वह कव्यवाहन कहा जाता है। सहरक्ष नामक जो अग्नि है वह असुरों का कहा गया है। इस प्रकार इन तीनों के पृथक-पृथक् तीन ये अग्नि होते हैं ॥ ५ ॥ इनके जो पुत्र तथा पौत्र हैं वे उन्चास हैं। उनके पृथक-पृथक प्रविभाग नाम से बतलाये जायेंगे ॥ ६ ॥ वद्युत नामक जो अग्नि है वह लौकिक अग्नि है और प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मौदन अग्नि उसका पुत्र है जो भरत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ॥

वैश्वानरमुखस्तस्य मह' काव्यो ह्यपां रस ।
अमृतोऽथर्वणा पूर्वं मथित' पुष्करोदधौ ।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्य' चाथर्वण सुत ॥८

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वण सुत ।
तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्‌ चाथर्वण सुत. ॥९
अथ य पवमानोऽग्निर्निर्मन्थ्या कविभि स्मृत ।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तय पुत्रद्वय स्मृतम् ॥१०
शस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यं स्मृतो हव्यवाहन ।
द्वितीयस्तु सुन प्रोक्त शुक्रोऽग्निर्यं प्रणीयते ॥११
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शस्यस्याग्ने सुतावुभौ ।
शस्यास्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहन ।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजै स्मृत ॥१२
कावेरी कृष्णवेणीञ्च नर्मदा यमुनान्तथा ।
गोदावरी वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशा कौशिकीञ्चैव शतद्रु सरयून्तथा ।
सीता सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनी पावनी तथा ॥१४

उसका वैश्वानरमुख, मह काव्य और अपारस, अमृत ये नाम है पहिले अथर्वणो ने पुष्करोदधि मे मथन किया था । वह अथर्वा लौकिक अग्नि है जो दध्यङ् चाथवण का पुत्र है ॥ ८ ॥ अथर्वा भृगु को समझना चाहिए । अङ्गिरा अथर्वण का पुत्र है । उससे वह लौकिक अग्नि दध्यङ् चाथर्वण पुत्र है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर जो पवमान अग्नि है वह कवियो के द्वारा निर्मन्थ्या कहा गया है । वह गार्हपत्य अग्नि जानना चाहिए । उससे दो पुत्र कहे गये हैं ॥१०॥ जो अग्नि हव्यवाहन कहा गया है वह आहवनीय अग्नि कहे जाने के योग्य है । दूसरा जो सुत कहा गया है जो शुक्र अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार से शस्याग्नि के सभ्य और अवसथ्य ये दो पुत्र हैं । शस्य तो सोलह हैं । हव्य वाहन ने नदी को चाहा । जो यह आहवनीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है ॥ १२ ॥ कावेरी, कृष्ण वेणी, नमदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी तथा पावनी ये नदियो के सोलह स्थान हैं ॥ १४ ॥

तासु षोडशधात्मान प्रविभज्य पृथक् पृथक् ।

आत्मान व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव स ॥१५
धिष्ण्यो दिव्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णय ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्तिता ॥१६
इत्येते व नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ।
तेषा विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नय ।
तान् शृणुध्व समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥१७
ऋतु प्रवाहणोऽग्नीध्र पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विधीयन्ते यथास्थान सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥१८
अनिर्देश्या यवाच्यानामग्नीना शृणुत क्रमम् ।
सम्राडग्नि कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिक ॥१९
सम्राडग्नि स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजा ।
अधस्तात्पर्यदन्यस्तु द्वितीय सोऽत्र दृश्यते ॥२०
प्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ।
ब्रह्मज्योतिवसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२१

इन उपर्युक्त सोलह नदियों में अपने आपको सोलह में पृथक् पृथक् विभाग करके उनमे अपने आपको कर दिया और वह धिष्णीषु हो गया ॥१५। उनमे धिष्ण्य दिव्यभिचारिण्य जो उत्पन्न हुए वे धिष्णय हुए। क्योंकि वे धिष्णीयों में उत्पन्न हुए थे इससे वे धिष्णय कहे गये हैं ॥ १६ ॥ इतने ये नदी पुत्र हैं जो धिष्णीष मे ही उत्पन्न हुए थे। उनमे विहार करने के योग्य जो उपस्थेय अग्नि हैं अब उनको सक्षेप से कहे जाने वालो को यथा तथा श्रवण करो ॥१७॥ ऋतु प्रवाहण अग्नीध्र और पहिले दूसरे धिष्णि सौत्य दिवस में सवन के क्रम से यथा स्थान किये जाते हैं ॥ १८ ॥ अनिर्देश्य अग्य वाच्य अग्नियों के क्रम को सुनो। द्वितीयोत्तर वैदिक जो कृशानु होता है वह सम्राट अग्नि है ॥ १९ ॥ आठ सम्राट् अग्नि कहे गये हैं जिनका कि द्विज उपस्थान किया करते हैं। नीचे अन्य पर्यद् जो यहाँ पर वह द्वितीय दिखलाई देता है ॥ २ ॥ प्रतद्वोचे नभो नाम वाला वह चार विभावित होता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २१ ॥

हव्यसूर्य्याद्यसंसृष्ट: शामित्रे स विभाव्यते ।
विश्वस्याथ समुद्रोऽग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्यते ॥२२
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्य्यां स कीर्त्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२३
अजैकपादुपस्थेय स वै शालामुखीयक ।
अनुद्देश्योऽप्यहिर्बुध्न्य: सोऽग्निर्गृहपति स्मृत ॥२४
शंस्यस्यैव सुता सर्वे उपस्थेया द्विजै स्मृता ।
ततो विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥२५
क्रतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विह्रियन्ते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥२६
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्नि स्मृतो यो हव्यवाहन ।
शान्तिश्चाग्नि: प्रचेतास्तु द्वितीय सत्य उच्यते ॥२७
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।
अवक्षुरच्छावाकस्तु भुव स्थाने विभाव्यते ॥२८

हव्य सूर्यादि से असंसृष्ट वह शामित्र कर्म मे प्रकट होता है । विश्वस्याथ समुद्र अग्नि वह ब्रह्म स्थान मे कीर्त्तित किया जाता है ॥ २२ ॥ ऋतु धामा और सुज्योति अग्नि जो होता है वह औदुम्बरी मे कहा जाता है । ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २३ ॥ अजैक पादुपस्थेय शालामुखीयक वह अनुद्देश्य भी अहिर्बुध्न्य वह अग्नि गृहपति कहा गया है ॥ २४ ॥ ये सब शंस्य के ही पुत्र हैं और द्विजो के द्वारा उपस्थान करने के योग्य कहे गये हैं । अब इसके अनन्तर विहरणीय आठ उसके पुत्र है उन्हे बतलाते हैं ॥ २५ ॥ ऋतु, प्रवहण, अग्नीध्र और वहाँ पर स्थित दूसरे धिष्णि जो यथा स्थान विहरणीय होते हैं और सौत्य दिवस मे सवन के क्रम से हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् पौत्रेय जो हव्यवाहन कहा गया है, शान्ति और प्रचेता अग्नि द्वितीय सत्य कहा जाता है ॥ २७ ॥ तथा विश्वदेव अग्नि जो है वह तो ब्रह्म स्थान मे कहा जाता है । अवक्षु और अच्छावाक तो भुव स्थान मे विभावित (प्रकट) होता है ॥ २८ ॥

उशीराग्नि सवीयस्त नष्ठाय सविभाव्यते ।
अष्टमस्त व्यरत्तिस्तु मार्जालीय प्रकीर्त्तित ॥२९
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनान्येन चव हि ।
तयोय पावको नाम स चापा गभ उच्यते ॥३०
अग्नि सोऽवभृयो ज्ञ य सम्यक प्राप्याप्सु हूयते ।
हृच्छयस्तस्मुतो ह्यग्निजठरे यो नणा स्थित ॥३१
मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्नि सुत स्मत ।
परस्परोच्छित सोऽग्निभू ताना ह विभुमहान् ॥ २
पुत्र सोऽग्नेमन्युमतो घोर सवत्त क स्मृत ।
पिबन्नप स वसति समुद्र वडवामुख ॥ ३
समुद्र वासिन पुत्र सहरक्षो विभाव्यते ।
सहरक्षसुत क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ॥३४
क्रव्यादोऽग्नि सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ।
इत्येते पावकस्याग्ने पुत्रा ह्येव प्रकीर्तिता ॥ ५

सवीय उशीराग्नि तो नैष्ठीय सम्भावित होता है । जो आठवाँ व्यरत्ति है वह तो मार्जालीय कहा गया है ॥ १ ॥ जो धिष्ण्य विहरणीय अन्य सौम्य के द्वारा होते हैं उनमे एक पावक नाम वाला है वह अपा गभ कहा जाया करता है ॥ ३ ॥ वह अवभृथ अग्नि जानना चाहिए जो भली भाँति प्राप्य जलों मे हूयमान किया जाता है । उसका पत्र हृच्छय अग्नि होता है जो मनुष्यों के जठर मे स्थित होता है ॥ ३१ ॥ जठर की रहने वाली जाठर अग्नि का विद्वान् मन्युमान् अग्नि सुत कहा गया है । परस्पर मे उच्छित वह अग्नि भूतो का महान् विभु होता है ॥ ३२ ॥ वह मन्युमान् अग्नि का पत्र घोर सम्वत्तक कहा गया है । वह जल का पान करता हुआ वडवामुख समुद्र मे निवास किया करता है ॥ ३३ ॥ समु में निवास करने वाले का पत्र सहरक्ष विभावित होता है । सहरक्ष का पुत्र क्षाम होता है वह मनष्यो के घरों को जला दिया करता है ॥ ३४ ॥ क्रव्याद अग्नि उसका पत्र है जो मरे हुए मनुष्यो के शव का भोजन किया करता है । इतने ये पावक अग्नि के पत्र हैं जो कि इस प्रकार से कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

तत: शुचेस्तु यं सौरेर्गन्धर्वैरसुरावृतं ।
मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्नि समिध्यते ॥३६
आयुर्नामाथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्र स शावान्नामत: सुत. ॥३७
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवन स्मृत ।
पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुत स महायशा. ॥३८
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्ने स महान् स्मृत ।
प्रायश्चित्तेऽथ भीमाना हुत भुक्ते हवि सदा ॥३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।
अनीकवान् वासृजवाश्च रक्षोहा पितृकृतथा ।
सुरभिर्वसुरत्नादी प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०
शुचेरग्ने प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश ।
इत्येते वह्नय प्रोक्ता प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥४१
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामै सह सुरोत्तमै ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिन ॥४२

इसके अनन्तर शुचि सौरि का जिन असुरावृत गन्धर्वों के द्वारा अरणी मे मथन किया हुआ अग्नि है वह अग्नि समिद्ध किया जाता है ॥ ३६ ॥ वह भगवान् आयु नाम वाला होता है जो पशु मे प्रणीत किया जाता है । आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् पुत्र है वह शावान् नाम वाला पुत्र कहा गया है ॥ ३७ ॥ पाक यज्ञो मे जो अभिमानी अग्नि है वह सवन कहा गया है । सवन अग्नि का पुत्र वह महान् यश वाला अद्भुत होता है ॥ ३८ ॥ अद्भुत अग्नि का भी पुत्र विविचि होता है जो कि महान् कहा गया है । वह भीमो के प्रायश्चित्त मे सर्वदा हवन किये हुए हवि को खाया करता है ॥ ३९ ॥ विविचि अग्नि का पुत्र अर्क है उसके पुत्र ये होते हैं जिनके नाम अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पितृ कृत् और सुरभि हैं जो रुक्मवान् वसुरत्नादि में प्रविष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ ये शुचि नामक अग्नि की प्रजा हैं और चौदह वह्नि हैं । ये वह्नि कहे गये हैं जो कि अध्वरो मे प्रणीत होते हैं ॥ ४१ ॥ सुरोत्तम यामो के साथ

आदि सर्ग मे अतीत हुए हैं जो स्वायम्भुव मन्तर मे पहिले जो अग्नि थे वे अभिमानी थे ॥ ४२ ॥

एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ।
स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहना ॥४३
काम्यनमित्तिकाजस्र ष्वेते कमस्ववस्थिता ।
पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लर्याम सुत सह ।
देवमहात्मभि पुण्यै प्रथमस्यान्तरे मनो ॥४४
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ।
तरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ।
सवे तपस्विनो ह्य ते सवे ह्यवभृथा स्तथा ।
प्रजाना पतय सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृता ॥४६
स्वारोचिषादिषु ज्ञया सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनै ॥४७
वर्त्तते वर्त्तमानश्च देवरिह सहाग्नय ।
अनागत सुरै साद्ध वर्त्ततेऽनागताग्नय ॥४८
इत्येष विनयोऽग्नीना मया प्रोक्तो यथातथम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पितृणां वक्ष्यते तत ॥४९

ये सब यहाँ पर चेतन और अचेतनों मे विहरणीय अग्नि हैं। ससार मैं स्थानाभिमानी हव्यवाहन पहिले थे ॥ ४३ ॥ ये सब कामना वाले काम्य कर्म तथा नैमित्तिक एव अजस्र कर्मों मे अवस्थित रहा करते हैं। पहिले अतीत मन्वन्तर में शुक्ल याम पुत्रो के साथ तथा मनु के जो कि प्रथम था उसके अन्तर मे पुण्यशील महात्मा और देवो के साथ था ॥ ४४ ॥ ये सब मैंने स्थानियों के स्थान बतला दिये हैं उनके द्वारा ही अतीत और अनागतो मे भी प्रसंख्यात हैं ॥ ४५ ॥ समस्त मन्वन्तरो मे जातवेदों के लक्षण कहे गये हैं। ये सब तपस्वी और सभी अवभृथ थे । ये सब प्रजाओ के पति और ज्योतिष्मान् कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ स्वारोचिष आदि और सावर्ण्य अन्त वाले सातों मन्वन्तरो मे सब मे

अनेक रूप और विविध प्रयोजनों के द्वारा जानने के योग्य होते हैं ॥ ४७ ॥ ये अग्नि वर्त्तमान देवो के साथ रहते हैं और अनागत सुरो के साथ अनागताग्नि होते हैं ॥ ४८ ॥ इतना यह मैंने अग्नियो का विनय यथातथ (ठीक-ठीक) कह दिया है । अब इसके आगे विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी के साथ पितृगणो का बतलाया जायगा ॥ ४९ ॥

॥ प्रकर्ण २९—देववश वर्णन ॥

ब्रह्मण सृजत पुत्रान् पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अम्भासि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवता ॥१
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै ।
तेषान्निसर्ग प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥२
देवासुरमनुष्याणा दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत ।
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपपक्षिना ॥३
मन्वादय षड्नवस्तान् पितृन परिचक्षते ।
ऋतव पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुति ॥४
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि ।
एते स्वायम्भुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५
अग्निष्वात्ता स्मृता नाम्ना तथा वर्हिषदश्च वै ।
अयज्वानस्तथा तेषामासन् वै गृहमेधिन ।
अग्निष्वात्ता स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्न य ॥६
यज्वानस्तेषु ये ह्यासन् पितर सोमपीथिन ।
स्मृता वर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिण ।
ऋतव पितरो देवा शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मत ॥७

श्री सूतजी ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर मे पुत्रो के सृजन करने वाले ब्रह्मा जी के मनुष्य असुर और देवो ने उन जलो को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पितृ की भाँति मन्थमान इससे पितर उत्पन्न हुए । उनका निसर्ग तो इसके पूर्व मे ही कह दिया गया है किन्तु अब इस समय उसका विस्तार कहा जाता है ॥२॥ देवासुर मनुष्यो का सर्ग देखकर देव बोले—पितृ की भाँति मन्यमान ने उपया-

आर्त्तवेय स्थाणु जङ्गम उत्पन्न होते हैं। आर्तव पितर हैं और ऋतु पितामह होते है ॥ १८ ॥ ये सब सुमेरु से प्रसूत होते हैं और प्रजाति करते हैं। इसी लिये सुमेरु जो होता है वह प्रजाओ का प्रपितामह कहा गया है ॥ १९ ॥ ये स्थानो मे स्थानी और स्थानाभिमानी कहे गये हैं। तन्मय होने से उसी नाम से आख्यात और तद्‌रमा कहे गये हैं ॥ २ ॥ जो इनका प्रजापति कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। सम्वत्सर अग्नि कहा गया है और द्विजो के द्वारा ऋत भी वह कहा जाता है ॥ २१ ॥

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्तत ।
मासा षडतवो ज्ञ यास्तपा पञ्चार्त्तवा सुता ॥२२
द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव पक्षिससृपतामपि ।
स्थावराणा च पञ्चाना पुष्प कालार्त्तवा स्मृतम् ॥२३
ऋतुत्वमार्त्तवत्व च पितृत्व च प्रकीर्तितम् ।
इत्येत पितरो ज्ञ या ऋतवश्चार्त्तवाश्च ये ॥२४
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे ।
तस्मादेतेऽपि पितर आर्त्तवा इति न श्रुतम् ॥२५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिता कालाभिमानिन ।
स्थानाभिमानिनो ह्य त तिष्ठन्तीह प्रसयमात् ॥२६
अग्निष्वात्ता बर्हिषद पितरो द्विविधा स्मृता ।
प्रजाते च पितृभ्यस्तु द्व कन्ये लोकविश्रुत ॥२७
मेना च धारिणी चैव याभ्या विश्वमिद धृतम् ।
पितरस्त निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददु शुभे ।
त उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव त उभे ॥२८

ऋत इस नाम से ही उससे ऋतु उत्पन्न हुए हैं। मास छै ऋतुऐं समझनी चाहिए और उनके पाँच आर्त्तव पुत्र होते हैं ॥ २२ ॥ द्विपद चतुष्पद पक्षी सर्पण करने वाले और स्थावर इन पाँचो को पुष्प कालार्त्तव कहा गया है ॥ २३ ॥ ऋतुत्व आर्त्तवत्व और पितृत्व कहा गया है। ये सब ऋतु और जो आर्त्तव हैं वे सब पितर जानने के योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ उनसे ही समस्त

प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये आर्त्तव भी पितर हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २५ ॥ समस्त मन्वन्तरो मे ये कालाभिमानी तथा स्थानाभिमानी प्रसयम से यहाँ रहा करते हैं ॥ २६ ॥ अग्निष्वात्त और बर्हिषद ऐसे ये दो प्रकार के पितर कहे गये हैं। इन पितरों से लोक प्रसिद्ध दो कन्याऐं उत्पन्न हुई थी ॥ २७ ॥ जिनका नाम मेना और धारिणी है। जिन दोनो के द्वारा ही यह समस्त विश्व धारण किया हुआ होता है। पितरो ने वे अपनी दोनों कन्याओ को धम के लिए दे दिया था। वे शुभ दोनो ही ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थी ॥ २८ ॥

अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषा मेना तु मानसी ।
धारणी मानसी श्चैव कन्या बर्हिषदा स्मृता ॥२९
मेरोस्तु धारणी नाम पत्न्यर्थं व्यसृजन् शुभाम् ।
पितरस्ते बर्हिषद स्मृता ये सोमपीथिन ॥३०
अग्निष्वात्तास्तु ता मेना पत्नी हिमवते ददु ।
स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥३१
यस्ते हिमवत· पत्नी मैनाक सान्वसूयत ।
गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधे ।
मैनाकस्यानुज क्रौञ्च क्रौञ्चद्वीपो यत· स्मृत ॥३२
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ।
मन्दर सुपुवे पुत्र तिस्र कन्याश्च विश्रुता ॥३३
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायति पुन ।
धातुश्चैवायति पत्नी विधातुर्नियति स्मृता ॥३४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वै कीर्तिता प्रजा ।
सुपुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥३५
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिप ।
सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनबर्हिप ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगा ॥३६

जो अग्निष्वात्त कहे गये हैं उनकी मेना मानसी है और धारणी तथा

भृर्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ॥१४
अत्रिश्चव वसिष्ठश्च सप्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अग्नीध्रश्चातिबाहुश्च मेधा मेधातिथिवसु ॥१५
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन पुत्र एव च ।
मनो स्वायम्भुवस्यते दश पुत्रा महौजस ॥१६

ये सब स्वायम्भुव अन्तर मे सोमपायी थे । ये त्विषिमान् महान् बल वाले और वीयशील गण थे ॥ ८ ॥ उनमे इन्द्र सदा विश्व का भोग करने वाला प्रथम विभु था । जो असुर थे वे उनके दाय प्राप्त करने वाले बान्धव थ ॥ ९ ॥ सुपण यक्ष गन्धव पिशाच उरग राक्षस ये आठ पितृगण के साथ नासत्य देवयोनि है ॥ १० ॥ स्वायम्भुव अन्तर मे इनकी सहस्रो प्रजा व्यतीत हो गई जो कि प्रभाव रूप आयु और बल से सम्पन्न थ ॥ ११ ॥ यहाँ उनका पूण विस्तार से वणन नही किया जाता है । यहाँ उसका प्रसङ्ग न होवे । स्वायम्भुव निसग अब मनु जानना चाहिए ॥ १२ ॥ अतीत मे वतमान वैवस्वत ने उसे देखा था जो कि प्रजाओं के देवताओ के ऋषियो के और पितरो के साथ मे था ॥ १३ ॥ उनमे सप्तर्षि पहले जो थ अब उनके विषय मे समझ लो भृगु अङ्गिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह क्रतु अत्रि और वसिष्ठ ये सात स्वायम्भुव अन्तर मे थे । अग्नीध्र अतिबाहु मेधा मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन और पुत्र ये स्वायम्भुव मनु के महान् ओज वाले दश पुत्र थे ॥ १४ १५ १६ ।

वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजान प्रथमेऽन्तरे ।
सासुरन्तरसगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
सपिशाचमनुष्यश्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम् ॥१७
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तु वपशतैरपि ।
बहुत्वान्नामधेयाना सङ्ख्या तेषां कुले तथा ॥१८
या वै प्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कालेन बहुनातीता अयनाब्दयुगक्रम ॥१९
क एष भगवान् काल सर्वभूतापहारक ।

कस्य योनि किमादिश्च किन्तत्त्व स किमात्मज ॥२०
किमस्य चक्षु का मूर्ति के चास्यावयव' स्मृता ।
किंनामधेय कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥२१

प्रथम मन्वन्तर मे वायु के द्वारा कहे हुए महान् सत्त्व वाले राजा थे । वह सुरो के सहित, गन्धर्वो से युक्त, यक्ष, उरग और राक्षसो के सहित, पिशाचो से युक्त तथा मनुष्यो के सहित और सुपर्ण तथा अप्सराओ के गण से युक्त था ॥ १७ ॥ बहुत, से नामो की सख्या उनके कुल मे थी क्योकि बहुत सारे नाम थे उन सब का आनुपूर्वी के साथ वर्णन करने का कार्य सौ वर्ष मे भी पूर्ण नही किया जा सकता है ॥ १८ ॥ जो यज्ञ कुल के नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर मे थे वे अयन वर्ष और युग के क्रम से बहुत अधिक काल मे अतीत हो गये हैं ॥१९॥ ऋषियो ने कहा—यह भगवान् काल जो कि समस्त प्राणियो के अपहरण करने वाला है, कौन है ? किसकी यह योनि है ? इसके आदि मे क्या था ? इस का वास्तविक तत्त्व क्या है ? और यह किस का आत्मज है ? ॥ २० ॥ इसके नेत्र क्या हैं ? इसकी मूर्त्ति कैसी है ? और इसके अन्य शरीरावयव कैसे कहे गये है ? इसका नाम क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? हम सब यह बात आप से पूछ रहे है, कृपा कर हमे आप यह सब बताइये ॥ २१ ॥

श्रूयता कालसद्भाव श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
सूर्ययोनिर्निमेषादि सङ्ख्याचक्षु स उच्यते ॥२२
मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च स ।
सवत्सरशत त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापति ॥२३
पञ्चाना प्रविभक्ताना कालावस्था निबोधत ।
दिनार्द्ध मासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ॥२४
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ॥२५
वत्सर पञ्चमस्तेषा काल स युगसज्ञित ।
तेषान्तु तत्त्व वक्ष्यामि कीर्त्यमान निबोधत ॥२६

श्रीसूतजी ने कहा— अब आप सब लोग इस काल का सद्भाव मुझसे श्रवण करे और उसको सुनकर हृदय मे अवधारण भी करें। इसकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं। इसकी संख्या वधु निमेष आदि होते हैं जोकि कहा जाता है ॥२२॥ अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्र ही इसकी मूर्त्ति है और निमेष ही इसकी मूर्त्ति के अवयव होते है। कलात्मक सौ सम्वत्सर ही इसका नाम होता है। वर्त्तमान भूत और भविष्य के स्वरूप वाला वह प्रजापति है ॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से विभज्य पाँचों को ही काल की अवस्था जान लो जोकि पाँच विभाग दिन अर्धमास (पक्ष) ऋतु मास और अयन ये होते हैं इन्ही पाँचो का विभाग है और उसी से काल को अवस्था होती है ॥२४॥ सम्वत्सर प्रथम होता है—दूसरा परिवत्सर तृतीय इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पञ्चम वत्सर होता है। उनका जो काल होता है वही युग इस संज्ञा से युक्त होता है। अब उनका मैं तत्त्व बतलाता हूँ आप लोग उसे भली भाँति समझ लेवें ॥२५॥२६॥

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।
आदित्ये यस्त्वसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ॥२७
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां साररमयः खगः ।
स इडावत्सरः सोमः पुराणे निश्चलो मतः ॥२८
यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः ।
आनुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥२९
अहङ्कारात् रुदन् रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणश्च यः ।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नीललोहितः ।
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३०
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगान् कालात्मा प्रपितामहः ।
ऋक्साम यजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥३१
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः ।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥३२
यस्मात् कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि ।

ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायु' कर्मणा तथा ।
योजित' प्रविभागाना दिवसानाञ्च भास्कर ॥३३

जो ऋतु अग्नि कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है । यह आदित्य का सार है, कालाग्नि परिवत्सर होता है ॥२७॥ शुक्ल कृष्ण गति है और जलो का सारमय रस है । वह इडावत्सर सोम है जो कि पुराण मे निश्चय किया गया है ॥२८॥ जो यह सप्त-सप्त तनुओ से लोको को तपता है वह लोक का आणुकर्त्ता वायु है और वत्सर होता है ॥२९॥ अहङ्कार से रुदन करता हुआ रुद्र ब्रह्म से सद्भूत हुआ । वह रुद्र उनका नीललोहित वत्सर उत्पन्न हुआ । अब मैं उनका कहा गया तत्त्व बतलाता हूँ जिसे आप समझ लेवें ॥३०॥ अङ्गो और प्रत्यङ्गो के संयोग से कालात्मा अर्थात् काल के स्वरूप वाला प्रपितामह है जो कि ऋक साम और यजु का जन्मस्थान है और पाँचो का पति ईश्वर है ॥३१॥ वह अग्नि यजु और सोम है वह प्रजापति है । जो सम्वत्सर कहा गया है और मनीषियो के द्वारा जो अग्नि सूर्य कहा गया है ॥३२॥ क्योकि काल के विभागो का, मास, ऋतु और अयन का तथा ग्रह, नक्षत्र शीत, उष्ण वर्षा, आयु, कर्मों का और प्रविभाग दिवसो का भास्कर ही योजित है ॥३३॥

वैकारिक प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र प्रजापति ।
एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तु पितामह ॥३४
आदित्य सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृत ।
प्रभवश्चात्य यश्चैव भूताना तेन भास्कर ॥३५
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीय परिवत्सर ।
सोम सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामह ॥३६
आजीव सर्वभूताना योगक्षेमकृदीश्वर ।
अवेक्षमाण. सतत बिभर्ति जगदशुभि' ॥३७
तिथीना पर्वसन्धीना पूर्णिमादर्शयोरपि ।
योनिर्निशा करो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापति ॥३८
तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मक ।

प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ॥३९
कर्मभि प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्त्त क ।
प्राणापानसमानानां वायूनाञ्च प्रवर्तक ॥४०

वकारिक-प्रसङ्ग अ त्मा वाला ब्रह्मा पुत्र प्रजापति है । एक दिन मास और ऋतु पितामह वह ॥३४॥ आदित्य सविता भानु जीवन और ब्रह्मा के द्वारा सत्कार प्राप्त होने वाला प्रभव और प्राणियों का अत्यय वह होता इसीसे भास्कर कहा जाता है । ॥३५॥ ताराभिमानी तीसरा परिवत्सर जानना चाहिए । सोम समस्त ओषधियों का स्वामी हो । है इसी कारण से वह प्रपितामह होता है या कहा गया है ॥३६॥ यह समस्त जीवों का आजीव है योग क्षेम के करने वाला और ईश्वर है । सर्वदा निरीक्षण करता हुआ इस जगत् का किरणों के द्वारा भरण किया करता है ॥३७। तिथियों का तथा पर्व सन्धियों का एवं पूर्णिमा और दर्शक का भी जो निशाकर योनि होता है और जो अमृतात्मा एवं प्रजापति है । ३८॥ उससे वह पितृमान ऋक यजु और छन्द स्वरूप वाला सोम प्राणापान समानादि तथा व्यान और उदानात्मक कर्मों के के द्वारा लोक में प्राणियों की समस्त चेष्टाओं का प्रवर्त्त क होता है और प्राण अपान एव समान वायुओं का प्रवर्तक होता है ॥३९॥४ ॥

पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृति बलात्मनाम् ।
समानकालकरणं क्रिया सम्पादयन्निव ॥४१
सर्वात्मा सर्वलोकानामावह प्रवहादिभि ।
विधाता सर्वभूतानां क्षमी नित्य प्रभञ्जन ॥४२
योनिरग्नेरपां भूमे रवेश्चन्द्रमसश्च य ।
वायु प्रजापतिर्भूत लोकात्मा प्रपितामह ॥४३
प्रजापति मुखैर्देवै सम्यगिष्टफलार्थिभि ।
त्रिभिरेव कपालैस्तु त्र्यम्बकरोपधिक्षये ।
इज्यते भगवान् यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ॥४४
गायत्री चैव त्रिष्टुप च जगती चैव या स्मृता ।
त्र्यम्बका नामत प्रोक्ता योनय सवनस्य ता ॥४५

तामिरेकत्वभूतामिस्त्रिविधामि स्ववीयत ।
त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रि कपाल स वै स्मृत ॥४६
इत्येतत्पञ्चवर्ष हि युग प्रोक्त मनीषिभि, ।
यच्चै व पञ्चधात्मा वै प्रोक्त सवत्सरो द्विजै ।
सैक पट्क विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतव किल ॥८७

पांचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जलात्मकों का समान भाल करने वाला तथा क्रियाओं को मानो सम्पादन करता हुआ- सर्वात्मा और प्रवहादि के द्वारा समस्त लोकों का आवहन करने वाला तथा निरन्तर भूतों का विधाता और क्षमी प्रभञ्जन नित्य होता है ॥४१॥४२॥ जो अग्नि, जल, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा का जन्म स्थान योनि है वह वायु भूतों का प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह है ॥४ ॥ भली भाँति इष्ट फलों के मर्यो प्रजापति प्रधान देवा के द्वारा तथा तीनो ही कपालो के द्वारा और ओषधि दायमे अम्बकों के द्वारा भगवान् का यजन किया जाता है इसी कारण से वह त्र्यम्बक इस नाम से कहे जाते हैं ॥४४॥ गायत्री, त्रिष्टुप् जगती जो कही गई हैं और नाम से त्र्यम्बका कही गई है वे सवन की योनि है ॥४६। एकत्वभूत उन तीनो प्रकार वाली से अपने वीर्य से तीन साधन के पुरोडाश वाला है इसी लिये वह त्रिकपाल कहा गया है ॥४८॥ यह इतना पाँच वर्ष का मनीषियो ने युग कहा है और यही पञ्च प्रकार के स्वरूप वाला द्विजों के द्वारा सम्वत्सर कहा गया है। वह एक पट्क पैदा किया जोकि मधु आदि ऋतुऐं हैं ॥४७॥

ऋतुपुत्रात्त व पञ्च इति सर्ग समासत ।
इत्येष पवमानो वै प्राणिना जीवितानि तु ॥४८
नदी वेगसमायुक्त कालो धावति सहरन् ।
अहोरात्रकरस्तस्मात् स वायुरभवत्पुन ॥४९
एते प्रजाना पतय प्रधाना सर्वदेहिनाम् ।
पितर सव लोकाना लोकात्मान प्रकीर्तिता ॥५०
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्यन् समभवद्भव ।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामह ॥५१

ईश्वर सव भूताना प्रणवायोपपद्यते ।
आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भव ॥५२
अग्नि सवत्सर सूयश्चन्द्रमा वायुरेव च ।
युगाभिमानी कालात्मा नित्य सक्षेपकृद्विभु ।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स्न इद्वत्सर उच्यते ॥५३
रुद्राविष्टा भगवता जगत्यस्मिन् स्वतेजसा ।
आश्रयाश्रयसयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा ॥५४

ऋतुओ के पुत्र आर्त्तव पाँच हैं। सक्षेप से यही सर्ग होता है। यह प्राणियो के जीवनो का पवमान होता है ॥४८॥ नदी के वेग के समान ही काल सबका सहार करता हुआ दौड़ा करता है अहोरात्र करने वाला है इसमे वह फिर वायु हो गया था ॥४९॥ ये सब प्रजाओ प्रजान पति हैं और समस्त देह धारियो के पति है और समस्त लोको के पितर है अतएव वे लोका मा प्रकल्पित हुए हैं ॥५२॥ ध्यान मे स्थित ब्रह्माजी के मुख मे भव उत्पन्न हुए थे जो कि ऋषि विप्र महादेव भूतात्मा और प्रपितामह हैं। ॥५ ॥ समस्त प्राणियो के ईश्वर प्रणव के लिये उपपन्न होते हैं। आत्म वेश मे भूतो के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सम्भव होते हैं ॥५२॥ अग्नि सम्वत्सर सूय चन्द्रमा और वायु ये युगाभिमानी काल के स्वरूप वाले विभु और नित्य ही सक्षेप करने वाले होते है उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं वह इद्वत्सर कहे जाते है ।५३॥ आश्रयाश्रय के सयोग से तनुओ से तथा नामो के द्वारा इस जगती तल मे भगवान के द्वारा अपने तेज रुद्राविष्ट होते हैं ॥५४॥

ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम् ।
द्वितीय भद्रसयोग सन्ततस्यैककारकम् ॥५५
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ।
तस्माद्वै सवथा भद्रस्तद्वद्भिरभिपूज्यते ॥५६
पति पतीना भगवान् प्रजेशाना प्रजापति ।
भवन सवभूताना सर्वेषा नीललोहित ।
ओषधी प्रतिसन्धत्त रुद्र क्षीणा पुन पुन ॥५७

इत्येषा यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः ।
बहुत्वात् परिसङ्ख्यातु पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥५८
इमं वंश प्रजेशाना महता पुण्यकर्मणाम् ।
कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीना महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥५६

इसके अनन्तर उसके बीच मे लोको पर अनुग्रह करने वाला सन्तत का एक करने वाला द्वितीय भद्र सयोग होता है ॥ ५५ ॥ देवत्व, पितृत्व और इसका कालत्व यत्पर है उसमे सवथा भद्र उसी के भाँति विद्वानों के द्वारा अभि-पूजित होते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान् पतियो के भी पति और प्रजा के ईशो के भी प्रजापति तथा समस्त प्राणियो जन्म स्थान एव नील लोहित हैं । रुद्र पुन पुन क्षीण हुई ओषधियो का सन्धान करते हैं ॥ ५७ ॥ इनकी जो सन्तति है वह प्रमाण के स्वरूप मे कही नही जा सकती है । बहुत होने के कारण उनकी परि-सख्या भी नही की जा सकती है क्योकि पुत्र और पौत्रो का कुछ भी अन्त नही है ॥ ५८ ॥ महान् एव पुण्य कर्म वाले इन प्रजेशो का जो यह वश है जिनकी कि कीर्त्ति स्थिर है उसका कीर्त्तन करते हुए महती सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

॥ प्रकर्ण ३०—युगधर्म निरूपण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ।
ओङ्कारमक्षर ब्रह्म त्रिवर्णश्चादित स्मृतम् ॥१
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजू षि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ।
चतुर्द्दश महात्मानो देवाना ये तु देवता ॥३
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वग सर्वयोगवित् ।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥४
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभि सह ।
अक्षरान्निसृता सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥५
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परम पदम् ।

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञित ॥६
कृत त्रेता द्वापरश्च युगादि कलिना सह ।
परिवर्तमानस्तरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥७
देवतास्तु तदोद्विग्ना कालस्य वशमागता ।
न शक्नुवन्ति त मान संस्थापयितुमात्मना ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय कहेंगे । ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और यह आदि से तीन वर्ण वाला कहा गया है ॥१॥ जो जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वसा ही ऋक यजु साम वायु अग्नि और जल होता है ॥ २ ॥ उस अक्षर से ही फिर अन्य उत्पन्न हुए हैं । वे चौदह महान् आत्मा वाले है जो कि देवो के भी देवता होते है ॥ ३ ॥ उनमे सर्वगत सर्वग और सर्वयोग का वेत्ता लोको के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आदि मध्य तथा अन्त कहा जाता है ॥ ४ ॥ सप्तर्षि इन्द्र और जो देव हैं वे पितरो के साथ सब अक्षर देवो के देव महेश्वर से ही नि सृत हुए हैं ॥ ५ ॥ यहाँ और परलोक मे हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं । मैंने युग की संज्ञा से युक्त काल पहिले ही बतला दिया है ॥ ६ ॥ कृतयुग त्रेता द्वापर युगादि इन कलियुग के साथ परिवर्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रम माण होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश मे आ गये और अपने से उस मान की संस्थापना न कर सके हैं ॥ ७ ८ ॥

तदा ते सांख्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य च ।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपा ॥९
समाधाय मनस्तीव्र सहस्र परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेव भीता कालस्य व तदा ॥१०
अय हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुख ।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ॥११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्त तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह को व काम प्रदीयताम् ॥१२
संहरिष्याम्यह सर्वं न वृथाय परिश्रम ।

उवाच देवो भगवान् स्वयङ्काल सुदुर्जय ॥१३
यदतस्य मुख श्वेत चतुर्जिह्व हि लक्ष्यते ।
एतत् कृतयुग नाम तस्य कालस्य व मुखम् ।
असौ देव सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुख ॥१४

उस समय वे वाग्यत अर्थात् मौन होकर मन्वन्तर के आदि मे देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रो परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समाहित करके तब काल से डरे हुए महादेव के शरण मे प्राप्त हुए ॥ ९-१० ॥ यह चार मूर्त्ति तथा चार मुखो वाला देवो का ईश काल था । हे महेश्वर ! हे महादेव ! अगाध इसको कौन जानता है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उस चार मुखो वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत । आपका क्या काम है मुझे बताओ । १२ ॥ सुदुर्जय स्वय भगवान् कालदेव ने कहा—वह सब मैं तुम्हारा कार्य करूँगा । यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नही होगा ॥ १३ ॥ जो यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है । यह सुरो मे श्रेष्ठ ब्रह्मा देव है और वैवस्वत मुख है ॥ १४ ॥

यदेतद्रक्तवर्णाभ तृतीय व स्मृत मया ।
त्रिजिह्व लेलिहान तु एतत् त्रेतायुग द्विजा ॥१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ।
ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नय ।
दृष्ट्वा चैवाग्नयो विप्रा कालजिह्वा प्रवर्त्तते ॥१६
यदेतद्वै मुख भीम द्विजिह्व रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापर नाम तद्युगम् ॥१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभ तुरीय रक्तलोचनम् ।
एकजिह्व पृथु श्याम लेलिहान पुन पुन ॥१८
तत कलियुग घोर सर्वलोकभयङ्करम् ।
कालस्य तु मुख ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ॥१९
न मुख नापि निर्वाण तस्मिन् भवति वै युगे ।

कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥२०
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥२१

जो यह रक्त वर्ण की आभा वाला मेरे द्वारा आवृत्त तृतीय कहा गया है तीन जीभ वाला इसको चाटता हुआ हे द्विजो ! वह त्रेतायुग है ॥ १५ ॥ यहाँ पर भगवान् महेश्वर से यज्ञ करने में प्रवृत्ति होती है । तब से यहाँ यज्ञ का याजन किया जाता है । तीन जीभ और तीन ही अग्नि हैं । हे द्विजो ! अग्नि यजन करके वाम जिह्वा की प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥ यह जो दो जीभ वाला रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाला भयानक मुख है यहाँ दो पाद वाला हो जाऊँगा । यह द्वापर नाम वाला युग है ॥ १७ ॥ यह जो चतुर्थ कृष्ण वर्ण की आभा वाला रक्त लोचन एक जीभ वाला अधिक श्याम को बार-बार चाटने वाला है वह घोर समस्त लोकों को भयङ्कर कलियुग है । यह चौथा कल्प का भीषण मुख है ॥ १६ ॥ इस युग में न तो कोई सुख ही होता है और न निर्वाण (मोक्ष) ही होता है । इस युग में प्रजा भी सब काल से ग्रस्त रहा करेगी ॥ २० ॥ कृतयुग में ब्रह्मा पूजा के योग्य होते हैं । त्रेता में यज्ञ कहा जाता है । द्वापर में विष्णु पूजे जाते हैं और मैं चारों में पूज्य होता हूँ ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलात्रय ।
सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिमहेश्वर ॥२२
अहं जनो जनयिता (च) काल कालप्रवर्त्तक ।
युगकर्ता तथा चैव पर परपरायण ॥२३
तस्मात् कलियुग प्राप्य लोकाना हितकारणात् ।
अभयार्थञ्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४
तदा भव्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमा ।
तस्मादहं न त्याज्य च कलिं प्राप्य महौजस ॥२५
एवमुक्तास्तत सर्वा देवता ऋषिभि सह ।
प्रणम्य शिरसा देव पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६
महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युति ।

भीषण सर्वभूताना कथ कालश्चतुर्मुख ॥२७
एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुख ।
लोकसरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वश ॥२८

ब्रह्मा, विष्णु और यम ये तीनो काल की ही कलाए है। समस्त रात्रो मे चतुर्मूर्त्ति महेश्वर होते है ॥ २२ ॥ मै जो हू हमारा जान करने वाला काल है जो काल का प्रवर्त्तक होता है तथा वह युग का करने वाला और पर परायण होता है ॥ २३ ॥ इससे लोको के हित कारण से कलियुग को प्राप्त करके दोनो लोको मे देवो का आश्रयाथ हूँ ॥ २४ ॥ हे सुरोत्तमो ! तब उस समय मैं भव्य और पूज्य हो जाऊँगा। इससे महान् ओज वालो ! कलियुग को पाकर कुछ भी भय नही करना चाहिए ॥ २५ ॥ इस प्रकार से ऋषियो के साथ समस्त देव कहे गये और उन्होने शिर से देव को प्रणाम करके फिर वे जगत् के पति से बोले ॥ २६ ॥ देवर्षियो ने कहा—महान् तेज वाला, महान् काय वाला और महान् वीर्य वाला तथा महाद्युति से युक्त समस्त प्राणियों के लिये भीषण काल चार मुखो वाला कैसे हुआ है ॥ २७ ॥ श्री महादेव जी ने कहा—यह काल चार मूर्तियो वाला, चार दाढो वाला और चार मुख वाला लोको के सरक्षण के लिये सभी ओर से अतिक्रमण करता है ॥ २८ ॥

नासाध्य विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे ।
काल सृजति भूतानि पुन सहरति क्रमात् ॥२९
सर्वे कालस्य वशगा न काल कस्यचिद्वशे ।
तस्मात्तु सर्वभूतानि काल कलयते सदा ॥३०
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्तति ।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तायुगक्रमात् । ३१
एक पद परिक्रम्य पदानामेकसप्तति ।
यदा काल प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षय ॥३२
एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।
नमस्कृतश्च तै सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३
एव स काले भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।

पुन पुन सहरते सृजते च पुन पुन ॥३४
अतो म वन्तरे चव दर्विपितृमानव ।
पूज्यते म वानीशो भयात् कालस्य तस्य व ।३५

समस्त चराचर मे इसको कुछ भी असाध्य नही होता है । यह काल ही प्राणियो का सृजन किया करता है और यही क्रम से उनका सहार करता है ॥ ९ ॥ सभी काल के वश म जान वाले होते हैं किन्तु यह काल किसी के भी वश मे रहन वाला नही होता है । इसीलिये समस्त प्राणियो का यह काल स । कलन किया करता है ॥ ३ ॥ इसके विक्रम के इकहत्तर पद है जो पहिले कहे गये है । वे यहाँ परिवृत्त युगो के क्रम से मन्वन्तर होते हैं ॥ ३१ ॥ एक पद का परिक्रम करके जो कि इकहत्तर पद है । जब काल प्रक्रमण किया करता है तब मन्वन्तर का क्षय होता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से भगवान् ने देवर्षि पितृ और मानवो स कहा और उन कहन के पश्चात् उन सबके द्वारा नमस्कृत होकर वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गय ॥ ३३ ॥ इस प्रकार से वह भगवान् काल मे देव ऋषि पितर और मानवो को पुन पुन सृजन किया करते है और बार बार सहार भी किया करते है ॥ ३४ । इसीलिये उस काल के भय से मन्वन्तर मे देवर्षि पितृ मानवो के द्वारा भगवान् ईश पूजे जाते है ॥ ३५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विज ।
पशस्य महादेव तस्य पुण्यफल महत् ।
तस्माद् वा शिव गत्वा अवतीर्य च भूतले ॥ ६
ऋषयश्चव देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम् ।
तप इच्छन्ति भूयिष्ठ कर्तुं श्रमपरायणा ।
अवताराद् बलि प्राप्य करोति च पुन पुन ॥३७
एव कालान्तरे सर्वे यऽतीता वै सहस्रश ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् देवराजपयस्तथा ॥ ८
दद्यापि पौरवो राजा मनुश्चेक्ष्वाकुवशजा ।
महायोगबलोपेता कालान्तरमुपासते ॥ ९
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये त्रेतायुगे कृते ।

सप्तर्पिभिश्चैव सार्द्ध भाव्ये त्रेतायुगे पुन ।
गोत्राणा क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्तिता ॥४०
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभि सह ।
कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।
नरा पातकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृता ॥४१
मन्वन्तराणा सप्ताना सान्तानार्था श्रुति स्मृति· ।
एवमेतेपु सर्वेपु युगक्षयक्रमस्तथा ॥४२

इसीलिये द्विज को इस कलियुग मे समस्त प्रयत्नो से तपश्चर्या करनी चाहिए। महादेव की शरणागति मे जाने वाले को उसके पुण्य का महान् फल होता है । इससे देवता स्वर्ग मे जाकर फिर इस भूतल मे अवतरित होते हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिगण और देववृन्द इस सुदारुण कलियुग को पाकर धर्म परायण होते हुए बहुत अधिक तप करने की इच्छा किया करते हैं और इस कलियुग को प्राप्त करके पुन पुन अवतारो को किया करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से कालान्तर में हजारो ही जो सब हैं वे अतीत हो गये है । इसी तरह से इस वैवस्वत अन्तर मे देवराजर्षि अतीत हो गये हैं ॥ ३८ ॥ देवापि पौरव राजा मनु और इक्ष्वाकु के वंश में जन्मने वाले जो कि महान् योग के बल से युक्त थे कालान्तर की उपासना करते हैं ॥ ३९ ॥ उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग के निष्पन्न होने पर फिर सप्तर्षियो के साथ भाव्य त्रेता युग मे गोत्र और क्षत्रियो के भविष्य प्रकीर्त्तित किये गये हैं ॥ ४० ॥ द्वापर के अन्त मे ऋषियो के साथ क्षत्रिय प्रतिष्ठित होते हैं । कृतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर इस कलियुग मे मनुष्य जो हैं वे सब पातकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥ ४१ ॥ सात मन्वन्तरो की सान्तानाथ श्रुति और स्मृति है । तथा इसी प्रकार से इन सब में युगो के क्षय होने का क्रम होता है ॥ ४२ ॥

परस्पर युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भव ।
यथा वै प्रकृतिस्तेभ्य प्रवृत्ताना यथा क्षयम् ॥४३
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
क्रियन्ते कुलटा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपै ।

त्रेताशीति सहस्राणि सन्ध्यया मुनिभि सह।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्याशस्त्रिशत स्मत ॥५७
अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु सङ्ख्यया।
द्वापरे द्व सहस्र तु वर्षाणा सम्प्रकीर्तितम् ॥५८
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्याशो द्विशतस्तथा।
उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ॥५९
कलि वर्षसहस्र तु प्राहु सख्याविदो जना।
तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्याश शतमेव च।६०
सहारपाद सन्ध्यातश्चतुर्थो व कलौ युगे।
ससन्ध्यानि सहाशानि चत्वारि तु युगानि व ॥६१
एतद् द्वादशसाहस्र चतुर्युगमिति स्मतम्।
एव पाद सहस्राणि श्लोकाना पञ्च पञ्च च ॥६२
सन्ध्यासन्ध्याशकरेव द्व सहस्र तथाऽपरे।
एव द्वादशसाहस्र पुराण कवयो विदु ॥६३
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पाद तथा युगम्।
यथा युग चतुष्पाद विधात्रा विहित स्वयम्।
चतुष्पाद पुराणान्तु ब्रह्मणा विहित पुरा ॥६४

त्रेता युग मुनियो के साथ सन्ध्या से सहस्र थ। उसकी त्रिशती सन्ध्या तथा त्रिशत वाला सन्ध्याश कहा गया है ॥ ५७ ॥ त्रेता का अनुषङ्ग पाद ग था से तीन सहस्र वाला था। द्वापर मे दो सहस्र वष कहे गये है ॥ ५८ ॥ उस द्वापर युग की भी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्याश भी दो सौ वाला था। उपोद्घात तीसरा द्वापर मे पाद कहा जाता है ॥ ५९ ॥ सख्या के ज्ञाता विद्वजन कलियुग को एक सहस्र वष वाला बताते है। उसकी भी सन्ध्या एक सौ वाली शतिका है और उसका सन्ध्याश भी उसी प्रकार वाला एक सौ का है। कलियुग म चतुथ सहार पाद होता है। इस तरह सन्ध्या के साथ तथा अशों के सहित चार युगों का वणन किया गया है ॥ ६१। यह बारह सहस्र का चतुय ग होता है जिसको कि अब बतलाया गया है। इसी प्रकार से पादों से

श्लोकों के पाँच पाँच सहस्र हैं ॥ ६२ ॥ तथा सन्ध्या और सन्ध्यांशकों के द्वारा दूसरे दो सहस्र होते हैं इस तरह से कवि लोग पुराणों को बारह सहस्र वाले कहा करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस तरह वेद चार पादों वाला है उसी प्रकार से युग भी चार पादों वाला होता है। जिस तरह विधाता ने स्वयं युग को चार पाद वाला बनाया है उसी तरह से पहिले ब्रह्माजी ने सुरों के भी चतुष्पाद का निर्माण किया था ॥ ६४ ॥

॥ प्रकर्ण ३१—स्वायम्भुव-वंश-कीर्तन ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥१
देवाश्च विविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपाः ।
ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ॥२
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशः स्वायम्भुवस्य तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत ॥३
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥४
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षन्निवेशिता ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥६
प्रियव्रतात् प्रजावन्तं वीरान् कन्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों में सब में यहाँ पर सब नाम और रूप से तुल्याभिमानी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ अनेक देव जो कि उस मन्वन्तर में अधिप थे ऋषिवृन्द और मानवगण ये सभी तुल्य अभिमान वाले थे ॥ २ ॥ स्वायम्भुव का वंश महर्षियों का सर्ग कह दिया गया है। अब विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से वर्णन किये जाने वाले का श्रवण करो ॥३॥ स्वायम्भुव मनु के उसी के समान दश पुत्र थे जिनके द्वारा यह सातों द्वीपों से

समन्वित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ यह भूमि प्रतिवर्ष निवेशित होती हुई समुद्र तथा आकरों वाली है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले आद्य त्रेतायुग में उस समय यह पृथ्वी इसी तरह से युक्त थी ॥ ५ ॥ राजा प्रियव्रत के पुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्रों के द्वारा यह प्रजा का सर्ग तपश्चर्या और योग से निवेशित की गई थी ॥ ६ ॥ राजा प्रियव्रत से जो कि प्रजा वाला एवं वीर था कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या महान् भाग्य वाली थी जो प्रजापति कर्दम को ब्याही गई थी ॥ ७ ॥

कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट कुक्षिश्च ते उभे ।
सर्वे वै भ्रातरः शूरा प्रजापतिसमा दश ॥८
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभु ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन सव एव च ॥९
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपास्ताश्च निबोधत ॥१०
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम् ।
प्लक्षद्वीपश्वरश्चापि तेन मेधातिथि कृत ॥११
शाल्मलौ तु वपुष्मन्त राजानमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्त कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभु ॥१२
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरश्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रत ॥१३
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभु ।
पुष्करे सवनस्यापि महावीत सुतोऽभवत् ।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४

दो कन्या सौ पुत्र और सम्राट कुक्षि वे दोनों थे उन दोनों के प्रजापति के समान शूर भाई दश थे ॥ ८ ॥ उनके नाम ये हैं—अग्नीध्र वपुष्मान् मेधा मेधातिथि विभु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन और सर्व ये दश हैं ॥९॥ राजा प्रियव्रत ने सात इन राजाओं का सात द्वीपों में अभिषेक करके उन द्वीपों में धर्म नियुक्त कर दिया था उन द्वीपों के विषय में अब श्रवण करो ॥१० ॥

जम्बूद्वीप में महान् बल वाले अग्नीध्र को वहाँ का स्वामी बनाया था। प्लक्ष द्वीप में उसने मेधातिथि को वहाँ का राजा नियुक्त किया था ॥ ११ ॥ शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को राजा अभिषिक्त किया था। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् को प्रियव्रत प्रभु ने राजा बनाया था ॥ १२ ॥ क्रौञ्चद्वीप में द्युतिमान् को राजा होने की आज्ञा दी थी। प्रियव्रत ने शाकद्वीप में हव्य को वहाँ का राजा बनाया था ॥ १३ ॥ पुष्कर द्वीप में सवन का अभिषेक किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का भी महावीत नाम वाला पुत्र हुआ था। और एक धातकि पुत्र था ये दोनों शुभ पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ थे ॥ १४ ॥

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ॥१५
हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ।
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ॥१६
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥१७
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्तितम् ।
मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ॥१८
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् ।
मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ॥१९
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ।
एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ॥२०
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ॥२१

महावीत महात्मा ने उस नाम से वर्ष स्थापित किया था और धातकि के नाम से भी धातकीखण्ड कहा जाता है ॥ १५ ॥ हव्य ने शाक द्वीप के स्वामी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सात पुत्र थे जिनके नाम, जलद, कुमार,

सुकुमार मणिचक्र वसुमोद सुमोनाक और सातवाँ महाद्रम है। ये सातो पुत्रो के नाम हैं ॥ १६ ॥ जनद का जलद प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार दूसरा वर्ष कहा गया है ॥ १७ ॥ तृतीय सुकुमार का सुकुमार इसी नाम वाला वर्ष कहा गया है। मणिचक का चौथा मणीचक वर्ष है इसी नाम से कहा जाता है ॥ १ ॥ पाचवाँ वसुमोदका वसुमोदक और मोदाक का छठा मोदाक वर्ष कहा गया है ॥१६॥ सातवाँ महाद्रम के नाम का महाद्रुम वर्ष है। ये इनके नामो से सात वर्ष होते हैं ॥ २ ॥ क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हुए उनके नाम कुशल मनुग उष्ण पीवर अन्धकारक मुनि और दुन्दुभि ये द्युतिमान् राजा के पुत्र हुए थे ॥ २१ ॥

तेषा स्वनामभिर्द्देशा क्रौञ्चद्वीपाश्रया शुभा ।
उष्णस्योष्ण स्मृतो देश पीवरस्यापि पीवर ॥२२
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते ।
मुनेस्तु मुनिदेशो व दुन्दुभेर्दुन्दुभि स्मृत ।
एते जनपदा सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वरा ॥२३
ज्योतिष्मत कुशद्वीपे सप्त ते सुमहौजस ।
उद्भिदो वेणुमाश्च व स्वरथो लवणो धृति ।
षष्ठ प्रभाकरश्च व सप्तम कपिल स्मृत ॥२४
उद्भिद प्रथम वर्ष द्वितीय वेणुमण्डलम् ।
तृतीय स्वरथाकार चतुर्थ लवण स्मृतम् ॥२५
पञ्चम धृतिमद्वर्ष षष्ठ वर्ष प्रभाकरम् ।
सप्तम कपिल नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥२६
तेषा द्वीपा कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु ।
आश्रमाचारयुक्ताभि प्रजाभि समलकृता ॥२७
शाल्मलस्येश्वरा सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मत ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानमश्च व सुप्रभ सप्तमस्तथा ॥२८

इन सातों द्युतिमान् के पुत्रो के अपने २ नामो से क्रौञ्चद्वीप के अन्दर आश्रय वाले शुभ देश हुए। उष्ण का उष्ण पीवर का पीवर इस नाम वाला

देश था ॥२२॥ अन्धकारक के देश का नाम भी अन्धकार ही कहा जाता है। मुनि का मुनि देश और दुन्दुभि का दुन्दुभि इसी नाम वाला देश था। ये सात जनपद क्रौञ्च द्वीप मे परम भास्वर अर्थात् देदीप्यमान थे ॥२३॥ इसी तरह कुश द्वीप मे महान् ओज वाले ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है ॥२४॥ उद्भिद मे प्रथम वर्ष—वेणुमण्डल, दूसरा—तृतीय स्वैरथाकार—चौथा लवण—पाँचवाँ धृतिमान्—छठा प्रभाकर और सप्तम कपिल इस नाम वाला वर्ष था जो कि इन्ही नामो से सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ॥२५॥२६॥ उनके कुश द्वीप मे द्वीप उन्ही के समान हुए थे जो कि आश्रम एवं आचार से युक्त प्रजाओ से समलङ्कृत थे ॥२७॥ शाल्मलि द्वीप के वपुष्मान् के सात पुत्र हुए जो उसी द्वीप के अधिप हुए थे। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस और सुप्रभ ये नाम वाले थे ॥२८॥

श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहित ।
जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारित ॥२९
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानस स्यापि मानसः ।
सुप्रभ सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालका ॥३०
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम् ।
सप्त मेधातिथे पुत्रा प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपा ॥३१
ज्येष्ठ शान्तभयस्तेषा सप्तवर्षाणि तानि वै ।
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदय ।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२
तानि तेषा सनामानि सप्तवर्षाणि भागश ।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥३३
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तै सप्तद्वीपनिवासिभि ।
वर्णाश्रमाचारयुक्ता प्लक्षद्वीपे प्रजा कृता ॥३४
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै ।
ज्ञेय पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागश. ॥३५

श्वेत का श्वेत देश था तथा रोहित का रोहित, जीमूत का जीमूत,

हरित का हारित वद्यत का वद्यत मानस का मानस और सुप्रभ का सुप्रभ देश था और ये सातों पुत्र देशों के पालक थे जो कि देश उन्हीं सातों के नामों से प्रसिद्ध हैं ॥२६॥३ ॥ जम्बू द्वीप के बाद मैं सात द्वीप कहूँगा । मेधा तिथि के सात पुत्र हुए थे जो कि प्लक्ष द्वीप के स्वामी राजा हुए थे ॥३१॥ उनमें जो सबसे बड़ा था वह शान्तमय था । उनके भी सात पुत्र हुए थे । फिर शान्तमय के पीछे शिशिर सुखोदय आनन्द ध्रुव क्षेमक और सारथी शिव ये नाम वाले सात पुत्र थे ॥३२॥ उन सातों के नामों से ही विभाग पूर्वक सात वर्ष हुए । उन्होंने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन सातों को निवेशित किया था ॥ ३॥ मेधा तिथि के उन सात द्वीपों में निवास करने वाले पुत्रों ने वर्णों तथा आश्रमों के आचार से युक्त प्लक्ष द्वीप में प्रजा का सृजन किया था ॥३४॥ लक्ष द्वीपादि में तथा शाक द्वीपान्तरों में पाँचों में वर्णाश्रम के विभाग से धर्म जानने के योग्य है ॥३५॥

सुखमायुश्च रूपञ्च बलं धर्मश्च नित्यश ।
पञ्चस्वेतेप द्वीपेषु सर्व साधारण स्मृतम् ॥ ६
सप्तद्वीपपरिक्रान्त जम्बूद्वीप निबोधत ।
आग्नीध्र ज्येष्ठदायाद कन्यापुत्र महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वर नृपम् ॥ ७
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजस ।
ज्येष्ठो नाभि रिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुज ॥ ८
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृत ।
रम्य स्यात्पञ्चम पुत्रो हरिमान् षष्ठ उच्यते ॥३९
कुरुस्तु सप्तमस्तेषा भद्राश्वो ह्यष्टम स्मृत ।
नवम केतुमालस्तु तेषा देशान्निबोधत ॥४०
नाभेस्तु दक्षिण वर्षं हिमाह्वन्तु पिता ददौ ।
हेमकूट तु यस्य ददौ किम्पुरुषाय तत् ॥४१
नैषध यत् स्मृत वर्ष हरिवर्षाय तद्ददौ ।
मध्यम यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥४२

सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य ही इन पाँचो द्वीपो मे समस्त साधारण रूप मे स्थित कहे गये हैं ।।३६।। सात द्वीपो से परिक्रान्त जम्बू द्वीप को जानना चाहिए । राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र, ज्येष्ठदायाद, कन्या पुत्र और महाबल को उस जम्बू द्वीप मे वहाँ का राजा अभिषिक्त करके बनाया था ।३७। उसके पुत्र भी प्रजापति के समान ही ओज वाले हुए थे । उनमे जो सबसे बडा ज्येष्ठ था वह 'नाभि'–इस नाम से प्रसिद्ध था । उसका छोटा भाई किम्पुरुष था ।।३८।। तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य और षष्ठ हरिन्मान् तथा सातवाँ कुरु एव अष्टम भद्राश्व कहा गया है, नवम केतुमाल था । अब उनके देशो के विषय मे बतलाया जाता है उसका श्रवण करो ।।३९।।४०।। पिता ने नाभि को हिम नाम वाला दक्षिण देश दिया था और जो हेमकूट वर्ष था वह किम्पुरुष को दिया था ।।४१।। नैषध जो वर्ष था वह हरिवर्ष को दिया और जो सुमेरु के मध्यम था वह उसने इलावृत को दे दिया था ।।४२।।

नीलन्तु यत् स्मृत वर्ष रम्यायैतन् पिता ददौ ।
श्वेत यदुत्तर तस्मात् पित्रा दत्त हरिन्मते ।।४३
यदुत्तर शृङ्गवतो वर्ष तत् कुरवे ददौ ।
वर्ष माल्यवतश्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ।।४४
गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत् ।
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागश ।।४५
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रास्तानभ्यषिञ्चत ।
यथाक्रम स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थित ।।४६
इत्यैतै सप्तभि कृत्स्ना सप्तद्वीपा निवेशिता ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्ते पौत्रै स्वायम्भुवस्य तु ।।४७
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ।
तेषा स्वभावत सिद्धि सुखप्राया ह्ययत्नत ।।४८
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभय न च ।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्ता नोत्तमाधममध्यमा ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वश ।।४९

जो नील इस नाम वाला वर्ष था वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हरि मान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर मे वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दि या गया ॥४४॥ ग धमादन नाम वाला वर्ष केतु माल को दे दिया था। ये सब महान् भाग से नौ वर्ष हैं ॥४५॥ इन सबमें आग्नीध्र ने उन पुत्रो को अभिषिक्त कर दिया था और इनको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मा मा स्वय तपश्चर्या मे स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातो ने समस्त सप्त द्वीप निवेशित किये थे ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ अष्ट वर्ष थे उनको स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उनमे किसी भी प्रकार का विपर्यय नही था और वहाँ पर जरा (बुढापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नही होता था। उनमे कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नही थी और उनमे कोई भी उत्तम-मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नही थी। उनमे कोई भी युग की अवस्था नही थी और सभी को किसी भी क्षेत्र मे ऐसा नही होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्ग वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्र मेरुदेव्या महाद्युति।
ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताग्रज।
सोऽभिषिच्याथ भरत पुत्र प्राव्राज्यमास्थित ॥५१
हिमाह्व दक्षिण वर्ष भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद्भारत वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिक।
बभूव तस्मिस्तद्राज्य भरत सन्न्ययोजयत्।
पुत्र सङ्क्रामितश्रीको वन राजा विवेश स ॥५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुत ॥५४
परमेष्ठी सुतस्तस्य निधने तस्य शोभन

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भवस्तस्य सुतः स्मृतः ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रतावित्श्चापि तत्सुतः ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व में आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी मे पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियो का पूर्वज तथा राजाओं मे परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रो में सबसे बडा था। वह भरत भी, अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वयं सन्यास की अवस्था मे स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को सक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने सन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्र-द्युम्न इस नाम से ससार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और शोभन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता—इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रतावि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रतावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ॥५७
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ॥५९

जो नील द्रुम नाम वाला वर्ष था वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हिरण्मान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर में वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ॥४४॥ गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था। ये सब महान् भाग वाले नौ वर्ष हैं ॥४५॥ उन सबमें आग्नीध्र ने उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और सबको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातों ने समस्त सात द्वीप निवेशित किये थे ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ आठ वर्ष थे उनको स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उनमें किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था। उनमें कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमें कोई भी उत्तम मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नहीं थी। उनमें कोई भी युग की अवस्था नहीं थी और सभी को किसी भी क्षेत्र में ऐसा नहीं होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥५१॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२॥
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः सन्न्ययोजयत्।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥५३॥
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥५४॥
परमेष्ठी सुतश्चास्य निधने तस्य शोभनः

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमत ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भवस्तस्य सुत स्मृत ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रतापिश्चापि तत्सुत ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा। उसको हिमाह्व मे आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी मे पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियो का पूर्वज तथा राजाओ मे परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ मे भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रो मे सबसे बडा था। वह भरत भी अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वय सन्यास की अवस्था मे स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को सक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने सन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्र-द्युम्न इस नाम से ससार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और शोभन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता—इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रतापि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रतापेस्तु विभु पुत्र पृथुस्तस्य सुतो मत ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गय स्मृत ॥५७
गयस्य तु नर पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवन ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मज ॥५९

अग्निजस्य रज पुत्र शतजिद्रजसो मत ।
तस्य पुत्रशत त्वासीद्राजान मव एव ते ॥६०
विश्वज्योति प्रधाना यस्तरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
तरिद भारत वर्ष सप्तखण्ड कृत पुरा ॥६१
तेषा वशप्रसूतैस्तु भुक्त य भारती धरा ।
कृतत्रेतादियक्तानि युगाख्यान्येकसप्तति ॥६२
येऽतीतास्तय ग माद्ध राजानस्ते तद वया ।
स्वायम्भुवऽन्तरे पूर्व शतशोऽथ सहस्रश ॥६३
एष स्वायम्भव सर्गो येनेद पूरित जगत ।
ऋषिभिर्देवतश्चापि पितृग धवराक्षसे ॥६४
यक्षभूतपिशाचश्च मनुष्यमृगपक्षिभि ।
तेषा सृष्टिरिय लोके युग सह विवत्तते ॥६५

भताचि का पुत्र विभु और इसका पुत्र पृथु हुआ । पृथु का पत्र नक्त हुआ और नक्त का आत्मज गय नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५७॥ गय का पत्र नर हुआ और नर का आत्मज विराट नाम वाला उत्पन्न हुआ था । विराट का पुत्र महावीर्य हुआ तथा उसका पुत्र धीमान् उत्पन्न हुआ ॥५८॥ धीमान् का सुत महान् और महान् का पुत्र भौवन नामक उत्पन्न हुआ था । भौवन का सुत त्वष्टा और इसका पत्र अरिज नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥५९॥ अरिज का पुत्र रज हुआ और शतजित रज का पुत्र हुआ । उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए वे सभी राजा हुए थे ॥६ ॥ ये सब विश्व ज्योति के प्रधान वाले थे और उनके द्वारा ये सन्तति पर्याप्त रूप से वर्द्धित हुई थी उन्होंने ही इस भारतवर्ष को सात खण्डों वाला पहिले किया था ॥६१॥ उनके वश मे प्रसूत होने वालों के द्वारा इस भारत की भूमिका पूर्ण रूप से भोग किया गया । कृत त्रेतादि से युक्त इकहत्तर युग नाम वाले पर्यन्त इस भारती भूमि को भुक्त किया था ॥६२॥ उन युगो के साथ जो राजा अतीत हो गये थे वे उस अन्वय (वश) वाले थे जो स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले सकडो और सहस्रो की सख्या मे हुए थे ॥६३॥ यह स्वाय म्भुव सर्ग है जिससे यह समस्त जगतीतल पूरित हो रहा है जिसमे ऋषि देवता पितृगण गन्धर्व और राक्षस सभी है । इनके अतिरिक्त यक्ष भूत पिशाच

मनुष्य, मृग और पक्षी आदि सब है। इनकी यह सृष्टि लोक मे युगो के साथ विवर्त्तित होती है ॥६५॥

॥ भुवन विन्यास ॥

यदिद भारत वर्प यस्मिन् स्वायम्भुवादय ।
चतुर्दशैते मनव प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥१
ऐतद्वेदितु मिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम।
एतन् श्रुत्वा वचस्तेपामब्रवील्लोमहर्पण ॥२
पौराणिकस्तदा सूत ऋपीणा भावितात्मनाम् ।
एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहित ॥३
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि।
पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमा ॥४
तथा जनपदाना च विस्तर श्रोतुमर्हथ ।
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्पेऽस्मिन् भारते प्रजा ॥५
इद तु मध्यम चित्र शुभाशुभफलोदयम् ।
उत्तर यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिण च यत् ॥६
वर्पं यद्भारत नाम यत्रेय भारती प्रजा ।
भरणाच्च प्रजाना वै मनुभरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्प तद्भारत स्मृतम् । ७

ऋपियो ने कहा—जो यह भारतवर्प है जिसमे स्वायम्भुवादि चौदह मनु प्रजा के सग मे होते है ॥१॥ हे सत्तम ! हम इसे जानना चाहते हैं सो आप यह हमे बतलाइये । ऋपिगण के इस वचन को सुनकर लोमहर्पण महर्षि उनसे कहने लगे ॥२॥ उस समय मे महात्मा ऋपियो से पौराणिक सूतजी फिर पूण तथा समाहित होकर यह सब विपय विस्तारपूर्वक उनसे बोले ॥३॥ श्रीसूत जी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! पूर्वपश्चायत् इस दक्षिण हिमवान् पर्वत के पुण्य तीर्थ मे दक्षिण की ओर से जो जनपद हैं उनका पूरा विस्तृत वर्णन आप सब सुनने के योग्य होते है। यहाँ पर भारतवर्प मे जो प्रजा है वह

आपके सामने मैं वर्णन करूँगा ॥६॥५॥ शुभ और अशुभ कर्म का उभय स्वरूप यह तो मध्यम चित्र होता है जोकि समुद्र के उत्तर मे और हिमालय के दक्षिण मे है ॥६॥ यह जो वर्ष है उसका नाम भारत है और यहाँ जो प्रजा निवास किया करती है वह भारती प्रजा कही जाती है। प्रजाओ के भरण करने के कारण से मनु भी भरत ऐसा कहा गया है। निरुक्त करने के वचन से भी यह वर्ष कहा गया है ॥७॥

तत स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्याना भूमौ कर्म विधीयते ॥८
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदा प्रकीर्तिता ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्या परस्परम् ॥९
इन्द्रद्वीप कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुण ॥१०
अयन्तु नवमस्तेषा द्वीप सागरसवृत ।
योजनाना सहस्र तु द्वीपोऽय दक्षिणोत्तरम् ॥११
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्ण सहस्राणि नवैव तु ॥१२
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽय म्लेच्छैरन्तेषु नित्यश ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवना स्मृता ॥१३
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागश ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिता ॥१४॥

इससे यहाँ स्वर्ग मोक्ष और मध्य अन्त गम्यमान होता है अर्थात् प्राप्त किया जाता है। अन्यत्र भूमि मे मनुष्यो का निश्चय ही कर्म का विधान नही होता है ॥८॥ इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये है जोकि समुद्र के अन्तरित हैं ऐसा समझना चाहिए और वे परस्पर मे अगम्य होते हैं ॥९॥ इन्द्रद्वीप कसेरु ताम्रवर्ण गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गन्धर्व वारुण और यह जो इनमे सागर से सवृत नवम द्वीप है यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन वाला होता है ॥१० ॥११॥ यह कुमारी से गङ्गा प्रभव तक लेकर आयत है और ऐसा

उत्तर मे नौ सहस्त्र विस्तीर्ण होता है ।।१२।। यह द्वीप नित्य ही अन्तो मे म्लेच्छों से उपविष्ट है । पूर्व मे इसके अन्त मे किरात लोग हैं और पश्चिम मे यवन कहे गये हैं ।।१३।। मध्य मे इसके भाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जोकि इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि के द्वारा अपना वर्त्तन करते हुए व्यवथित रहते हैं ।।१४।।

तेषा सव्यवहारोऽय वर्त्तते तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसयुक्तो वर्णाना तु स्वकर्मसु ।।१५
सङ्कल्पपञ्चमाना नु आश्रमाणा यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी । १६
यस्त्वय नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते ।
कृत्स्न जयति यो ह्येन स सम्राडिह कीर्त्यते ।।१७
अय लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृत ।
स्वराडन्य स्मृतो लोक पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ।।१८
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुता कुलपर्वता ।
महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्त ते कुलपर्वता ।।१९
तेषा सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगा ।
अभिजाता सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानव ।।२०
मन्दर पर्वत श्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा ।
कोलाहल ससुरस मैनाको वैद्युतस्तथा ।।२१

उनका परस्पर मे ऐसा सुन्दर व्यवहार रहता है कि वर्णों का अपने अपने कर्मों में धर्म, अर्थ और काम से युक्त व्यवहार रहता है ।१५।। सङ्कल्प पञ्चम आश्रमो की विधि के अनुसार यहाँ पर जिन मे स्वर्ग तथा अपवर्ग के लिये मानवो प्रवृत्ति रहा करती है ।।१६। जो यह नवमद्वीप है वह तिर्यक् (टेढा) आयत है ऐसा कहा जाता है । इस पूरे को जो जीत कर शासन किया करता है वही यहाँ पर सम्राट कहा जाता है ।।१ ।। यह लोक तो सम्राट् और अन्तरिक्ष विराट कहा गया है और जो अन्य लोक हैं वह स्वराट्

कहे गये हैं। उसका विस्तार फिर कहा जायगा ॥१८॥ इसमें सात सुपर्वा कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान ऋक्ष पर्वत विन्ध्य और पारियात्र हैं। ये ही सात कुल पर्वत कहे गये हैं ॥१९॥ इन सात कुल पर्वतों के समीप में रहने वाले सहस्रों अन्य पर्वत हैं जोकि *अभिज्ञात* [सुन्दर-नूतन] समस्त गुणों से युक्त विपुल और चित्र शिखरों वाले हैं ॥२०॥ मन्दर पर्वतों में बहुत ही श्रेष्ठ पर्वत है। वहार दर्दुर कोलाहल ससुरस मैनाक वैद्युत पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुर पर्वत ।
गन्तुप्रस्थ कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ॥२२
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा ।
श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ॥२३
अन्ये तेभ्य परिज्ञाता ह्रस्वा स्वल्पोपजीविन ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यश ॥२४
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती ।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥२५
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ।
गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
कौशिकी च तृतीया त निश्चीरा गण्डकी तथा ।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पाद निःसृता ॥२७॥
वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥२८
परा चर्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि ।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रया स्मृता ॥२९

इसके अतिरिक्त वातधम नाम वाला गिरि है तथा पाण्डुर पर्वत है गन्तुप्रस्थ कृष्णगिरि गोधनगिरि पुष्पगिरि उज्जयन्त रैवतक श्रीपर्वत कारु कूटशैल गिरि हैं ॥२२॥ उन से अन्य जो पर्वत हैं वे छोटे और स्वल्प उपयोगी परिज्ञात हुए हैं। जनपद उन से मिले हुए हैं जो नित्य ही आर्य और

म्लेच्छों से युक्त रहते हैं ॥ २३-२४ ॥ जिसके द्वारा ये नदियाँ पाई जाती हैं उन नदियों के नाम—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धुतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षु और लोहित ये सब नदियाँ हिमवान् के पाद से निकली हुई हैं ॥ २५-२६-७ ॥ वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सतीरा, महती, परा, चर्मवती, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवन्ती—ये पारियात्राश्रया कही गई है ॥२८-२९॥

शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ॥३०
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥३१
सितेरजा शुक्तिमती मक्रुणा त्रिदिवा क्रमात् ।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदका ॥३२
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिवाहु कुमुद्वती ॥३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्य पुण्यजला शुभा ॥३४
गोदावरी भामरथी कृष्णा वेण्यथ वञ्जुला ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनि सृता ॥३५

और शोण महान् नद है तथा नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पली, विपाशा, जम्बुला, बालुवाहिनी, सितेरजा, शुक्तिमती, मक्रुणा, त्रिदिवा, ये सब नदियाँ ऋक्षपाद नामक पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली और मणि के समान सब कुछ जल वाली नदियाँ हैं ॥ ३०-३१-३२ ॥ तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मद्रा, निषधा नदी, वेन्वा, वैतरणी, शितिवाहु कुमुद्वती, तोया महागौरी, दुर्गा अन्तशिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्याचल के पाद से प्रसूत होने वाली और शुभ तथा परम

पवित्र जल वाली हैं ॥ ३३ ३४ ॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणी वन्जुला तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिण पथ की ओर वाली तथा सह्याद्रि पर्वत के पाद से निकली हुई हैं ॥ ३५ ॥

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्य सर्वा शीतजला शुभा ॥३६
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या ।
लाङ्गुलिनी वंशधरा महेन्द्रतनया स्मृता ॥ ७
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवा स्मृता ॥३८
सर्वा पुण्या सरस्वत्य सर्वा गङ्गा समुद्रगा ।
विश्वस्य मातर सर्वा जगत्पापहरा स्मृता ॥३९
तासा नद्युपनद्य ऽपि शतशाऽथ सहस्रश ।
तास्त्विमे कुरुपाञ्चाला शाल्वा चैव सजाङ्गला ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधा शतपथेश्वर ।
वत्सा किसष्णा कुल्याश्च कुन्तला काशिकोशला ॥४१
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृक सह ।
मध्यदेशा जनपदा प्रायशोऽमी प्रकीर्तिता ॥४२

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजाती उत्पलावती ये समस्त नदियाँ मलया चल से उत्पन्न होने वाली तथा शुभ एवं शीतल जल वाली हैं ॥ ३६ ॥ त्रिसामा ऋतुकुल्या इक्षुला त्रिदिवा लाङ्गुलिनी वंशधरा] महेन्द्र तनया अर्थात् ये सब महेन्द्राचल से उत्पन्न होने वाली नदियाँ कही गई हैं । ३७ ॥ ऋषीका सुकुमारी मन्दगा मन्दवाहिनी कृपा पलाशिनी ये सब नदियाँ शक्तिमान् पर्वत से प्रसूत होने वाली हैं ॥ ३८ ॥ ये सभी नदियाँ पुण्य अर्थात् परम पवित्र हैं सरस्वती हैं और सब गङ्गा एवं समुद्र मे जाने वाली हैं। ये सब विश्व की माताऐं और जगती तल के समस्त पापो का हरण करने वाली कही गई ॥ ३९ ॥ इन नदियो से निकलने वाली उपनदियाँ भी सकडो तथा सहस्रो ही हैं। वे ये सब कुरुपाञ्चाल शाल्व और सजाङ्गला हैं ॥ ४ ॥ शूरसेना

भद्रकारा और शतपथेश्वरो के द्वारा बोधा वत्सा किमगणा, कुल्या, कुन्तला, काशिकोमला है ।। ४१ ।। इसके अनन्तर पार्श्व में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं मध्यदेश मे ये प्राय जनपद कहे गये हैं ।। ४२ ।।

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरम ।। ४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मित ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽय वृक्षा ओषधयस्तथा ।।४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिता ।
अन्त पुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम ।।४५
वाह्लीका वाढधानाश्च आभीरा कालतोयका ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिका ।।४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रका ।
शका ह्रदा कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिका ।।४७
रमटा रुद्धरटका केकया दशमालिका ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।।४८
काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वरा प्रियलौकिका ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा वाह्यतोदरा ।।४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजा प्रस्थलाश्च कसेरुका ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडै सह । ५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातय ।
तोमरा हसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ।।५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ।।५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध मे जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी मे और समस्त इस भूमण्डल मे यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ।। ४३ ।। वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है । यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एव ओषधियाँ सब भरद्वाज मुनि

ने ही उसके प्रिय करने के लिये अवतरित किये हैं। अन्तपुर वन का दृश्य उसने परम सुन्दर उत्पन्न किया है॥ ४४ ४५ ॥ बाह्लीक वाटधान आभीर कालतोयक अपरीत पह्लव और चम खण्डिक शूद्र जाति वाले लोग होते हैं। गान्धार यवन सिन्धु सौवीर मद्रक शक ह्रुव कुलिन्द परित हारपूरिक रमट रद्ध कटिक कैकय दशमानिक ये क्षत्रियोपनिवेश तथा वश्य एवं शूद्र कुल हैं॥ ४६ ४७ ४८ ॥ काम्बोज दरद बर्बर प्रियलौकिक पीन तुषार पह्लव और बाह्यतोदर हैं। आत्रेय भरद्वाज प्रस्थल कसेरुक लम्पाक स्तनपा तथा जुगडों के सहित पीडिक अपग और अलिमद्र ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर हंसमार्ग काश्मीर तङ्गण चूलिक बाहुक तथा पूर्ण दर्वा ये सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे होने वाले प्रदेश होते हैं। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा मे होने वालों को श्रवण करो ॥ ४९ ५० ५१ ५२ ॥

अन्ध्रवाका सुजरका अन्तर्गिरिवहिर्गिरा ।
तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्तिन ॥५३
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थका ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका ।
माला मगधगोविन्दा प्राच्या जनपदा स्मृता ॥५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथ वासिन ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्या कुल्यास्तथैव च ॥५५
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिका ।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्वश ॥५६
अभीरा सह चषीका आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वदर्भा दण्डक सह ॥५७
पौनिका मौनिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धना ।
नैणिका कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिका ॥५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरास्तान्निबोधत ।
शूर्पाकारा कोलवना दुर्गा कालीतक सह ॥५९
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसै सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षरा ॥६०

अन्धवाक सुजरक, अन्तर्गिरि, वहिर्गिर, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्त्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमथक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, तामलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा मे वहे गये हैं ॥ ५३ ५४ ॥ इसके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्ड्य, केरल, चोल्य कुल्य, सेतुक मूषिक, कुमन, वनवासिक है। महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, चैषीक, आटव, वरा, पुलिन्द्र, विन्ध्य भूलोक और दण्डको के सहित वैदर्भ, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैणिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं। इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो। शूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, सुराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परक्षर है ॥ ५५-५६।५७-५८-५९-६० ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदा ।
भानुकच्छा समा हेया सहसा शाश्वतैरपि ॥६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च अनर्ताश्चार्बुदै सह ।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्व विन्ध्यवासिन ॥६२
मालवाश्च करूपाश्च मेकलाश्चोत्कलै सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजा किष्किन्धकै सह ॥६३
तोसला कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव पट्सुरा निपधै सह ॥६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तय ।
एते जनपदा सर्वे विन्ध्य पृष्ठनिवासिन ॥६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निगर्हरा हसमार्गा क्षुपणास्तङ्गणा खसा ॥६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वा सहूदका ।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसै सह ॥६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदु ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।
तेषा निसर्ग वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥६८

नासिक से साथ लेकर जो नमदा के अ तर मे है वे शाश्वती के द्वारा सहसा भानुकच्छ के समान हय हैं । कच्छीय सराष्ट्र, आवत्त अबु द ये सब सम्परीत होते हैं । अब विन्ध्य वासियो को श्रवण करो । मालव करूप मेकल उत्कल उत्तमण दशार्ण भोज किष्किन्धक तोसल कौसल त्र पुर तथा वन्कि तमुर तुम्बुर, पटमुर निषध अनुप तुण्डिकेर वीतिहोत्र अवन्ती ये समस्त जनपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ॥ इसके आगे जो पवनाश्रमी देश हैं उन्हे बतलाया जाता है निगहर हसमाग क्षुपण तङ्गण खस कुशप्रावरण हूण दव सहूहक त्रिगर्त मालव किरात तामस ये पवतो पर आश्रय वाले प्रदेश हैं । कवि लोग भारतवर्ष मे चार युग कहते हैं उनके नाम कृतयग त्रता द्वापर और कलियग ये चार होते हैं । उनका निसर्ग बतलायगे । ऊपर से जानलो ॥ ६६ ६७ ६८ ॥

॥ प्रकरण ३३–ज्योतिष प्रचार (१) ॥

अथ प्रमाण भूढच वर्ण्यमान निबोधत ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पचमम् ।
अनन्तधातवो ह्य ते व्यापकास्तु प्रकीर्तिता ॥१
जननी सवभूताना सर्वभूतधरा धरा ।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नाननदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रया स्थिता ।
पर्वताकाशसस्थाश्च अन्तर्भू मिगताश्चया ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञयास्तथाग्नि सवलौकिक ।
अनन्त पठ्यते चैव व्यापक सवसम्भव ॥५
तथाकाशमनालम्ब रम्य नानाश्रय स्मृतम् ।
अनन्त प्रथित सर्व वायुश्चाकाशसम्भव ॥६
आप पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता ।
आकाशञ्चापरमध पुनर्भू मि पुनर्जलम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अध प्रमाण और ऊर्द्ध जो कि मेरे द्वारा वर्ण्यमान होगा उसका श्रवण करे। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और पाँचवी ज्योति ये अनन्त धातुऐं है जो व्यापक कही गई हैं ॥ १ ॥ समस्त प्राणियो के जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतो को धारण करने वाली धरा होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदो से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार के अधिष्ठान एव नगरो वाली है ॥ २ ॥ इस धरा मे नाना भाँति के नद, नदी तथा पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियो से यह समाकुल हो रही है। यह पृथिवी देवी अनन्त एव बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ॥ ३ ॥ नदी, नद और समुद्र मे रहने वाले तथा छोटे छोटे आश्रमो मे स्थित, पर्वत एव आकाश मे रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर मे रहने वाले जल भी अनन्त हैं उन्हे भी बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक मे रहने वाला यह अग्नि भी व्यापक एव सर्व सम्भव तथा अनन्त पढा जाता है ॥ ४ ५ ॥ इसी प्रकार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सुन्दर एव अनेको का आश्रय कहा गया है। यह सब अनन्त प्रथित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है ॥ ६ ॥ जल पृथिवी मे है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश ऊपर है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ॥ ७ ॥

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते।
पुरा सुरैरभिहित निश्चितन्तु निबोधत ॥८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ॥६
दशयोजनसाहस्रमेकभौम रसातलम्।
साधुभि परिविख्यातमेकैक बहुविस्तरम् ॥१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु तत परम्।
तत परतर विद्याद्वितल बहुविस्तरम् ॥११
ततो गभस्तल नाम परतश्च महातलम्।
श्रीतलञ्च तत प्राहु पाताल सप्तम स्मृतम् ॥१२
कृष्णभौमञ्च प्रथम भूमिभागश्च कीर्त्तितम्।

पाण्डुभौम द्वितीयन्तु तृतीय रक्तमत्तिकम् ॥१३
पीतभौमश्चतुर्थ तु पचम शर्करातलम् ।
षष्ठ शिलामयञ्चैव सौवण सप्तमन्तलम् ॥१४

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है। पहिले देवो ने जो कहा है अब आप वो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ॥ ८ ॥ भूमि जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है। इस सप्तम रस तल मे यह स्थिति जानने के योग्य होती है ॥ ९ ॥ *दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है। साधु पुरुषो के द्वारा* यह एक एक बहुत विस्तार से युक्त परिविख्यात है ॥ १ ॥ इनमे जो प्रथम है वह अतल नाम वाला * । इसके आगे सुतल होता है। इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है । ११ ॥ इस के आगे गमस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है । इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ॥ १२ ॥ प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्तित किया गया है। पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है। तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमे लाल मिट्टी है ऐसा भाग है। पीतभौम चौथा भाग होता है। पाँचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओ से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ॥ १ १४ ॥

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ॥१५
पुरञ्च शङ्कुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुर प्रहृष्टजनसकुलम् ॥१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्त य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गाना नगर श्वापदस्य तु ॥१७
धनञ्जयस्य च पुर माहेन्द्रस्य महात्मन ।
कालियस्य च नागस्य नगर कलसस्य च ॥१८
एव पुरसहस्राणि नागदानवरक्षमाम् ।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न सशय ॥१६
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षस. ।
महाजम्भस्य च तथा नगर प्रथमस्य तु ॥२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शखाख्येयस्य च पुर नगर गोमुखस्य च ॥२१

इनमे जो प्रथम तल है उसमें असुरो के स्वामी का मन्दिर ख्यात है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ॥ १५ ॥ शकुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यो से सकुल अर्थात् घिरा हुआ है ॥ १६ ॥ अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्षक लिङ्गो का और श्वापद का नगर है ॥ १७ ॥ माहेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कलस का वहाँ पर नगर है ॥ १८ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसो के सहस्रो नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल मे ही जानने के योग्य होते हैं और इसमे कुछ भी सशय नही है ॥ १६ ॥ हे विप्रो ! द्वितीय तल मे भी दैत्यो के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ॥ २० ॥ और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शख नाम वाले और गोमुख का पुर एव नगर है ॥ २१ ॥

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुरुनादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रुपुत्रस्य च पुर तक्षकस्य महात्मन ॥२३
एव पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्रा पाण्डुभौमे न सशय ॥२४
तृतीये तु तले ख्यात प्रह्लादस्य महात्मन ।
अनुह्लादस्य च पुर दैत्येन्द्रस्य महात्मन ॥२५
तारकाख्यस्य च पुर पुर त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुर हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

च्यवनस्य च विज्ञ य राक्षसस्य च म दिरम् ।
राक्षसे द्रस्य च पुर कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७
विराधस्य च क्रूरस्य प""मुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥२८

इसके अतिरिक्त वहाँ पर नीन मेन और च्यवन राक्षस का पुर है तथा कुरपाद और महोष्णीष का आलय है ॥ २२ ॥ कम्बल नाग का और अश्वतर का पुर है । कद्रु के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसो के सहस्रों ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल मे ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डुभीम इस नाम वाला है । इसमें भी तनिक सशय नही है ॥ २४ ॥ तीसरे तल मे महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा द नेन्द्र अनुह्लाद का नगर है ॥ २५ ॥ वहाँ पर इनके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर त्रिशिरा का पुर और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यो से समाकुल शिशुमार का पुर है ॥ २६ ॥ वहाँ पर च्यवन राक्षस का म दिर है सो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ॥२७॥ तथा अत्य त क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एव हेमक नाग तथा पाण्डुरक के भी वहाँ पर पुर हैं ॥ २८ ॥

मणिमन्त्रस्य च पर कपिलस्य च मन्दिरम् ।
न दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥२९
एव परसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिस्तले विप्रा पीतभौमे न सशय ॥३०
चतुर्थे दत्यसिहस्य कालनेमेमहात्मन ।
गजकर्णस्य च पर नगर कुञ्जरस्य च ॥३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुर सुमालेबहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥३२
बहुयोजनसाहस्र बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगर वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥३३
पञ्चमे शर्करामौमे बहुयोजनविस्तृते ।

विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाल का मन्दिर है ॥ २९ ॥ हे विप्रो! इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है, नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोकनाथ ग्रावत्र के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल किया हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य, अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कर्म्मारस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपते केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्वाणः सुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षष्ठे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे ।

पुर वले प्रमुन्ति नरनारीसमाकुलम् ॥४१
असुराशाविप पूगमुद्धतदृंवशत्रुभि
मुचुकुन्दस्य दत्य.य तत्र व नगर महत् ॥४२

राक्षसेन्द्र एव माली महामेघ का पुर है। तथा इसी तल मे कमरि नाग स्वस्तिक तथा जय के भी पुर हैं ॥३६॥ इस प्रकार से पाँचवे शकरा निचय मे नाग दानव तथा राक्षसो के सहस्रो ही पुर स्थित हैं सो जानलेने चाहिए ॥३७॥ अब छठा तल जो है इसमे दत्यो के पति केसरी का उत्तम नगर है। एव सुपर्वा सक्रोशा और महिष के नगर हैं। राक्षसेन्द्र महात्मा उत्क्रोश का नगर है ॥३८॥ वहाँ पर छठे तल में सुरमा का पुत्र और शतशीर्ष बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त हैं और वहाँ कश्यपका पुत्र श्रीमान् नागराट वासुकि नाम वाला है ॥३९॥ इस छठे शिलामौम विश्रान रसातल मे नाग दानव और राक्षसो के हजारों ही पुर है ॥४०॥ अब सातवें तल मे जोकि सब से पीछे वाला है पाताल नाम वाले मे नर और नारियो से समाकुल बलि का बहुत ही प्रमुदित नगर है ॥४१॥ वहाँ पर असर और आशीविषों से पूर्ण और उद्धत देवो के शत्रुओ से युक्त मुचुकुन्द दत्य का एक बहुत बडा नगर है ॥४२॥

अनेकर्दितिपुत्राणा समुदीर्णमहापुर ।
तथव नागनगर ऋद्धिमद्भि सहस्रश ॥४३
दत्याना दानवानाञ्च समुदोर्णमहापुर ।
उदीर्णं राक्षसावासैरनेकश्च समाकुलम् ॥४४
पातालान्ते च विप्रे न्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने ।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामर ॥४५
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुज ।
विशालभोगो द्युतिमाश्चित्रमालाधरो बली ॥४६
रुक्मशृङ्गारवदात न दीप्तास्येन विराजता ।
प्रमुर्मु खसहस्र ण शोभन वै स कुण्डली ॥४७
स जिह्वामालया देवो लोलज्ज्वालानलाचिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्त कलास इव लक्ष्यत ॥४८

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता ।
वालसूर्य्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डल ॥४६

वहाँ सप्तम तल मे अनेक दिति के पुत्रो के समुदीण महान् पुरो से, तथा नागो के नगरो मे जोकि बहुत ही ऋद्धिमान् हैं और संख्या मे भी महस्रो हैं, दैत्य और दानवो के समुत्तीर्ण महान् पुरो से तथा उत्तीर्ण राक्षसो के आवास स्थानों से, जोकि बहुत से हैं यह सप्तम तल समाकुल हैं ॥४३॥४४॥ हे विप्रेन्द्रो बहुत योजनो के विस्तार वाले इस पतालान्त में महात्मा अजरामर रक्तार । विन्दाक्ष है ॥४५॥ वहाँ धौत शङ्खोदरवपु, नीलवासा, महाभुज, विशालभोग, द्युतिमान्, चित्रमालाधर, वली, रुक्मशृङ्ग मे अवदात (श्वेत) दीप्तमुख से विराजमान सहस्र मुख से प्रभुकुण्डली शोभा देता है ॥४६॥४७॥ वहाँ पर वह देव लोल (चञ्चल) ज्वाला के अनल की अर्चि वाली जिह्वाओ की माला से परिक्षिप्त कैलास की भाँति दिखाई देते हैं ॥४८॥ वहाँ पर वह दुगुने सहस्र नेत्रो की शोभा से जोकि बाल सूर्य की अभिताम्रता के सदृश है स्निग्धमण्डल शोभायमान होते हैं ॥४६॥

तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते ।
तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि ॥५०
जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ।
विस्तीर्ण इव मेदिन्या महस्रशिखरो गिरि ॥५१
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबले ।
उपास्यते महातेजा महानागपति स्वयम् ॥५२
स राजा सर्वनागाना शेषो नाम महाद्युति ।
सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादाया व्यवस्थिता ॥५३
सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातला ।
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिता सदा ॥५४
अत परमनालोक्यमगम्य सिद्धसाधुभि ।
देवानामप्यविदित व्यवहारविवर्जितम् ॥५५
पृथिव्यग्न्यम्बुवायूना नभसश्च द्विजोत्तमा ।
महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र सशय ॥५६

कु और इन्दु के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे हिमान्तु शिव श्वेत पर्वत के शिखर पर मरुण सूर्यों की माला हो ।५ ॥ जटाओ से कराल द्युति वाले उस अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरो वाला कोई पर्वत बना हुआ हो ॥५१॥ वह महान् नागो का स्वामी महान् भाग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागो के द्वारा महान् तेज से युक्त स्वयं जगस्थमान होते है ॥५२॥ वह समस्त नागो के राजा है और महान द्युति वाले शेष नाम वाले हैं। वह अग्नि की तनु अर्थात् शरीर अग्नी अर्थात् विष्णु से सम्बन्ध रखने वाली है जोकि मर्यादा मे व्यवस्थित है ॥५३। ये सातो ही व्यवहार के योग्य रसातल कहे गये है। ये सब सर्वदा देव असुर महानाग और राक्षसो के निवास भूमि बने हुए हैं ॥५४॥ इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमे कि बडे सिद्ध और साधु भी नही जा सकते हैं। यह आगे क्या है इसे देवगण भी नही जानते हैं और व्यवहार से सर्वथा रहित ही है ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! ऋषियो के द्वारा पृथिवी अग्नि जल वायु और आकाश का मण्डल इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इसमे कुछ भी संशय नही है ।५६॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावन्त्वेव तु ।
प्रकाशन स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ॥५७
सनानाच समुद्राणां द्वीपानां तु स विस्तर ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यश्च बाह्यत ॥५८
पर्यासपारिमाण्यं तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशत ।
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ॥५९
अवति श्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्य परिभ्रमन् ।
अवधातु प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रवि स्मृत ॥६
अत पर प्रवक्ष्यामि प्रमाण चन्द्रसूर्ययो ।
महितत्वा महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ॥६१

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तारम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्ताराच्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्द्विगुण शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बतलाऊँगा । ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते हैं वे दोनों मण्डलों में समाश्रित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ सात समुद्रों का और द्वीपों का यह विस्तार है पृथिवी का तो इस विस्तार का अर्धभाग है जो कि बाह्य से अन्य में होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्याय के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते हैं और पर्याय के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ यह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनों लोकों का जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश नाम वाला है और अवन करने से ही वह रवि कहा गया है ॥६०॥ इससे आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महितत्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ष में निपातित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अत पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यात पुराण परिमाणत ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभि. ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात्तु साम्प्रतं देवं वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नश ॥६७

शतार्द्ध कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नत स्मृता ।
तस्या वार्धप्रमाणेन मेरोर्व चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या वार्ध विस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तित ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिश कोटिरेकादश स्मृता ॥६९
तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वार्धविस्तर ॥७०

इसलिये पृथिवी का प्रमाण योजनो के साथ बतलाता हूँ। सातद्वीपी और सप्त समुद्रो वालों का विस्तार और जो मण्डल है वह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने सख्या की है। वह आजकल के होने वाले अभिमानियो के द्वारा प्रसख्या के लिये बतलाता हूँ ॥६४॥६५॥ जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय मे होने वालो के तुल्य ही थे। जो देवता थे वे भी न भो और अपने रूपो से सब व्यतीत हो गये हैं ॥६६। इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय मे होने वाले देवो से वसुधा तल को बतलाता हूँ। साम्प्रतो के द्वारा ही पूर्णरूप से भव का सन्निवेश होता है ॥६७॥ यह पृथ्वी पूर्णतया पचास करोड विस्तार वाली कही गई। उसके अर्ध प्रमाण से मेरु का चातुरन्तर होता है ॥६८॥ पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तित होता है। मेरु के मध्य से प्रतिदिशा में ग्यारह करोड कहे गये हैं ॥६९॥ सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है ॥७ ॥

पृथिव्या विस्तार कृत्स्न योजनस्तन्निबोधत ।
तिस्र कोटयस्तु विस्तार सख्यात स चतुर्दिशम् ॥७१
तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्राया पृथिव्यास्त्वेष विस्तर ॥७२
विस्तारात्त्रिगुणश्च व पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणित योजनाग्रन्तु कोटयस्त्वेकादश स्मृता ॥७३
तथा शतसहस्र तु सप्तत्रिंशाधिकानि त ।
इत्येतद्वै प्रसख्यात पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥७४
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् ।

पर्याप्त सन्निवेशस्तु भूमस्तावत्तु मण्डलम् ॥७५
पर्याप्तपारिमाण्येन भूमेस्तुल्य दिव स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मान प्रकीर्तितम् ॥७६
पर्याप्तपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकाना छत्रवत्परिमण्डलम् ॥७७

पृथिवी का विस्तार पूर्णत योजनो के द्वारा समझना चाहिए। चारों दिशाओ में अर्थात् सभी ओर तीन करोड विस्तार सख्यात किया गया है ॥७१॥ सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्यासी कहा जाता है।७२॥ इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है। योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड कहे गये हैं ॥७३। उसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र यहपृथिव्यन्त का मण्डल प्रसख्यात किया गया है ॥७४॥ दिव मे तारकाओ के सन्निवेश का जितना मण्डल है सन्निवेश का पर्याप्त और भूमि का मण्डल उतना ही है।॥७५॥ इसलिये पर्याप्त के पारिमाण्य से भूमि का दिव के ही तुल्य होना है ऐसा कहा गया है। सातो लोको का यह मान कहा गया है ॥७६॥ पर्याप्त के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोको के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ॥७७॥

सस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तव ।
एतदण्डकटाहस्य प्रमाण परिकीर्तितम् ॥७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोका सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीय स्वरिति स्मृत ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तम ॥७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिता ।
स्वकैरावरणै सूक्ष्मैर्धार्यमाणा पृथक् पृथक् ॥८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभि प्रकृतिभिर्बहि ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नै परस्परम् ॥८१
अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधि ।
पृथिवीमण्डल कृत्स्न घनतोयेन धार्यते ॥८२

घनोदधिपरेणाथ धार्यते घनतेजसा ।
बाह्यतो घनतस्त्वस्तु तिर्यगूर्द्ध्व भण्डलम् ॥ ३॥
समन्ताद्घनवातेन धार्यतेमाण प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्त आकाशमाकाशश्च महात्मना ॥८४

जिनमें जन्तु गण निवास करते हैं उनकी सन्निवेश विहित हुई और इस अण्ड कटाह का प्रमाणभी कह दिया गया है ॥७८। इस अण्ड के भीतर ये लोक हैं सात द्वीप है और यह पृथ्वी है। तीनों लोकों में भूर्लोक भुव लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है। महर्लोक जनलोक तपलोक और सातवां सत्य लोक है ॥७९॥ ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले क्रम स्थित होते हैं। ये सातो अपने २ आवरणों से जाकि अति सक्ष्म हैं पृथक पृथक धार्यमाण हैं ।८०॥ वाहि दशभाग वाकि उन प्रकृतियों से और विशेष समुत्पन्नों से परस्पर में धार्यमाण होते हैं। ८१॥ इस अण्ड के चारों ओर घना समुद्र सन्निविष्ट होता है। इस समस्त भूमण्डल का घन जल से धारण किया जाता है ।८२। इस घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है। बाहिर से घन तेज का तिर्यक और ऊर्ध्व मण्डल होता है ।८३॥ चारों ओर घन वात के द्वारा यह धार्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन वात से आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ॥८४॥

भूतादिना वृत्त सर्वं भूतादिमहता वृत ।
वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥ ८५
पराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाण परिवक्ष्यते ॥८६
मेरो प्राच्यां दिशि तथा मानसस्य च मूर्द्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य च मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यम संयमने पुरे ॥८८
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्य च मूर्द्धनि ।
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमत ॥८९

दिश्युत्तरस्या मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्या माहेन्द्रपुर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी ॥९०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्द्दिशम् ।
स्थिता धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसरक्षणाय च ॥९१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्ययात्मा एव अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८५॥ अब लोकपालो के पुरों को क्रम के अनुसार बनाया जायगा और ज्योतिगण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा मे मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके ओकसार वाली हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण मे सयमनपुर मे वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धापर मेरु के पश्चिम दिशा मे धीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा मे मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारो दिशाओ मे लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोको के सरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१।

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या ता निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्य क्षिप्तेपुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाश्चक्रमादाय सतत परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्या यदा भवति भास्कर ।
वैवस्वते सयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यग स्याद्रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्र स्यान्माहेन्द्य्रामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्नो विधीयते ॥९६
दक्षिणापर देश्याना पूर्व्वाह्न परिकीर्त्यते ।

तेषामपररात्रञ्च ये जना उत्तरापथे ॥९७
देशा उत्तरपूर्वा ये पूर्वरात्रन्तु तान् प्रति ।
एवमेवोत्तरेष्वर्को भवनेषु विराजते ॥९८

लोकपालो के ऊपर के भाग मे सब ओर से दक्षिण अयन मे काष्ठागत सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें । ९२॥ दक्षिण प्रक्रम मे सूर्य फेके हुए तीर की भाँति दौड लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के चक्र को लेकर चारो ओर जाया करता है ॥९३॥ जिस समय भगवान् भुवन भास्कर अमरावती मे मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत संयमन मे उदय कहा जाता है ॥९४॥ जब रविदेव मध्यगामी होते है तब सुखापुरी मे अर्ध रात्रि होती है । सुखा मे और इसके अनन्तर वारुणी मे उत्तिष्ठ मान होते हुए वह दिखलाई दिया करते है ॥९५॥ विभा मे आधीरात होती है और माहेन्द्री मे वह अस्ताचलगामी होते है । तब दक्षिण पूर्व वालो का अपराह्न किया जाता है ॥९६॥ दक्षिणा परदेश वालो का पूर्वाह्न परिकीर्त्तित होता है । उनके अपर मे रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ मे निवास किया करते हैं ॥९७॥ जो देश उत्तर पूर्व होते हैं उनके प्रति पूर्वरात्रि होती है । इसी प्रकार से ही उत्तर भुवनो मे सूर्यदेव विराजमान हुआ करते है ॥९८॥

सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्य्यमा यदा ।
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसु ॥९९
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकर ॥१००
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रवि ।
अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥१०१
स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रवि ॥१०२
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुन पुन ॥१०३
पूर्वाह्णे चापराह्ने तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु स ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभि ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्न तपन् रवि ।
अत पर ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्त स गच्छति ॥१०५

सुग्रा मे तथा वारुणी मे मध्याह्न में जब अयमान होते हैं तब विभावरी मे और सोमपुरी मे विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती मे रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचल-गामी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा मे मध्याह्न मे दिवाकर हुआ करते हैं ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती मे सूर्य उदित हुआ करते हैं तब सयमन मे आधी रात होती है और वारुणी मे अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह भास्कर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते है। आकाश मे नक्षत्रो के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार से चारो द्वीपो मे दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न मे और अपराह्न मे वह दो-दो देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्ही रश्मियो के द्वारा वर्धमान होने वालियो से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणो से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाख्या हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तापति तावत् पृष्ठे तु पार्श्वयो ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषा स उदय स्मृत ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्त स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणा दर्शन भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥११०
लेखयावस्थित सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्द्ध गत सहस्र तु योजनाना स दृश्यते ॥१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयो के द्वारा पूर्वापर दिशाऐं कही गई हैं । जब तक आगे वह तपते हैं तब तक पृष्ठ मे पार्श्व का होना होता है ॥ १ ६ ॥ जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखलाई देते हैं उनका वह उदय कहा गया है । जहाँ पर वह प्रकाश को प्राप्त होते हैं उनका वह अस्त कहा जाया करता है ॥ १ ७ ॥ सब वर्षों के उत्तर मे मेरु होता है और लोकालोक पर्वत सब के दक्षिण मे होता है । सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की रेखा से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमाण हो जाया करती हैं । इसी कारण से वह रात्रि मे दिखलाई नही दिया करते हैं ॥ १ ८ ॥ ग्रह नक्षत्र और ताराओं का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए । जो अनोदय होता है वही अस्त कहा जाता है ॥ १ ९ ॥ अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है । विशेष दूरी के भाव के होने के कारण से ही उद्यत सूर्य की विरश्मिता होती है अर्थात् किरणो के दर्शन का अभाव रहा करता है जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमे रक्तता का अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी अभाव रहता है ॥ ११ ॥ लेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ जहाँ पर भी दिखलाई देता है तो वह सहस्रो योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ॥१११॥ भगवान् भुवन भास्कर के अस्त मे गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि मे आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि मे दूर से प्रकाशित होती है ॥११२॥

उदितस्तु पुन सूर्य अस्तमाग्नेयमाविशत् ।
सयुक्तो वह्निना सूर्यस्तत स तपते दिवा ॥११३
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तेजसी ।

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वप. ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥११५
अस्त याति पुन सूर्ये दिन वै प्रविशत्यप ।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्न प्रवेशनात् ॥११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्र विशत्यप ॥११७
दिन सूर्यप्रकाशाख्य तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रि सूर्यावेक्ष्यमह स्मृतम् ॥११८
एव पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्कर ।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति ॥११९

पुन जब वह उदित होता है तो सूय आग्नेय अस्त मे आविष्ट हो जाता है और वह्नि से सयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन मे तपा करता है ॥११३॥ प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनो ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं । ये दोनो परस्पर मे अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि मे आप्यायित्त हुआ करते हैं ॥ ११४ ॥ भूमि के उत्तर अर्धभाग मे तथा दक्षिण मे सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल मे आविष्ट हो जाती है । इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते है ॥ ११५ ॥ फिर सूर्य के अस्तगत हो जाने पर दिन जल मे प्रविष्ट हो जाया करता है । इसी लिये जल शुक्ल हो जाते है । रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ॥ ११६ ॥ इस क्रम के योग से भूमि के अर्ध दक्षिणोत्तर मे सूर्य के उदयास्तमान वेला मे अहोरात्र जल मे प्रवेश किया करते हैं ॥ ११७ ॥ जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव मे अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है । इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यावेक्ष्य है अर्थात् जिस समय मे सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ॥ ११८ ॥ इस प्रकार से जब

सर्य पुष्कर के मध्य से सपण किया करता है तो पृथ्वी का त्रिंशक मुहूर्त भर मे ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रा मुहूर्त्तस्य इमा सख्या निबोधत ।
पूर्ण शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सपते दक्षिणायान्त काष्ठाया तन्निबोधत ।
नवकोट्य प्रसख्याता योजनं परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्था यदा रवि ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डल विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्र काट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मता ॥१२६

योजनाग्र से मुहूर्त की इस सख्या को समझ लो । वह पूर्ण सौ सहस्रो की इकत्तीस कही गई है ॥ १ ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक सूर्य की यह मुहूर्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति के योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब माघ मे दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १ २ ॥ दक्षिण दिशा मे जब गमन किया करता है इसे भी समझ लो । नौ करोड योजनो से परिमण्डल प्रसख्यात होता है ॥ १२ ॥ तथा सौ सहस्र चालीस और पाँच अहोरात्र से सूर्य की यह गति होती है ऐसा विधान किया जाता है ॥ १२४ । दक्षिण से जिस समय यह सूर्य विनिवृत्त होता हुआ विषवस्थ हो जाता है और क्षीरोद समुद्र के उत्तरान्त दिशाओ मे भ्रमण करता हुआ आता है ॥ १२५ ॥ विषवचा का जो मण्डल होता है योजनो के द्वारा उसे भी जान लो । विषवचा भी तीन करोड विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२६ ॥

तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुन ।
श्रवणे चोत्तरा काष्ठाश्चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायाश्च काष्ठाया प्रमाण मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसख्याता कोटिरेका तु सा द्विजे ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनाना तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूल चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रय ।
अभिजित्पूर्वत स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रय ॥१३०
काष्ठयोरन्तर यच्च तद्वक्ष्ये योजनै पुन ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तर शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशत्त्रयोजनै ।
काष्ठयोरन्तर ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि सख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण मे उत्तर दिशा मे जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओ का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा मे मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजो के द्वारा योजनाग्र से एक करोड प्रसख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनो के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ मे अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति मे नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओ मे जो अन्तर होता है उनको पुन योजनो के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकत्तीस और अन्य तेतीस अधिक अर्थात् तेतीस योजनो के द्वारा योजनाग्र से दिशाओ का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओ में और लेखाओ मे जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

करते हैं उनकी संख्या करके योजनों के द्वारा बतलाया जा रहा है उसे भी आप लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकरूमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्तति ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्तति ॥१ ४
लेखयो काष्ठयाश्चैव बाह्याभ्यन्तरयो स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डला युत्तरायण ॥१ ५
बाह्यतो दक्षिण चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलाना शत पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१ ६
चरते दक्षिण चापि तावदेव विभावसु ।
प्रमाण मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनाना सहस्राणि समासत ।
शते द्व पुनरप्यन्ये योजनाना प्रकीर्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकर्हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यात योजनैर्मण्डल हि तत् ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैष तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उसका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत है । सहस्र अतिरिक्त हैं इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर है ॥ १३४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं मे यह अन्तर कहा गया है । और अभ्यन्तर तो उत्तरायण मे मण्डलो का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ वायु से दक्षिण मे निरन्तर क्रम के अनुसार एकसौ अस्सी मण्डलो के उत्तर मे तथा उसी प्रकार से दक्षिण मे भी विभावसु विचरण किया करता है । मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६ १३७ ॥ सक्षेप से इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दोसौ योजन कहे गये हैं । १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनों के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ १३९ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक (तिरछा) विधान किया जाता है । सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया करता है ॥ १४० ॥

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥१४२
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्नानुचरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४३
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥१४४
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणां चरते रविः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ॥१४५
अष्टादशमुहूर्त्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥१४६
त्रयोदशार्द्धमर्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४७
ततो मन्दतरं ताभ्याञ्चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥१४८
त्रिंशन्मुहूर्त्तानि वाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि स ॥१४९

कुलाल (कुम्हार) का चक्र पर्यन्त जिस तरह शीघ्र ही लौट आता है उसी प्रकार से दक्षिण प्रक्रम में सूर्य भी शीघ्र निवृत्त हो जाता है ॥१४१॥ इससे इस प्रकृष्ट भूमि को अल्पकाल में ही जाता है । सूर्य बारह मुहूर्त्तों में ही दक्षिणोत्तर में शीघ्र चला जाया करता है ॥१४॥ दिन में सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्द्ध का अनुसरण किया करता है और अठारह मुहूर्त्तों में रात्रि में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥१४३॥ जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र का मध्य भाग मन्द गति से प्रसर्पण किया करता है वैसे ही उदगयन में सूर्य देव भी मन्द विक्रम वाले हुए चला करते हैं ॥१४४॥ नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध के अर्ध से सूर्य चरण किया करता है । इसी कारण से अल्प भूमि को भी बहुत अधिक काल

में आया क ता है ॥१४८॥ अठारह मुहूर्तों में उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उसमे भी वह बहुत धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ॥ १४ ॥ सब नक्षत्रो के मध्योत्तरार्ध को अघ मे चरण किया करता है। रात्रि मे अठ रह मुहूर्तों मे नक्षत्रो का चरण किया करता है ॥ १४७ ॥ इसके अनन्तर उन दोनो से जिस प्रकार कुछ और म द चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भांति मध्य मे स्थित ध्रु व जसे भ्रमण करता है ॥ १४८ ॥ तीस मुहूर्तों को ह अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनो दिशाओ के मध्य मे वह मण्डलो का भ्रमण किया करता है ॥ १४९ ॥

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा त त्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥१५०
उभयो काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्यस्य म दा शीघ्रा च व गति ॥१५१
उत्तरे प्रक्रम स्विन्दोर्दिवा म दा गति स्मृता ।
तथव च पुन क्त शीघ्रा सूर्यस्य व गति ॥१५२
दक्षिण प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्र विधीयते ।
गति सूर्यस्य नक्त वै मन्दा चापि तथा स्मृता ॥१५३
एव गतिविशेषण विभजन् राज्यहानि तु ।
तथा विचरत मार्गे समन विपमण च । १५४
लोकालोके स्थिता ये त लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
अगस्त्यश्चरत तथामुपरिष्टाज्जवेन तु ।
भजन्नसावहोरात्रमवक्त्रतिविशेषणै ॥१५५
दक्षिण नागवीथ्याया लोकालोकस्य चोत्तरम् ।
लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहि ॥१५६
पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ।
पार्श्वयो पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वत ॥१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहीं पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का ज्ञान लेना चाहिए। वह वहीं पर ही परिवर्त्तन किया

करना है ॥ १५० ॥ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ॥१५१॥ उत्तर प्रक्रम में चन्द्रमा की गति दिन में मन्द कही गई है। उसी भाँति रात में सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ॥ १५२ ॥ दक्षिण प्रक्रम में दिन में शीघ्र होने का विधान होता है। रात्रि में सूर्य की गति मन्द उसी भाँति कही गई है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण किया करता है ॥ १५४ ॥ लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारों दिशाओं में लोकपाल हैं। उनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषणों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ दक्षिण में नागवीथी में लोकालोक पर्वत के उत्तर में वैश्वानर पथ में बाहिर यह लोक सन्तारक है ॥ १५६ ॥ पृष्ठ में सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भाँति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों में सब ओर तब तक प्रकाश दिया करती है ॥ १५७ ॥

योजनाना सहस्राणि दशोर्द्ध्वमुच्छ्रितो गिरिः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ॥१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः । १५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ।
लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्यः परिग्रहम् ।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ।१६१
सूर्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम् ।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम् ।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ॥१६२
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।

ग्रथयन्ति सहस्राणि मुन्यन्ति दिने दिने ।
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥१६३
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ।
सन्ध्येति समुपासन्ते क्षेपयन्ति महाजलम् ॥१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ॥१६५

यह गिरि दश सहस्र योजन उच्छ्रित ऊपर को है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ॥ १५८ ॥ लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र चन्द्र और ग्रह तथा ताराओं के गणों के साथ समस्त ग्रह प्रकाश किया करते हैं । १५९ ॥ इतना ही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है । लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ॥ १६० ॥ जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का संधान करता है इसी लिये उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं । विप्रों के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ॥ १६१ ॥ सन्ध्या के समय में सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसों को प्रजापति के नियोग से शाप है देह का अक्षयत्व तथा न मरण को प्राप्त कराये गये थे ॥ १६२ ॥ मन्देहा नाम वाले विख्यात राक्षस तीन करोड़ हैं जो दिन दिन में उगने वाले सूर्य की प्रार्थना करते हैं । ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ॥ १६३ ॥ इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महा दारुण युद्ध हुआ था । तब ब्रह्माजी देवगण और उत्तम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ॥ १६४ ॥ ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है । उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते हैं ॥ १६५ ॥

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्ध्वमुत्तिष्ठते शतम् ॥१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

वालखिल्यैश्च मुनिभि कृतार्थं समरीचिभि ॥१६७
काष्ठानिमेषा दश पच चैव त्रिशच्च काष्ठा गणयन् कलान्तम् ।
त्रिशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिशता रात्र्यहनी समेते ॥१६८
ह्रासवृद्धी त्वह भागैर्दिवसाना यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमानं तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ॥१६९
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ।
प्रातस्तन स्मृत कालो भागश्चाह्न स पचम ॥१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमूहूर्त्तस्तु सङ्गव ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्त स्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ॥१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्न इति स्मृत ।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ॥१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उत्थित होते हैं ॥ १६६ ॥ इसके पश्चात् वालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणों के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ॥ १६७ ॥ दश और पाँच निमेषों की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं से कलान्त होता है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है तथा तीस मुहूर्तों की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ॥ १ ८ ॥ दिन के भागों से यथाक्रम दिनों की ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि में सम कही गई हैं ॥ १६९ ॥ इसके अनन्तर तीन मुहूर्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती हैं । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है वह दिवस का पाचवाँ भाग होता है ॥ १७० ॥ उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त वाला मध्याह्न होता है ॥ १७१ ॥ उस मध्यन्दिन काल से अपराह्न यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७२ ॥

अपराह्णे व्यतीपाते काल सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्त्ताह्नै मुहूर्त्तास्त्रय एव च ॥१७३
दशपचमुहूर्त्त वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

दशपञ्चमुहूर्ताहं रात्रिन्दिवमितः स्मृतम् ॥१७४
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ॥१७५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तद्विभाव्यते ।
अहोरात्रं कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ॥१७६
तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावृतुरुच्यते ।
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ॥१७७
निमेषादिकृतः कालः काष्ठाया दश पञ्च च ।
कलायास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशीतिर्द्वयात्मिका ॥१७८
शतञ्चैकोनकात्रिंशन्मात्रात्रिंशत्षडुत्तरा ।
द्विषष्टिभाकः षष्टिंशन्मात्रायास्ते च ना भवेत् ॥१७९
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युति ।
सप्ततिञ्चापि तत्रैव नवतिं विद्धि निश्चये ॥१८०

अपराह्न के व्यतीत हो जाने पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता है। दश पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७३ ॥ दश पञ्च मुहूर्त वाला दिन रात्रि में अह कहा गया है। दश पाँच मुहूर्त से रात्रि दिन यह कहा गया है ॥ १७४ ॥ दक्षिण और उत्तर अयन मे रात्रि दिन बढ़ता है और ह्रास को प्राप्त होता है। अह रात्रि का ग्रास करता है और रात्रि अह का ग्रास किया करती है। इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ॥ १७५ ॥ शरद और वसन्त के मध्य मे वह विषुवत् विभावित होता है। अहोरात्र और कला सात इनको सोम समशन किया करता है ॥ १७६ ॥ इसी प्रकार से पन्द्रह दिन का पक्ष कहा जाता है। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों के अन्तर मे एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनों का एक वर्ष कहा जाया करता है ॥ १७७ ॥ दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह कला का निमेषादि कृत काल होता है। तीस कला का काष्ठा और अस्सी (अस्सी) इसकी मात्रा होती है ॥ १७८ ॥

शतघ्नैकोनका त्रिशतपद् उत्तर वाली मात्रा वामठ के नजन वानी तेईस मात्रा मे चन होती है ॥ १७९ ॥ चालीस सहस्र सो और आठ विद्युति सत्तर और वहाँ ही नक्षे निश्चय मे जानो ॥ १८० ॥

चत्वार्येव शतान्याहुर्विद्युतो वैधसयुगे ।
चरांशो ह्येप विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१
सवत्सरादय पञ्च चतुर्मानविकल्पिता ।
निश्चय मर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥१८२
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितोय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषा कालस्तु परिसज्ञित ॥१८३
विंशशता भवेत्पूर्ण पवणा तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशत्रिशदुदयो भास्करस्य च ॥१८४
ऋतवस्त्रिशत सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिशत् शत चापि षष्टिर्मासाश्च भास्कर ॥१ ५
त्रिशदेव त्वहोरात्र स तु मासश्च भास्कर ।
एकपष्टिस्त्वहोरात्रा ऋतुरेको विभाव्यते ॥१ ६
अह्नान्तु त्र्यधिकाशीति शत चाप्यधिक भवेत् ।
मान तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेय भुवनस्य तु ॥१८७

वैधसयुग विद्युति मे चारसो हो कहते हैं । यहा चरांश जानना चाहिए । यहाँ पर नालिका कारण है ॥ १८१ ॥ सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ॥ १८२ ॥ प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पाचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसज्ञित होता है ॥ १८३ ॥ बीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है। ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ॥ १८४ ॥ सौर ऋतुऐ तीस और दश ही अयन होते है । पैंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर है ॥ १८५ ॥ तीस ही अहोरात्र का वह भास्कर मास होता है । इकसठ अहोरात्र

एक दनु विभावित होता है ॥ १८ । दिनो के तिरासी और सौ अधिक होते हैं । वह चित्रभानु भुवन का मान समझना चाहिए ॥ १८७ ॥

सौरसौम्य तु विज्ञ य नक्षत्र सावन तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि य पुराण विभाव्यत ॥१८८
दे तस्यात्तरतश्च व शृङ्गवान्नाम पवत ।
त्रीणि तस्य त शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ॥१८९
तश्चापि शृङ्गवान्नाम सवतश्चव विश्रुत ।
एकमागश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तित ॥१९०
तस्य व सवत शृङ्ग मध्यम तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिण राजतञ्च व शृङ्ग त स्फटिकप्रभम् ॥१९१
सवरत्नमय चक शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ।
एव कूटस्त्रिभि शलै शृङ्गवानिति विश्रुत ॥१९२
यत्ताद्विषुवत शृङ्गन्तदक प्रतिपद्यते ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमा गतिमास्थित ।
अहस्तल्यामथो रात्रि करोति तिमिरापह ॥१९३
हरिताश्च हया न्व्यास्त नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्त गभस्तिभि ॥१९४
मेषान्त च तलान्त च भास्करोन्यत स्मता ।
मुहूर्ता दश पञ्च व अहोरात्रिश्च तावती ॥१९५

सौर सौम्य नक्षत्र और सावन इन्हे समझ लेना चाहिए । ये चार नाम हैं जिनमे पुराण विभावित होता है ॥ १८८ ॥ आकाश मे उसके उत्तर मे शृङ्गवान् नाम का एक पवत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊचे हैं कि मानों वे आकाश तल का स्पश करते हैं ॥ १८९ ॥ उन्ही से शृङ्गवान् यह नाम सब ओर विश्रुत होता है । एक मार्ग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा गया है ॥ १९ ॥ उसके शिखर सब ओर हैं उनमे जो मध्यम शृङ्ग है वह हिरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चादी का) है जो कि स्फटिक की प्रभा वाला है ॥ १९१ ॥ उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नो से

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटो के शैलो से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ॥ १६२ ॥ जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरत् और वसन्त के मध्य मे मध्यम गति मे आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ॥ १६३ ॥ दिव्य हरित अश्व महारथ मे नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणो से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ॥ १६४ ॥ मेष के अन्त मे और तुला के अन्त मे भास्करोद्यत कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त की उतनी ही अहोरात्रि होती है ॥ १६५ ॥

कृत्तिकाना यदा सूर्य प्रथमाशगतो भवेत् ।
विशाखाना तथा ज्ञेयश्चतुर्थाश निशाकर ॥१६६
विशाखाया यदा सूर्यश्चरत्तेऽश तृतीयकम् ।
तदा चन्द्र विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थिरम् ॥१६७
विषुवन्त तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षय ।
सूर्येण विषुव विद्यात् काल सोमेन लक्षयेत् ॥१६८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख मेतत्तु दवतम् ॥१६९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्त्तका ।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्र शुचिश्चायनमुत्तर स्यात् ।
नभो नभस्योऽथ इषु सहोर्ज ।
सह सहस्याविति दक्षिण स्यात् ॥२०१
सवत्सरास्ततो ज्ञेया पञ्चाब्दा ब्रह्मण सुता ।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तरा स्मृता ॥२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओ का सूर्य प्रथमाशगत होता है तब विशाखाओ के चतुर्थांश मे निशाकर होता है ॥ १६६ ॥ विशाखा मे जब सूर्य तृतीय अश मे

चरण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर मे स्थित जानना चाहिए ॥ १९७ ॥ उस समय देव को विषुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य को विषय समझे और काल को सोम के साथ लक्षित करे ॥ १९८ ॥ जब रात्रि और दिन समान होवे और जब विषुवद् होवे तब विषुवान् मे भी पितरो को दान देने चाहिये और विशेष करके ब्राह्मणो को देवे क्योकि ये देवताओ का मुख हुआ करता है ॥ १९९ ॥ ऊन रात्र और अधिमास कला काष्ठा और मुहूर्त पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनीवाली कुहू राका और अनुमति जाननी चाहिये ॥ २ ॥ तप और तपस्या मधु और माधव शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु सहोर्ज और सह तथा स्पस्य दक्षिण अयन जान लेवे ॥ २ १ ॥ इसके पश्चात् सम्वत्सर जाने जो कि पञ्च अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु जाने जो अन्तर होने है वे ऋतु कहे गये हैं ॥ २ २ ॥

तस्मादनुमुखा श या अमावास्यास्य पर्वण ।
तस्मात्तु विषुव ज्ञ य पितृदेवहित सदा ॥२ ३
एव ज्ञात्वा न मुह्य त दैवे पित्र्ये च मानव ।
तस्मात् स्मृत प्रजाना च विषुवत्सर्वग सदा ॥२ ४
आलोकान्त स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपाला स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यत ॥२०५
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
सुधामा चैव वैराज कर्दम शङ्खपस्तथा ।
हिरण्यलोमा पर्जन्य केतुमान् जातनिश्चय ॥२ ६
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहा ।
लोकपाला स्थिता ह्य ते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२ ७
उत्तर यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाण स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहि ॥२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिण ।
लोकस्य सन्तानकरा पितृयाणे पथिस्थिता ॥२०९

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुना जानी चाहिए। उसमे पितर और देवो के हित वाला विषुव सदा जान लेना चाहिए ॥ २०३ ॥ मास का इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर देव तथा पितर सम्बन्धी काय मे मोह नही करना चाहिये। इसमे समस्त मे गमन करने वाला सदा प्रजाओ का विषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त लोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य मे लकपाल स्थित होते है ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतसम्प्लव पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्दम, शङ्खप, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्त्र, निष्परिग्रह—ये लोकालोक मे चारो दिशाओ मे लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६–२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर मे और अजवीथी के दक्षिण मे वैश्वानर पथ से बाहिर वह पितृगण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग मे स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भ कृत कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषा पन्था स दक्षिण ॥२१०
चलितन्ते पुनर्द्धर्म स्थापयन्ति युग युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभि श्रुतेन च ॥२११
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमाधा गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषा निधनेष्वपि ।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ॥२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्दक्षिण मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावता प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ॥२१३
लोकसव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रकृत्या च मैथुनोपगमेन च ॥२१४
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तै कारणै सिद्धा श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ॥२१५

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तर सवितु पन्था देवयानस्तु स स्मृत ॥२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है । लोक की कामना वाले प्रारम्भ किया करते हैं उनका वह दक्षिण पथा होता है ॥ २१ ॥ ये चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग युग मे स्थापित किया करते हैं और वह सन्तति से तप से मर्यादाओ से और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ॥ २११ ॥ पश्चिमो के गृहो मे पूर्व जायमान होते हैं और पश्चिम पूर्वो के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं । इस प्रकार से आवर्त मान वे भूतसम्प्लव तक ठहरा करते हैं ॥ २१२ ॥ अठठासी सहस्र गृहमेधी मुनियो का सविता का दक्षिण भाग है जिसमे वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित हैं तब तक रहते हैं और क्रिया वालो की प्रशस्या करनी चाहिए जो कि श्मशानो के सेवन किया करते थे ॥ २१३ ॥ लोक के सव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से मथुन के उपगम से तथा वहाँ पर कामकृत से और विषय के सेवन से इतने ये कारण है जिन से सिद्ध लोग श्मशानो के सेवन किया करते थे । वे मुनिगण प्रजाओं के इच्छा वाले यहाँ द्वापरो मे उत्पन्न हुए ॥ २१४-२१५ ॥ नागवीथी के उत्तर मे और जो सप्तर्षियों के दक्षिण मे उत्तर सविता का पथा है वह देवयान कहा गया हैं ॥ २१६ ॥

यत्र ते वासिन सिद्धा विमला ब्रह्मचारिण ।
सतत ते जुगुप्सन्ते तस्मा मृत्युर्जितस्तु त ॥२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् ।
उदकपन्थानमर्यम्ण श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात ॥२१८
इत्येत कारणं शुद्ध स्तेऽमृतत्व हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्व विभाव्यते ॥२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिन ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्या पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्ध्वरेतस ॥२२०
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति व स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपद दिव्यं तृतीय व्योम्नि भास्वरम् ॥२२१

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णो परम पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधका ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं । वे निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होने मृत्यु को जीत लिया है ॥ २२७ ॥ उन ऊर्द्ध्वरेताओं के अठ्ठासी सहस्र हैं जो अयमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसम्प्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते है ॥ २१८ ॥ इन सब कारणो से जो कि शुद्ध है वे अस्मृतत्व का सेवन करते थे । और भूतसम्प्लव तक स्थित रहने वालो का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१९ ॥ अयममार्गगामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है । ब्रह्म हत्या और अश्वमेधो से पुण्य, पाप कृत अपर है । भूतसम्प्लव के अन्त मे ऊर्द्ध्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं । ऊर्द्ध्वोत्तर ऋषियो के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है । यह व्योम मे भास्वर तीसरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नही करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है । वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे नु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषा वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनय पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चार ग्रहाणाञ्चैव सर्वश ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतीषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहन ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्य यत्तत् समोहयते प्रजा. ॥५

योऽसौ चतुर्दिश पुच्छ शिशुमारे व्यवस्थित ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहै सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव निसर्ग मे जो उदार थे उनकी व्याख्या कर दी गई है । भविष्य मे जितने सब है उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य चन्द्रमा का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है ? ॥२॥ ऋषियो ने कहा—दिविमण्डल मे ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं । ये सब निमग्न व्यूह से तथा असकर से भ्रमण किया करते है ? और उनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा व स्वय ही भ्रमण किया करते है ? ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते है सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये । इस भूत सम्मोहन के जानने की इच्छा हमे होती है । ४ ॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवे । जो यह प्रत्यक्ष मे देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥ ५ ॥ जो यह चारो दिशाओ मे शिशुमार पुच्छ मे व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढीभूत पुत्र दिव मे ध्रुव है ॥ ६ ॥ वह ही स्वय भ्रमण करता हुआ ग्रहो के साथ चन्द्र और आदित्य दोनो को भ्रमण कराया करता है और उस भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र अनुगमन चक्र की भाँति किया करते है ॥ ७ ॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पत भगण स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धै ध्रुवे बद्धानि तानि व ।
तेषा योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च ॥९
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥१०
वर्षा घर्मौ हिम रात्रि सन्ध्या चैव दिन तथा ।
शुभाशुभ प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्व प्रवर्त्तते ॥११

ध्रुवेणाधिकृताश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरण स कालाग्निर्दिवाकर ॥१२
परिवर्त्त क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिश ।
सूर्यं किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वश ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमा ॥१३
आदित्यपीत सूर्याग्ने सोम सक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधान प्रवर्त्तते ॥१४

ध्रुव के मन स यह भगण स्वय भ्रमण किया करता है और सूर्य- चन्द्र और तारागण नक्षत्रो तथा ग्रहो के साथ सपण किया करते है ॥ ८ ॥ वे सब वातानीकपूर्ण बन्धनो से ध्रुव मे बँधे हुए है। उनका योग भेद और कालचार होता है ॥ ९ ॥ अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन मे अन्य उत्पात एव विपुचद् ग्रह वण यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १० ॥ वर्षा, घाम, हिम, रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओ का शुभ एव अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ ध्रुव के द्वारा अधिकृत जो है उनको अपावृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणो वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ॥ १२ ॥ हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओ से दिशाओं मे आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता है ॥ १३ ॥ सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम सक्रामित किया करता है। वायुयुक्त नाडियो से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदग्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ॥१६
सन्धारणार्थं भूताना मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्त त्रैलोक्य सचराचरम् ॥१७
विश्वेशो लोककृद्देव सहस्राशु प्रजापति ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकर ॥१८

सवलौकिकमम्भो व यत्सोमान्नभस स ुतम् ।
सोमाधार जगत्सवमेतत्तथ्य प्रकीर्तितम ॥१८

सूर्यादुष्ण निस्रवत सोमाच्छीत प्रवर्तत ।
शीतोष्णवीर्यो द्वावेतौ युक्तौ धारयता जगत् ॥२०

सोमाधारा न ी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमा ॥२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे मे सूय अवस्थित रहता है । मेघ वायु के निपात प्राप्त कर उससे ही भूमि पर जल का ्याग किया करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है । वही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियो को स्धा रण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से य० सचराचर त्रलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी लोको की रचना को करने वाला देव सहस्र किरणो वाला प्रजापति समस्त लोक का धाता प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स्र त होता है । यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है । यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूय से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है । सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है । ये दोनो शीतोष्ण वीय वाले हैं और दोनो ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ॥२ ॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है । हे द्विजोत्तमा ! य समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च या ।
तप स दह्यमानेपु जङ्गमस्थावरेपु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वश ॥२२
तन चाभ्राणि जायन्त स्थानमभ्राम्भसा स्मृतम् ।
आकन्तजा हि भूतभ्यो ह्यादत्त रश्मिभिर्जलम ॥२३
समुद्राद्वायुसयोगाद्वह त्यापो गभस्तय ।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्ती दिवाकर ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शुक्ला शुक्लगभस्तिभि ॥२४
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्तत ॥२५
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसंभवम् ॥२६
मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्रं कवयो विदु ॥२७
मेघाना पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियो के शरीरो मे जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जगम और स्थावरों मे सवत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ ।। उससे फिर बादलो की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणो के द्वारा भूतो से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के सयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं । क्योकि फिर ऋतु के वश से काल मे दिवाकर परिवर्त्ती हो जाता है । शुक्ल किरणो के द्वारा मेघो से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रो मे रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं य जल समस्त प्राणियो के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छै मास तक यह जल भूमि पर वर्षता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २० ॥ मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलो को भ्रंशित नही किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुन मेघो की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमात्प्रभवं स तम् ।
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम् ॥१९

सूर्यादुष्णं निस्रवति सोमाच्छीतं प्रवर्तते ।
शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥२०

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमा ॥२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे मे सूर्य अवस्थित रहता है । मेघ वायु के निपात प्राप्त कर उससे ही भूमि पर जल का त्याग किया करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उद्दाम होता है और फिर गिरा करता है । वही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियो को धारण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी लोकों की रचना को करने वाला देव सहस्र किरणों वाला प्रजापति समस्त लोक का धाता प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स्रुत होता है । यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है । यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है । सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है । ये दोनों शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनों ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ॥२० ॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है । हे द्विजोत्तमो ! ये समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे आने वाली होती है ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च या ।
तेषु सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥२२

तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्राम्भसां स्मृतम् ।
आर्कन्तेजो हि भूतेभ्यो ह्याधत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥२३
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः ।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्तो दिवाकर ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शक्ला शुक्लगभस्तिभि ॥२४
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सवभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्तत ॥२५
ततो वषति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितञ्चैव वैद्युतञ्चाग्निसभवम् ॥२६
मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्व व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदु ॥२७
मेघाना पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियो के शरीरो मे जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जगम और स्थावरों मे सवत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ ॥ उससे फिर बादलो की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणो के द्वारा भूतो से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के सयोग से किरणें जल का वहन किया करती है । क्योकि फिर ऋतु के वश से काल मे दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है । शुक्ल किरणो के द्वारा मेघो से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रो मे रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियो के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते है ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छं मास तक यह जल भूमि पर वपता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २: ॥ मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलो को भ्र शित नही किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते है ॥२७॥ पुन मेघो की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है। आग्नेय,

ब्रह्मज और पक्ष व पृथक प्रकार वाले होते है। इन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ॥ २८ ॥

आग्नेयास्त्वणजाः प्रोक्तास्तपा तस्मात् प्रवर्त्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिता ॥२६
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः ।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरंति रमन्ति च ॥३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः ।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिनः ॥३१
मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगाः ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ॥३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाकागर्भदाश्च व बलाकागर्भधारिणः ॥३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनिश्वाससम्भवा ।
ते हि विद्युद्गुणोपेता स्तनयंति स्वनप्रिया ॥३४
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्कुरहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्त व पुनर्यौवनमश्नुते ।
तेष्वित्य प्रीतिमासक्ता भूताना जीवितोद्भवाः ॥३५

जो आग्नेय मेघ होते हैं वे अवर्णज होते है और उनका उससे प्रवर्त्तन होता है। शीत दुर्दिन वात जो ये उसमे अपने गुण है वे व्यवस्थित होते है ॥ २६ ॥ महिष वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी मे आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं ॥ ॥ जीमूत नाम वाले वे मेघ इनसे ही जीव सम्भूत होते हैं। ये विद्युद्गण से रहित और जल धारा के विलम्बी होते है ॥ ३१ ॥ मूक अर्थात् गर्जन न करने वाले घन अर्थात् अत्यधिक गहरे, महान काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश में अनुगमन करने वाले ये एक कोस मात्र से अथवा आधे कोस से भी वर्षा किया करते हैं ॥ ३२ ॥ ये मेघ पर्वताग्र नितम्बो मे वर्षते हैं और रमण किया करते है। बलाकाओ के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओ के गर्भधारी हुआ करते

हैं ॥ ३३ ॥ जो प्रलाज मेघ होते है व प्रला के निर्वाण । उत्पत्ति प्राप्त हुआ करते हैं । ये विद्युद्गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) प्रिय होते है और गर्जना किया करते हैं ॥ ३४ ॥ उनके शब्द प्रमाण से ही भूमि अपने अङ्कुरों के उद्गम वाली हो जाती है । राजा के द्वारा अभिषिक्त की हुई रानी के समान ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है । उनमें यह भूमि प्रीति को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ॥ ३५ ॥

जीमूता नाम ते मेघास्तभ्यो जीवस्य सम्भव ।
द्वितीय प्रवह वायु मेघास्ते नु समाश्रिता ॥३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धाद्विनिष्कृतादपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषा धारासार प्रकीर्त्तिता ।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघा पक्षसम्भवा ॥३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वताना महौजसाम् ।
कामगाना प्रवृद्धाना भूताना शिवमिच्छता ॥३८
पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोय मत्सरा ।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिता ॥३९
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टे स्रष्टार सवर्त्ताग्नेर्नियामका ॥४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिता ।
अनेकरूपसस्थाना पूरयन्तो महीतलम् ।
वायु पर वहन्त स्युराश्रिता कल्पसाधका ॥४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवस्तदा ।
तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्र स्वयम्भुव ।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघा प्रकीर्त्तिता ॥४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है । वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं । ये सार्द्धार्द्ध निष्कृत योजन मात्र से भी उस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि उसे धारासार कहा गया

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से यक्ष पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं। ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं संवर्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह ।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्याममृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्यन्दजं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शीकरं सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ।

ततस्त दावहो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४९

उस सब का भी अयन अविशेष रूप से ध्रुव ही होता है। उनमे परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् भूत एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त मे शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अपाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश मे दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्या, वियत और स्वर्ग के मार्ग मे स्थिति करने वाली गङ्गा धारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके जल को विनन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरो के द्वारा सीकर का मुचन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा मे जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड के उत्तर और दक्षिण मे पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमे पडी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महतगिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेष तत परम् ।
इहाभ्येति तत पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाश्चाप्यायतश्चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीना स्रष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा वेष्टित. सूर्यस्ताभ्या वृष्टि· प्रवर्त्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टि सहरते पुन ॥५२
ग्रहान्नि सृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
वारस्यान्ते विशत्यर्क ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अत सूर्यरथस्याथ सन्निवेश निबोधत ।
सस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

हिरण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ।
नष्टधर्मान्धकारेण षट प्रकार वर्नमिना ।
चक्रेण भास्वता सूर्य स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥५५
दश योजनसाहस्रो विस्तारायामत स्मृत ।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणत ॥५६

हिमवान पर्वत का अतिक्रमण करके उससे आगे वृष्टि का शेष भाग वहाँ आता है। इसके पश्चात् अन्नरात्र की वृद्धि के लिए वह वर्षा हुआ करती है ॥ ५ ॥ मेघ और आप्यायन यह सब कह दिया गया है। वृष्टियों के सृजन करने वाला सूर्य ही उपदिष्ट किया जाता है ॥ ५१ ॥ ध्रुव के द्वारा आवेष्टित सूर्य होता है उन दोनों से वृष्टि प्रवृत्त हुआ करती है। ध्रुव के द्वारा वायु फिर वृष्टि का संहार किया करता है ॥ ५२ ॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में चार के अन्त में ध्रुव के द्वारा परिवेष्टित सूर्य में प्रवेश किया करता है ॥ ५३ ॥ इसमें आगे उसके पश्चात् सूर्य के रथ का सन्निवेश को समझ लो। एक चक्र से संस्थित होने वाले पाँच आर से त्रिनाभि से युक्त तथा महान् ओज वाले हिरण्मय पर्व से अन्वित एवं मार्ग के अन्धकार को दूर करने वाले तथा छः प्रकार की एक नेमि वाले भास्वान चक्र वाले रथ से भगवान प्रसर्पण किया करते हैं ॥ ५४–५५ ॥ दस हजार योजन वाला विस्तार तथा आयाम कहा गया है जो ईषा दण्ड प्रमाण से इसके रथोपस्थ से द्विगुना होता है ॥ ५६ ॥

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन त ।
असङ्ग काञ्चनो दिव्यो युक्त परमग हय ॥५७
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यत शुक्रस्ततः स्थित ।
वरुणस्यन्दनस्येह लक्षण सदृशस्तु स ।
तेनाऽसौ सर्पतिव्योम्नि भास्वता तु दिवाकर. ॥५८
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ।
संवत्सरस्यावयवै कल्पितानि यथा क्रमम् ॥५९
अहस्तु नाभि सूर्यस्य एकचक्र स वै स्मृता ।
आरा पञ्चर्तवस्तस्य नेमि षडृतव स्मृता ॥६

रथनीड स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूवरावुभौ ।
मुहूर्ता वन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कला स्मृता ॥६१
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा ईषादण्ड क्षणास्तु वै ।
निमेषाश्चानुकर्षोऽस्यईषा चास्य लवा स्मृता ॥६२
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध समुच्छ्रित ।
युगाक्षकोटी ते यस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ॥६३

उसका वह रथ अर्थ के वश मे रहने वाले ब्रह्मा के द्वारा निर्मित किया गया है जोकि सङ्ग रहित, दिव्य और सुवण का है और पर-गमन करने वाले अश्वो से युक्त भी होता है ॥५७॥ अश्व स्वरूप छन्दो के द्वारा जहाँ शुक्र है वहाँ पर ही स्थित होता है। यहाँ यह वरुण के रथ के लक्षणों के सदृश ही होता है। भास्वत उसके साथ ग्रह व्योम मे दिवाकर गमन किया करता है ॥५८॥ इसके उपरान्त सूर्य के रथ के इन प्रत्यङ्गो को सम्वत्सर के अवयवो के द्वारा यथाक्रम कल्पित किया गया है ॥५६॥ अह अर्थात् दिन सूर्य की नाभि है और वह एक चक्र वाला कहा गया है। पाँच ऋतुएँ ही उसके पाँच आर होते है और छं ऋतुएँ उसकी नेमि बताई गई है ॥६०॥ अब्द रथ का नीड कहा गया है और दो अयन ही उसके दो कूवर है। मुहूर्त उसके बन्धुर है और कला उसकी शम्या है। ऐसा ही बताया गया है ॥६१। काष्ठा उसकी घोणा कही गई है और क्षण ईषादण्ड कहा गया है निमेष इसके अनुकर्ष है और लव इसका ईषा बताया गया है ॥६२॥ रात्रि इस रथ का रूप है। धर्म इसका ऊपर को समुच्छ्रित ध्वज है। अर्थ और काम ये दोनो उसके युगाक्ष कोटी कहे गये है ॥६३॥

सप्ताश्वरूपाश्छन्दासि वहन्ते वामतो धुराम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च अनुष्टुब् जगती तथा ॥६४
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ।
अक्षे चक्र निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्ष समर्पित ॥६५
सहचक्रो भ्रमत्यक्ष सहाक्षो भ्रमति ध्रुव ।
अक्ष सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरित ॥६६

एवमथ वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथ ॥ ७
तेनाऽसौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी निचक्रयुगयोस्तु च ।
भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ॥६६
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण संगृहीते च द्विचक्रश्च तरज्जुवत् । ७०

सात अश्वों के रूप में रहने वाले छन्द हैं जो वामभाग से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री त्रिष्टुप अनुष्टुप जगती पंक्ति बृहती और सातवाँ उष्णिक है। अक्ष में चक्र निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ॥६४॥६५॥ चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ में ध्रुव घूमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ॥६६॥ इस प्रकार से अथ के वश से उसके रथ का यह संनिवेश किया गया है और उस प्रकार से संयोग के भाव से सम्यकतया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ॥६७॥ उस रथ के द्वारा ही यह सूर्य देव दिव में वेग के साथ सर्पण किया करते हैं। उसके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ॥६८॥ त्रिचक्र युगों की दोनों रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ॥६६॥ उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्र स्वर रज्जु की भाँति संगृहीत होती है ॥७०॥

भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ॥७२
वर्द्धते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण संगृहीतो तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥७३

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं। उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती है ॥७१॥ जिस प्रकार से कील मे आसक्त रज्जु सब दिशाओ मे भ्रमण किया करती है रास को प्राप्त होने वाली उसकी वे दोनो रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती है ॥७२॥ दक्षिण में मण्डलो का भ्रमण करने वाले उसको ध्रुव के द्वारा सग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती है ॥७३॥ जिस समय मे ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती है उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते है । वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलो को चले जाते है ॥७६॥

॥ प्रकर्ण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥३
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोयश्चैव तावुभौ ॥४
रक्षो हेति प्रहेतिश्च यातुधानावदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥६
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहा हुहू ।
रथ स्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावभौ ॥७
पौरुषेयः वधश्च व यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति व सूर्ये मासयो शुचिशुक्रयो ॥८

श्रीमनजी ने कहा—यह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है। इसी प्रकार से गन्धर्व अप्सराएँ ग्रामणी सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ॥१॥ ये सब सूर्य में दो दो मासतक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहाँ वास हुआ। भास्कर में जिसका निवास है उनका परिगणन किया जाता है धाता अर्यमा पुलस्त्य पुलह प्रजापति उरग वासुकि और सङ्कीर्णार ये दोनो गायन करने वाले श्रेष्ठ तुम्बरु और नारद गन्धर्व क्रतुस्थली अप्सरा पुञ्जिकस्थली ग्रामणी रथकृच्छ्र और तपोम ये दोनो रक्ष हेति प्रहेति दो यातुधान और मधु माधव के मासों में यह गण भास्कर में वास करते हैं ॥२॥३॥४॥५॥ वासन्त और ग्रैष्मिक दो-दो मास है उनमें मित्र वरुण अत्रि और वसिष्ठ ऋषि तक्षक रम्भ मेनका और सहाजन्या तथा हहा हुहू दो गन्धर्व रथस्वन ग्रामण्य और रथचित्र ये दोनों पौरुषेय और वध दो यातुधान ये शुचि शुक्रमासो में सूर्य में निवास करते हैं ॥६॥७॥८॥

तस सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवता ।
इन्द्रश्च व विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥९
एलापणस्तथा सर्प शङ्खपालश्च तावुभौ ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रात श्चवारुणाश्च ह ॥१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्र श्व तश्च तावुभौ ।
नभानभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११
शरद्दतौ पुन शुभ्रा वसन्ति मुनि देवता ।
पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाज सगौतम ॥१२

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथ व सुरभिश्च य ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नाग ऐरावतश्चैव चित्रस्तश्च धनञ्जय ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये मासयोश्च उर्जयो ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहां सूर्य मे अन्य देवता निवास करते है जिनमे इन्द्र, विवस्वान्, अङ्गिरा, भृगु एलापण, सप और शङ्खपाल ये दोनो विश्वा वसु-उग्रसेन, प्रात अरुण-विरयात प्रम्लोचा और निम्लोचा व दोनो, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत ये दोनो, यह गण नभ और नभस्य इन दो मासो मे भास्कर मे वास करते हैं ॥९॥१०॥११॥ शरद ऋतु मे फिर शुभ मुनि और देवता धाम किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भाँति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनो शुभ लक्षणो मे से युक्त, नाग और ऐरावत, चित्रत और धनञ्जय सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी व दोनो जल और वात ये दोनो यातुधान कहे गय हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों मे सूर्य मे निवास करते हैं ॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्म सर्प कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
तत शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

काद्रवेयो तथा नागो कम्बलाश्वतरावभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतुजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासों में तो निम्न लोग अर्थात् अधोलिखित लोग सूर्य में वास करते हैं—अंशु और भग ये दोनों अध्वर्यु और ऋतु भुजङ्ग महापद्म सर्प तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायु ये दोनों उर्वशी और चित्रचित्ति ये दोनों शुभ अप्सराएँ-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी विद्युत और स्फूर्ज ये दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा विष्णु जमदग्नि विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा-ऋतजित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी ब्रह्मोपेत तथा रक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य में क्रम से निवास किया करते हैं ॥२ ॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसङ्ग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ॥२६
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्त्वं यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषा सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वा पन्नगाप्सरसाङ्गणा ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिश· ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभ कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिता ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं। ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं ।। २४ ॥ वे मुनिगण प्रथित वचनो के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतो एव नृत्यो के द्वारा सूर्य की उपसना किया करते है ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम सग्रह किया करते हैं। सप सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं। वालाखित्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल मे ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवो के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो दो मास पर्यन्त दिवाकर मे यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओ के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे । ये तपते हैं, वपते है, दीप्त होते है, त्राण करते हैं और सृजन करते है एव प्राणियो के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये है ॥ २९-३० ॥

मानवाना शुभ ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरित हि प्रचाराणा व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरहस ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगा ॥३२
वपन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजा ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थान मन्वन्तरेषु वै ।

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावभौ ।
गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासों में तो निम्न लोग अर्थात् अधोगणित लोग सूर्य में वास करते हैं—अंश और भग ये दोनों कश्यप और ऋतु भुजङ्ग-महापद्म सर्प तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायु ये दोनों उर्वशी और विप्रचिति ये दोनों शुभ अप्सराएं-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी विद्युत और स्फूर्ज ये दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा विष्णु जमदग्नि विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा ऋतजित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी ब्रह्मो पेत तथा दक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते हैं ॥२० ॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तका ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
ग्रथितैर्स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ॥२६
एते पामेव देवाना यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्यं यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेपा सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वा पन्नगाप्सरसाङ्गणा ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिश ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभ कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिता ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते है । ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं । २४ ॥ वे मुनिगण प्रथित वचनो के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराये गीतो एव नृत्यो के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम सग्रह किया करते हैं । सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं । वालाखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल मे ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवो के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर मे यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओ के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे । ये तपते हैं, वपते हैं, दीप्त होते हैं, तान करते हैं और सृजन करते हैं एव प्राणियो के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये है ॥ २९-३० ॥

मानवाना शुभ ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरित हि प्रचाराणा व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरहस ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगा ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजा ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थान मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागताना व वर्तन्ते साम्प्रत त ये ॥३४
एव वसन्ति ौ सूये सप्तकास्त चर्तादशम् ।
चतद् शसु सर्गपु गणा मन्वन्तरेपु च ॥ ५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घम हिमञ्च वपन्च दिन निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितृश्च मनुजाश्च तपयन् ॥६
प्रीणाति दवानमृतेन सूर्य सोम सुषुम्नेन विवद्ध यित्वा ।
शुक्ले त पूर्ण दिवसक्रमेण त कृष्णपक्षे विबुधा पिबन्ति ॥ ७

ये मानवो के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओ के अच्छे कर्मों का हरण किया करते है । कही-कहो पर प्रजाओ के दुरित का व्यपोह किया करते है ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान मे अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले वात रहस ये सूर्य के साथ ही दिन मे अनुगमन करने वाल होते हुए भ्रमण किया करते है ॥ ३२ ॥ वर्षण करत हुए तपने हुए और प्रजा को आह्लादित करत हुए यहाँ पर अनुक्षय स समस्त प्राणियो की रक्षा किया करते है ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियो के मन्वन्तरो मे यह स्थान है अतीत और अनागतो तथा जो साम्प्रत है वर्तित होते है । १४ ॥ इस प्रकार से वे सप्तक चारो दिशाओ मे सूर्य मे वास किया करते है जो चौदह सर्गों म और मन्वन्तरो मे गण बसते है ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल मे हिम मे और वर्षाओ म घाम हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करत हुए एव दिन और रात्रि को बनात हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियो वाला देव पितर और मनुष्यो को तृप्त करत हुए जाते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओ को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषम्ना के द्वारा विशेष रूप से वर्धन करके प्रसन्न किया करता है । शुक्लपक्ष मे तो पूर्ण और दिनो के क्रम से कृष्णपक्ष मे उसको देवता लोग पान करते है ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोम द्विकालावशिष्ट कृष्णक्षये रश्मिभिस्त्र क्षरन्तम् ।
सुधामृत तत्पितर. पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव काव्यम् ॥३८
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धताभिरद्भि पुनश्चैव समुद्धताभि ।
वृष्ट्यातिवृद्धाभिरथौषधीभिमर्त्या क्षुधन्त्वन्नपानेर्जयन्ति ॥३९

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमास सुराणा मासार्द्धतृप्ति स्वधया पितृणाम् ।
अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्यान् सूर्य स्वय तच्च बिभर्ति गोभि ॥४०
अय हरिस्तैर्हरि भिस्तुरङ्गैर्ग्यन् हि चापो हरती त रश्मिभि ।
विसर्गकाले विसृजश्च ता पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥४१
हरिहरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गै पिबत्यथापो हरिभि सहस्रधा ।
तत प्रमुञ्चत्यपि तास्तथसो हरि स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमै ॥४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्ण रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वै सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्ता सप्तभि सप्तभिर्हयै । ४४

द्विकाला वशिष्ट पीत सोम को कृष्णक्षय मे रश्मियों के द्वारा क्षरण करते हुए उस सुधामृत को पितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से कव्य का पान किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सूय की किरणो मे जो कि समुद्भूत हैं और फिर समुद्धृत जलो से वृष्टि मे अत्यन्त बढ़ी हुई ओषधियो से मनुष्य क्षुधा को अन्न पानो से जीता करते हैं ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरो की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यो को अन्न से सर्वदा तृप्ति होती है अत सूय स्वय किरणो द्वारा उसका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमो के द्वारा जाता हुआ रश्मियो से जलो का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुन उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमो से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियो के द्वारा जल का पान किया करते है । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमो से मुह्यमान होते हैं ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव मे क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र मे सात सात अश्वो से सात द्वीप वाले समुद्रो के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्तत स्थितैः ।
कामरूपै सकृद्युक्तै रमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अशीतिं मण्डलशतं भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता बालखिल्यैस्तु भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७
ग्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरागणैः ।
पतङ्गैः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥४८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ॥४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ।
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः ।
सकृद्युक्तं रथं तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥५१

उन छन्द रूप अश्वों से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले एकबार युक्त किये हुए अमित मनोवेगों से युक्त हरित अव्यय पिङ्ग ब्रह्मवादी ईश्वर के अश्व हैं जो अब्द में अस्सी मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ॥ ४५ ४६ ॥ दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रयुक्त वे भूत सम्प्लव तक वहन किया करते हैं। बालखिल्यों से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ॥ ४७ ॥ परम ग्रथित एवं उत्तम वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा गीत एवं नृत्यों से सेव्यमान होते हैं। दिवस्पति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥ तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है। सूर्य की भाँति इसकी किरणों का ह्रास

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ॥ ४९ ॥ तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों मे स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ मे अश्वो तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रो से युक्त और शुक्ल अश्वो के सहित होता है ॥ ५० ॥ सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वो से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ॥ ५१ ॥

सगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षु श्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शखवर्चसम् ॥५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हय ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हसो व्योमी मृगस्तथा ॥५३
इत्येते नामभि सर्वे दश चन्द्रमसो हया ।
एते चन्द्रमस देव वहन्ति दिवसक्षयात् ॥५४
देवै परिवृत सौम्य पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्ल पक्षादौ भास्करे पुरत स्थिते ।
आपूर्यते पुरस्यान्त सतत दिवसक्रमात् ॥५५
देवै पीत क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीत पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्कर ॥५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भाग भागमह क्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कला ॥५७
तस्माद्ध्रमन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च ।
इत्येव सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनु ॥५८

उस सग्रहीत रथ मे श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रथ का वहन किया करते हैं ॥ ५२ ॥ उनके नामो का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हस, व्योमी, मृग ये दश इन नामो वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ॥ ५३ ॥ देवो तथा पितरों के द्वारा परिवृत एव सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

चन्द्रमा के शु का अन्तर्भा । दिन के क्रम से सतत आपूर्ति त होता है ॥ ५५ ॥ क्षय में पैयो के द्वारा पीत सोम को नि य ही आप्यायित करता है । प ह दिन तक वह पीत होता है औ भास्कर अपनी एक ही रश्मि स यह क्रम के अनुसा भाग भाग को आपूरित सुषम्ना से करते हुए हते है और सुषम्ना से आ यायमान च न्द्र की शुक्ल कलाएँ बना क रते है ॥ ५६ ७ ॥ उसस कृष्ण पक्ष मे क्षयित होती है औ शुक्ल मे आ यायित हुआ करती है । इस प्रकार से सय के वीय स चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ॥ ५ ॥

पौर्णमास्या स दृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।
एवमाप्यायित सोम शुक्लपक्षे दिनक्रमात ॥५८
तता द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्द शी ।
अपा सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।
पिबन्त्यम्बुमय देवा मधु सोम्य सुधामयम् ॥६०
सम्भृतश्चार्द्धमासेन अमृत सूर्यतेजसा ।
भक्षार्थममृत सौम्य पौर्णमास्यामुपासते ॥६१
एकरात्र सुर सर्वे पितृभिश्च महर्षिभि ।
सामस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥६२
प्रक्षीयते पुरस्यान्त पीयमाना कला क्रमात् ।
क्षायन्ते तस्मात कृष्णे या शुक्ल ह्याप्याययन्ति ता ॥६३
एव दिनक्रमात्पीते विबुधैस्तु निशाकरम् ।
पात्वार्द्ध मासद्गच्छन्ति अमावास्या सुरोत्तमा ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्या निशाकरम् ॥६४
तत पञ्चदशे भाग किञ्चिच्छिष्ट कलात्मक ।
अपराह्णे पितृगणजघन्य पर्युपासते ॥६५

पौर्णमासी तिथि मे सम्पूर्ण मण्डल शुक्ल दिखलाई देता है । इस प्रकार से सोम (चन्द्र) शुक्लपक्ष मे दिनों के क्रम से आप्यायित हुआ करता है ॥ ५९ ॥ फिर इसके उपरान्त मे द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलो के सार पूर्ण इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है उसके अम्बुमय मधु सौम्य

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते है ॥ ६० ॥ सूर्य के तेज से अध मास मे वह अमृत पुन सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिये पूर्णमासी तिथि मे उपासना की जाती है ॥ ६१ ॥ भास्कर के अभिमुख मे स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि मे एक रात्रि मे देवता, समस्त पिता और महर्षियो के द्वारा पीई गयी कलाऐं क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती हैं। जो शुक्लपक्ष मे आप्यायित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष मे क्षीण हो जाया करती है ॥ ६२ ॥ इस प्रकार से दिनो के क्रम के अतीत होने पर विबुध लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि मे सुरोत्तम अर्द्ध का आसन्न मन किया करते है। अमावस्या मे पितृगण निशा करके उपस्थान को करते हैं ॥ ६३-६४ ॥ इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवे भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्न मे जघन्य वह पितृगणो के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ॥ ६५ ॥

पिबन्ति द्विकलाकाल शिष्टा तस्य तु या कला।
नि सृत तदमावास्याङ्गभस्तिभ्य स्वधामृतम्।
ता स्वधा मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६
सौम्या बर्हिपदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च।
कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ता पितर सर्व एव ते ॥६७
सवत्सरास्तु वै कव्या पञ्चाब्दा ये द्विजै स्मृता।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिपद स्मृता।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजा ॥६८
पितृभि पीयमानस्य पचदश्या कला तु वै।
यावन्न क्षीयते तस्य भाग पचदशस्तु स ॥६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम्।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्या शशिन स्मृतौ ॥७०
एव सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे।
ताराग्रहाणा वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथ पुन ॥७१
तोयतेजोमय शुभ्र सोमपुत्रस्य वै रथ।

युक्तो हयै पिशङ्ग स्तु अष्टाभिर्वानरहंसै' ॥७२

उसकी जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं। अमावस्या मे किरणो के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिये पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य बर्हिषद अग्निष्वात्त और कव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर कव्य होते हैं जो द्विजो ने पाँच अब्द बतलाये हैं। सौम्य ऋतुऐं जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये है। अग्निष्वात्त मानव होते हैं। हे द्विजो! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणो के द्वारा पीयमान चन्द्र की पञ्चदशी (अमावस्या) मे जब तक पञ्चदश भाग क्षीण नहीं होता है तब तक अमावस्या मे उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है। शशि के षोडशी मे पक्ष के आदि मे वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार से निशाकर मे जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है मय के निमित्त वाली ही हुआ करती है। ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज से परिपूर्ण होता है और गर्भ वर्ण वाला होता है। और वह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वो से युक्त होता है ॥ ७२ ॥

सवरूथ सानुकर्षो सता दिव्या रथ महान् ।
सापासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभ ॥७३
भार्गवस्य रथ श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभ ।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमै ॥७४
श्वेत पिशङ्ग सारङ्गो नील पीतो विलोहित ।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषत पृष्णिरेव च ।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगिभि ॥७५
अष्टाश्व काञ्चन श्रीमान् सोमस्यापि रथोऽभवत ।
असगैलोहितैरश्वै सर्गैरग्निसम्भवै ।
सर्पतोऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रग ॥७६
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पति ।

शोणैरश्वै काचनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितै ।
नक्षत्रेऽब्दमिवसति सवेगस्तेन गच्छति ।।७८
तत शनैश्चरोप्यश्वै शबलैर्व्योमसम्भवै ।
कार्ष्णायसम् समारुह्य स्यन्दन याति वै शनै ।।७९

उस रथ मे वरुथ क सहित अनुरूप म युक्त महान्, दिव्य मून होता है। और वह उपासङ्ग एव पताका से अन्वित एव ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ।। ७३ ।। भार्गव का रथ तेज मे सूय के सदृश होता है। वह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वण वाले उत्तम अश्वो से युक्त होता है ।। ७४ ।। अब उन अश्वो के नामो की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृशत और पृष्णि ये दश अकृश वायु के वेग वाले महाभाग अश्वो म युक्त रथ होता है ।। ७५ ।। आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा मे युक्त सोम का रथ था। सवत्र जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वो के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सपण किया करता है ।। ७६ ।। इसके आगे आङ्गिरस, देवो के आचार्य परम विद्वान बृहस्पति शोण अश्वो से युक्त सुवणमय रथ से प्रसपण करते हैं ।। ७७ ।। दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वो से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे हट जाता है ।।७८।। फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शवल अर्थात् रङ्ग-विरगे अश्वो से युक्त काले लोह मे निर्मित रथ में चढकर धीरे से जाया करता है ।। ७९ ।।

स्वर्भानोस्तु तथवाश्वा कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवा ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ।।८०
आदित्यान्निसृतो राहु सोम गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुन सौरेपु पर्वसु ।।८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरहस ।
पलालधूमसङ्काशा शवला रासभारुणा ।।८२

एते वाहा ग्रहाणा व मया प्रोक्ता रथ मह् ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८३

एते व भ्राम्यमाणास्तु यथा योग भ्रमन्ति व ।
वायव्याभिरदृश्याभि प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषा गणा ॥८५

यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्य ते उह्यन्ते वातरश्मिभि ।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी उसी प्रकार के होते है। वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है। उसके अन्धकारमय रथ मे एक बार युक्त होते हुए उसका वहन किया करते हैं ॥ ८ ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों मे चन्द्रमा को चला जाता है। पुन सौर पर्वों मे सोम से निकलकर आदित्य में आया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है। इनका रग पलाल के धूआँ के समान होता है शबल और रासभारुण होता है ॥ २ ॥ ये ग्रहों के वाहन मैंने रथों के सहित बतला दिए हैं। ये सब ध्रुव से निबद्ध और वात रश्मियों से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ ये भ्राम्यमाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं। अदृश्य वायव्याओ से वातरश्मियो प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उनसे बद्ध चन्द्र सूर्य और ग्रह दिव मे परिभ्रमण किया करते है। भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियो के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल मे नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं। इसी से वे देवगण आकाश में सबके द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्च व तारास्तु तावन्तो वातरश्मय ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥८९
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ॥९०
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ॥९१
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ॥९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्य अश्विनौ पूर्वपादयोः ॥९३

आकाश मण्डल में जितने तारागण हैं उतनी ही वात रश्मियाँ भी हैं। ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुई स्वयं भ्रमण किया करती हैं और उसको भ्रमण कराया भी करती हैं ॥ ८७ ॥ तैल पीडाकर चक्र (पहिया) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से वातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ॥ ८८ ॥ वात चक्र से ईरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं। इससे वह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वयं बहता है, ऐसा कहा गया है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध होता हुआ ज्योतियों का गण सर्पण किया करता है। वह यह दिव में तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए। जो कि दिन में पाप किया करता है और उसको रात में देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ॥ ९० ॥ जितने ही वे तारा दिवि में शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ॥ ९१ ॥ प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए। वह उत्तान पाद का उत्तर हनु हो ॥ ९२ ॥ यज्ञ को अधर और धर्म को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए। हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों में साधन करना चाहिए ॥ ९३ ॥

वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्न संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रित ॥६४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचि कश्यपो ध्रुव ।
तारका शिशुमारश्च नास्तमेत चतुष्टयम् ॥६५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागण सह ।
उन्मुखाभिमुखा सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ॥६६
ध्रुवेणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रयान्तीह वर श्रेष्ठमेधीभूत ध्रुवन्दिवि ॥६७
ध्रुवाग्निकश्यपाना तु वरश्चासौ ध्रुव स्मृत ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ॥६८
ज्योतिषाश्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुख ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ॥६९

उसके पश्चिम सक्थि मे वरुण तथा अर्यमा का साधन करना चाहिए। उसका शिश्न समर है। मित्र अपान मे समाश्रित रहता है ॥ ६४ ॥ पुच्छ मे अग्नि महेन्द्र मरीचि कश्यप और ध्रुव-तारक और शिशुमार पद चतुष्टय अस्त नही होने हैं ॥ ६५ ॥ नक्षत्र चन्द्र सूर्य ग्रह तारागणो के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि मे चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ॥ ६६ ॥ ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है। यहाँ वर श्रेष्ठ और एकीभूत ध्रुव को दिवि मे प्रमाण किया करते हैं। ६७ ॥ ध्रुव अग्नि और कश्यप इन तीनों मे ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है। यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा मे भ्रमण किया करता है। यह ज्योतियो का चक्र अवाङ्मुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है। यह मेरु को देखता है और यहाँ प्रदक्षिण को जाता है ॥ ६८ ६९ ॥

॥ प्रकरण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनय पुनस्ते संशयान्विता ।
पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ॥१

यदेतदुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथ देवगृहाणिस्यु कथ ज्योतीपि वर्णय ॥२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिपाञ्चैव निश्चयम् ।
श्रुत्वा तु वचन तेपा तदा सूत समाहित ॥३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्त ज्ञानबुद्धिभि ।
तद्वोऽह सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४
अत पर त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्ने पार्थिवस्य च ॥५
व्युष्टायान्तु रजन्या वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिव सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृत ॥७

श्री शाशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुन सशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्पण से उत्तर पूछा ॥१॥ ऋषियो ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह है तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ यह सब ज्योतियो का निश्चय बताइये । यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियो से कहा—॥ ३ ॥ महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय मे जो कुछ कहा है वह अब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का जन्म कहता हूँ । यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के ग्रह हैं ॥ ४ ॥ इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा । दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनो प्रकार की अग्नियो की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ॥ ५ ॥ व्युष्ट रात्रि मे अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा को यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ॥ ६ ॥ चार भूतो मे अवशिष्ट इसमे वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है । जो आदि मे सूर्य मे ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥ ७ ॥

वैद्युतास्यस्तु विज्ञ यस्तेषा वक्ष्येऽथ लक्षणम ।
वद्युतो जाठर सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽग्नय ।
तस्मादप पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥८
वद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भि प्रशाम्यति ।
मानवानाच कुक्षिस्थो नाद्भि शाम्यति पावक ॥६
अर्चिष्मान् परम सोऽग्नि प्रभवो जाठर स्मृत ।
यश्चाय मण्डली शक्लो निरूष्मा सप्रकाशते ॥१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्त याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११
उद्यन्त च पुन सूयमौष्ण्यमाग्नेयमाविशन् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ॥१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्य च सौराग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुन सूये रात्रिराविशते त्वप ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१४

जो अग्नि वैद्युत—इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती है। एक वद्युत दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गभ होता है। इससे जलो का पान करता हुआ सूय आकाश मे किरणो से दीप्त हुआ करता है ॥ ८ ॥ वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलो से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवो की कुक्षि मे स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नही हुआ करता है ॥ ९ ॥ वह अग्नि परम अर्चियो वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली शुक्ल और बिना ऊष्मा वाला सप्रकाशित होता है ॥ १ ॥ सौरी प्रभा पाद से दिवा करके अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि मे आविष्ट हो जाती है। रात्रि मे वह दूर से प्रका देती है ॥ ११ ॥ यह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुन आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि मे है अतएव य अग्नि ताप दिया

करती है ।। १२ ।। प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर मे अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ।। १३ ।। उत्तर के भूमि के अर्थ भाग मे और उससे इस दक्षिण मे पुन सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि अप मे अर्थात् जल मे प्रवेश करती है । इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि मे उनका प्रवेशन होता है ।। १४ ।।

अस्त याति पुन सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यप ।
तस्मान्नक्त पुन शुक्ला आपो विशन्ति भास्करे ।।१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्र विशत्यप ।।१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभि ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्य शुचिरिति स्मृत ।।१७
सहस्रपाद सोऽग्निस्तु वृत्त कुम्भनिभ शुचि. ।
आदत्ते तत्तु रश्मीना सहस्रेण समन्तत ।।१८
नादेयीश्चैव सामुद्री कौप्याश्चैव सधान्वनी ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्यो हिरण्मय ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनि स्रवम् ।।१९
तासाचतु शता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्त्तय ।
वन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।
अमृता नामत सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जना ।।२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशता पुन ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जना ।।२१
चन्द्रास्ता नामत सर्वा पीताभास्तु गभस्तय ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।।२२

पुन सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल मे प्रवेश किया करता है । इसी से रात्रि मे शुक्ल जल भास्कर मे आविष्ट होते हैं ।। १५ ।। इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध मे उदयास्तमय में नित्य ही दिन-रात जल मे प्रवेश किया करते हैं ।। १६ ।। जो यह सूर्य जलो का अपनी

किरणो के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पार्थिव और विमिश्र दिव्य शुचि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला वह अग्नि कुम्भ के सदृश शुचि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी सामुद्री कौप्य सथाम्बनी स्थावर और जङ्गम होते है और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ वर्षा शीत और उष्णता का निस्रव करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्त्ति वाली चार सौ नाडी वपती हैं। वन्दना वद्या ऋतना नूतना अमृता इन नामो वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ वृष्टि के सजन करने वाली हैं ॥ २ ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती हैं। ये दृश्या मेघ्या वाह्या ह्लादिनी हिमवजना और चन्द्रा नामो वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। मकरा ककुभ ग न विश्व भृत होती हैं ॥ २२ ॥

शुक्लास्ता नामत सर्वास्त्रिशता धमसजना ।
सम विभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवता ॥२३

मनुष्यानौपधेनेह स्वधया च पितृ नपि ।
अमृतेन सुरान् सर्वास्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४

वसन्ते चव ग्रीष्मे च स त सुतपते त्रिभि ।
वर्पास्वथो शरदि चतुर्भि सम्प्रकपति ॥२५

हेमन्ते शिशिरे चव हिम स सृजते त्रिभि ।
ओपधीपु बल धत्त स्वधया च पितृ नपि ।
सूर्योऽमरत्वममृतत्रय त्रिषु नियच्छति ॥२६

एव रश्मिसहस्रन्तत् सौर लोकाथ साधकम् ।
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनि स्रवम ॥२७

इत्येत मण्डल शुक्ल भास्वर सूर्यसज्ञितम् ।
नक्षत्रग्रहसोमाना प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
ऋक्षचन्द्रग्रहा सर्वे विज्ञया सूर्यसम्भवा ॥२८

नक्षत्राधिपति सोमो ग्रहराजो दिवाकर ।
शेषा पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वरा कामरूपिण' ॥२६

जो नाम से शुक्ल है वे सब तीन सौ हैं और धर्म का सर्जन करने वाली हैं। उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ॥२३॥ यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ॥२४॥ वसन्त और ग्रीष्म मे वह तीनों से भली प्रकार तपा करता है। वर्षा और शरद मे चारों से अच्छी प्रकार से प्रकर्षण किया करता है ॥२५॥ हेमन्त और शिशिर मे वह तीनों से हिम का सृजन किया करता है। औषधियों मे बल धारण करता है, स्वधासे पितरों को भी सूर्य तीनों मे अमृतत्रय अमरत्व को दिया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती है। ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का भेदन करती हैं ॥२७॥ इतना यह मण्डल शुक्ल एव भास्वर सूर्य की स ज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान हो है। ऋक्ष-चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है। शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ॥२९॥

पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमा स्मृतः ।
शेषाणा प्रकृति सम्यग्वर्ण्यमाना निवोधत ॥३०
सुरसेनापति स्कन्द पठ्यतेऽङ्गारको ग्रह. ।
नारायण बुध प्राहुर्देव ज्ञानविदो विदु ॥३१
रुद्रो वैवस्वत साक्षाद्धर्मो प्रभु स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चर ॥३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३
आदित्यमूलमखिल त्रिलोक नात्र सशय ।

मवत्यस्य जगत्कृत्स्न सदेवासुरमानुषम ॥३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणा विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम ।
द्युतिद्युतिमता कृत्स्ना यत्त ज सार्वलौकिकम् ॥३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूल परमदैवतम ।
तत सजायते सर्वं तत्र च व प्रलीयते ॥३६

आदि य अग्नि पढा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है । धर्मों की प्रकृति को जोकि भली भांति वणन की जाने वाली है समझलो ॥३ ॥ देवताओ की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह पढा जाता है । बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ॥३१॥ रुद्र वैवस्वत है जो लोक मे साक्षात् यम एव स्वय प्रभु हैं । द्विजो मे मन्द मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ॥३२॥ देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनो भानुमान् महाग्रह होते हैं । ये दोनो प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति नाम वाले हैं । ९स्य और महेन्द्र इन दोनो के आधिपत्य मे विनिर्मित हुए हैं ॥३३॥ यह समस्त त्रलोक्य आदित्य के मूल वाला है इसमे कुछ भी सशय नही है । सम्पूण जगत् देव असुर और मानवो के सहित इसका होता है ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द । रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्र देवो की जोकि द्युतिमान् है समस्त द्युति और सार्वलौकिकतेज है उन सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बडा देवता है । उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी मे प्रलीन हुआ करता है ॥३५॥३६॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रवि ॥३७
यत्र गच्छन्ति निधन जायन्ते च पुन पुन ।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा पक्षाश्च कृत्स्नश ।
मासा सवत्सराश्च व ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥३८
तदादित्यादृते तेषा कालसख्या न विद्यते ।
कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रम ॥३९

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफल कुत ।
कुत सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौपधिगणादि वा ॥४०
अभावो व्यहाराणा देवाना दिवि चेह च ।
जगत्प्रतापनमृते भास्कर वारितस्करम् ॥४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापति ।
तपत्येप द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्य सचराचरम् ॥४२

समस्त लोको के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे । हे विप्रो ! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ॥३७॥ जहां पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वसर, ऋतु, अयन और युग निघन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते है ॥३८॥ उस समय आदित्य के विना उनकी काल सख्या नही होती है । काल के विना निगम नही होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ॥३९॥ जब ऋतुओ का कोई विभाग हो नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिव्यक्ति, गुण और ओपधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे ? ॥४०॥ दिव और देवो का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारो का अभाव हो जायगा । वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! वह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है । यह त्रैलोक्य मे समस्त चराचर को तपता है ॥४२॥

स एप तेजसा राशि समस्त सार्वलौकिक ।
उत्तम मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वश ॥४३
रवेरश्मिसहस्र यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् ।
तेपा श्रेष्ठा पुन सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥४४
सुपुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवा पुनश्चान्य सम्पद्वसुरत परम् ।
अर्वावसु पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तित ॥४५

सुषुम्न सूर्य रश्मिस्तु क्षीण शशिनमेधयत् ।
तिर्यगूर्द्धप्रभावोऽसौ सुषुम्न परिकीर्त्यते ॥४६
हरिकेश पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनि प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम ॥४७
विश्वश्रवास्तु य पश्चात् शुक्रयोनि स्मृतो बुधै ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मि सा योनिर्लोहितस्य च ॥४८
षष्ठस्त्वर्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पते ।
शनैश्चर पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट ॥४९

वह यह ही समस्त एव सार्वलौकिक तेजो की राशि है। वायु के उत्तम भाग मे आस्थित होकर अपनी प्रभाओ से इस जगत् को पार्श्व मे-ऊपर की ओर अधोभाग मे सब ओर से यह ताप देता है ॥४३॥ सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो प्राङ मय समुन्नाहृत हुई है उनमे भी फिर श्रेष्ठ ग्रहो की जन्मभूमि सात रश्मियाँ होती हैं ॥४४॥ अब यहाँ कुछ रश्मियों के नाम और उनके काम बत लाये जाते हैं। सुषुम्ना हरिकेश विश्वकर्मा विश्वश्रवा फिर अन्य परम सम्पद्वसु रत अर्वावसु—ये रश्मियाँ प्रकीर्तित की गई हैं ॥४५॥ सुषम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि की वृद्धि करती है। इसका प्रभाव तिर्यक और ऊर्ध्व को हुआ करता है इसी लिये यह सुषम्ना कही जाती है ॥४६॥ हरिकेश नामक रश्मि आद्यारश्मि है और यह नक्षत्रो का जन्म स्थान कही जाती है। विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिणमे बुध का वर्धन किया करती है ॥४७॥ विश्वश्रवा नामक रश्मि जो है यह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई ह। सम्पद्वसु जो रश्मि है व९ लोहित की योनि होती है ॥४८॥ षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है। और स्वराट रश्मि फिर शनश्चर को आप्यायित किया करती है ॥४९॥

एव सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारका ।
वर्द्धन्ते विदिता सर्वा विश्वञ्चेद पुनर्जगत् ।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥५०

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभि ।
तेपा क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्या नक्षत्रताङ्गत ॥५१
तीर्णानि मुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणा तारका ह्येता शुक्लत्वाच्चैव तारका ॥५२
दिव्याना पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वश ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसा तेजसा महान् ॥५३
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेप विभाव्यते ।
सवनात्तेजसाऽपाञ्च तेनासौ सविता मत ॥५४
वह्वर्थश्चन्द्र इत्येप ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६

इस प्रकार से सूय के प्रभाव से सब ग्रह नक्षत्र और तारागण बढते है । यह सर्व विदित है । यह विश्व और यह जगत् भी सूय के प्रभाव से ही वर्द्धित होता है । फिर ये क्षीण नही होते हैं इमी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियो से आपतित होते हैं । उनके क्षेत्रो को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त हुआ ले लेता है ॥५१॥ इस ससार मे सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त मे ग्रहो के आश्रय से ताराओ मे ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि मे होने वाले अन्धकारो को तेजो के आदान करने से ही यह महान् अदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पडा है ॥५३॥ स्पन्दन अर्थ मे सुवति यह धातु विभावित होती है । तेजो के और जलो के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है । ह्लादन मे धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व मे वह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश व गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य होते है ॥५६॥

घनतोयात्मक तत्र मण्डल शशिन स्मृतम् ।

घनतेजोमय शुक्ल मण्डल भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थाना न्येतानि सर्वश ।
म न्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रया ॥५८
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्त भवन्ति च ।
सौर सूर्यो विशस्थान सौम्य सोमस्तथ व च ॥५९
शौक्र शुक्रो विशस्थान षोडशर्चि प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्च व लोहितश्च व लोहित ।
शा ै चर तथा स्थान देवश्चैव श ैश्चर ॥६०
आदित्यरश्मिसयोगात् सप्रकाशात्मिका स्मृता ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भ सवितु स्मृत ॥६१
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणत ।
ि्गुण सूय विस्ताराद्विस्तार शशिन स्मृत ॥६२
तुल्यस्तयोस्त स्वर्भानुभू त्वाधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्ध त्य पार्थिवच्छाया निर्मितो मण्डलाकृति ॥६३

वह घन तोयात्मक शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्ड न घन तजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानो मे प्रवेश किया करत हैं। समस्त म न्वन्तरो मे नक्षत्र-सूय और ग्रहो के आश्रय होत हैं ॥५८॥ वे देवो के गृ ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से वे होत हैं। सूय सौर विशस्थान है और सोम सौम्य विशस्थान होता है ॥५९॥ सोलह अचि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक का प्रवेश स्थान है। बृहद् (बडा) बृहस्पति और लोहित ही लोहित तथा देव श ैश्चर शान श्चर विशस्थान होता है ॥६ ॥ ये सब आदित्य के रश्मियो के स योग से सम्प्रकाशा िमक कहे गये हैं। सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है। सूर्य के विस्तार स दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६२॥ उन दोनो के त ्य स्वर्भानु हो कर अधोभाग स प्रसपण किया करता है। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके वह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६ ॥

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानन्निर्मित यत्तमोयम् ।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोम गच्छति पर्वसु ।।६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुन सोमञ्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्तत स्वर्भानुरुच्यते ।।६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवश्च विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रान् प्रमाणत ।।६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पति ।
बृहस्पते पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुध ।।६७
तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ।।६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ।।६६
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्व न विद्यते ।।७०

स्वर्भानु का बृहत् स्थान जोकि तपोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वों मे चला जाया करता है ।।६४।। सोम से आदित्य मे आता है और फिर पर्वों मे सोम को जाया करता है । अपनी दीप्ति से नुदन किया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु- ऐसा कहा जाया करता है ।।६५।। चन्द्रमा का सोलहवा भाग भृगु का होता है जोकि विष्कम्भ मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ।।६६।। भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम वाले कुज और सौर दोनो कहे गये हैं । विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ।।६७।। यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त है वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ।।६८।। तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्राय इन्हे चन्द्र के योग वाले जानें । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर मे हीन हैं ।।६९।। सौ-पाँच-

चार तीन और दो योजन तारकमण्डल पूर्वापर म निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७ ॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषा ग्रहा ये दूरसर्पिण ।
सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञ या मन्दविचारिण ॥७१
तेभ्योधस्तात्त चत्वार पुनरन्ये महाग्रहा ।
सूय सोमो बधश्च व भागवश्च व शीघ्रगा ॥७२
यावन्त्यस्तारका कोटयस्तावदृक्षाणि सवश ।
वीथीनां नियमाच्च वमृक्षमार्गो व्यवस्थित ॥७३
गतिस्तास्त्वेव सूयस्य नीचोच्चात्वेऽयनक्रमात् ।
उत्तरायण मार्गस्थो यदा पवसु चन्द्रमा ।
वीथ वीथोऽथ स्वर्भानु स्वर्भानो स्थानमास्थित ॥७४
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ।
गृहाण्ये तानि सर्वाणि ज्योतीपि सुकृतात्मनाम् ॥७५
कल्पादौ सम्प्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७६
मन्वन्तरेपु सर्वेषु देवनायतनानि च ।
अभिमानिनोऽत्रतिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७

उनमे ऊपर से तीन ग्रह दूर सर्पी अर्थात् दूरतक सपण करने वाले होते हैं। और अङ्गिरा तथा वक्र ये म न्चारी जानने के योग्य होत हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार अन्य महाग्रह हो ते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं ये सूर्य सोम बुध और भागव होत हैं ॥७२॥ जितने करोड तारका हैं उतने ही सब ओर नक्षत्र होत है। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रो का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की वह गति नीच उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग मे स्थित पर्वो म होता है तब वीथ वीथ का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान मे आस्थित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र नक्षत्रों मे प्रवेश किया करत हैं। ये सब ज्योतियाँ सुकृतात्माओ क गृह होत हैं ॥७५॥ कल्प के आदि मे सम्प्रवृत्त स्वयम्भू के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत सम्प्लव पर्यन्त रहते

हैं ॥७६॥ समस्त मन्वन्तरों में देवताओं के आयत अभिमान वाले जब तक भूत सम्प्लव होता है अवस्थित हुआ करते हैं ॥७७॥

अतीतैस्तु सहातीता भाव्या भाव्यैः सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ॥७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ॥७९
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजकः ॥८०
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥८१
अग्निर्विकल्पान् सञ्जज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः ।
नक्षत्रऋक्षनामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ॥८२
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ।
सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ॥८३
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥८४
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ।
अथ श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ॥८५
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सप्त षोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु पुत्रो हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥८६
हरिश्चाप्य बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ।
अष्टरश्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं वृद्धस्य अम्मयम् ॥८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य ये सुरासुर वर्त्तमानों के साथ अपने सुरों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ॥७८॥ इस मन्वन्तर में ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ॥७९॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ॥८०॥ अङ्गिरा के

पुत्र बहत् तेज वाला देव बृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्विषि पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकल्प से उत्पन्न हुआ जोकि लोहिताधिप है। नक्षत्र ऋक्ष में गमन करने वाली वे दाक्षायणी कही गई हैं ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है जोकि प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम ऋक्ष ग्रह सूर्य रोऽभिमानी कीर्त्तित किये गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता जो बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एवं अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्विषि सहस्रांश का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर पञ्चरश्मि मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥ ८५॥ शक्र का भी स्थान जलमय तथा षोडश रश्मि के तुल्य मय होता है। नवरश्मि शुनक का अपमय लोहित स्थान होता है ॥८६ द्वा गाद बृहस्पति का हरि-आप्य और महत् स्थान होता है। अष्टरश्मि बध का गृह कृष्ण और अपमय कहा गया है ॥८७॥

स्वर्भानोस्तामस स्थान भूतसन्तापनालयम् ।
विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मय ॥८८

आश्रया पुण्यकीर्त्तिना सुशुक्लाश्च व वर्णत ।
घनतोयात्मिका ज्ञेया कल्पादौ वेदनिर्मिता ॥८९

उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रमभि यक्त गभस्तिभि ।
तथा दक्षिणमागस्थो नीचवीथीसमाश्रित ॥९०
भूमिलेखावृत सूर्य पूर्णमावास्ययोस्तथा ।
न दृश्यते यथाकाल शीघ्रतोऽस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकर ।
दृश्यते दक्षिण मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावभौ ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥९३
उत्तरासु च वीथीषु अन्तरास्तमयोदयौ ।
पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ ॥९४

स्यर्भानु का स्थान तामर होता है जोकि भूतो के सन्ताप देने वाला घर होता है। समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और अपमय जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे घन–तोयात्मक होते हैं और उन्हे कल्पके आदि मे ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से गभस्तियो के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखलाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग मे स्थित नीचि वीथी मे समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या मे सूर्य भूमि लेखा से आवृत होता है। वह यथाकाल दिखलाई नही देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग मे स्थित अमावस्या मे निशाकर दक्षिण मार्ग मे दिखाई देता है और नियम मे दिखलाई नही दिया करता है ॥९२॥ ज्योतियो के ग्रह योग से सूय और चन्द्रमा ये दोनो समान काल मे अस्तमय तथा विषुवत् मे समान काल मे उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियो मे अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या मे इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्धञ्चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्द्धं प्रसर्पति ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्धं बुधादूर्द्धं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्धं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्धं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्ववस्थिताः ।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

परस्परस्थिता ह्य ते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञ यस्तेपा योगस्तु व बुध ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग मे स्थित होता है उस समय व० सूर्य समस्त ग्रहो के अधोभाग मे भ्रमण किया करता है ॥९५॥ मण्डल को विस्तीर्ण करके उसके ऊर्ध्व भाग मे चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है । समस्त नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर भ्रमण किया करता है ॥९६॥ नक्षत्रो से ऊपर बुध और बुध से भी ऊर्ध्वभाग मे बृहस्पति चरण किया करता है । उससे ऊपर शनैश्चर और उससे ऊर्ध्वभाग मे सप्तर्षियो का मण्डल चरण करता है । सातो ऋषियो के ऊपर ध्रुव पर्वस्थित है ॥९७॥ दो सौ सहस्र योजनो के ऊपर यथा-क्रम ताराग्रहो के अन्तर हैं ॥९८॥ समस्त ग्रह चन्द्र और सूर्य दिव मे दिव्य तेज से नित्य ही ऋक्षो मे युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते है ॥९९॥ ग्रह नक्षत्र और सूर्य नीच-उच्च और मृदु अवस्थित होते हैं । ये समागम मे और भेद में एकसाथ प्रभा को देखते हैं ॥१ ॥ परस्पर स्थित ये परस्पर मे युज्यमान होते है । विद्वान पुरुषो के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानना चाहिए ॥१ १॥

इत्येष सन्निवेशो व पृथिव्या ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामदधीना च पर्वताना तथव च ॥१ २
वर्षाणा च नदानाञ्च येषु तेषु वसन्ति वै ।
एते च व ग्रहा पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थित ॥१ ३
विवस्वानदिते पुत्र सूर्यो व चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणा प्रथमो ग्रह ॥१०४
त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मि समुत्पन्न कृत्तिकासु निशाकर ॥१ ५
षोडशार्चिर्भृगो पुत्र शुक्र सूर्यादनन्तरम् ।
ताराग्रहाणा प्रवरस्तिष्यऋक्षे समुत्थित ॥१०६
ग्रहश्चाङ्गिरस पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पति ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्न सर्वासु च जगद्गुरु ॥१०७

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रह ।
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुति ॥१०८

इतना यह आपका पृथिवी मे सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है । इसी प्रकार से द्वीपो का, समुद्रो का, पर्वतो का तथा वर्षों का और नदियो का है जिनमे वास किया करते हैं । ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रो मे समुत्थित होते हैं । ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर मे विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओ मे उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहो मे प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु उसी प्रकार से है । यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओ मे समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोडशार्चि भृगु का पुत्र है अनन्तर मे सूर्य से शुक्र है जो ताराग्रहो मे प्रकट है और तिष्य मे समुत्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि बृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी मे उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों मे यह जगद्गुरु हैं ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ मे समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चि स्तथा सौरशनैश्चर ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चान्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०९
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादय ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतायत ।
स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणा शक्रस्तु केतुनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुव कालो ग्रहाणा तु विभक्ताना चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणा श्रविष्ठा स्यादयनाना तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्य सवत्सर स्मृत ।
ऋतूना शिशिरञ्चापि मासाना माघ एव च ॥११३
पक्षाणा शुक्लपक्षस्तु तिथीना प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रिविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

म हूर्तानां तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवत ।
अक्ष्णोश्चापि निमेषादि काल कालविदो मत ॥११५

सप्तर्षि शनैश्चर सौर है और रेवती मे ही समुत्पन्न हुआ है तथा
च द्राक मदन ये दो ग्र॰ रोहिणी मे समुत्पन्न हुए है ॥१ ६॥ ये भाग आदि सब
ताराग्र॰ जानने के योग्य हैं क्योकि ये ज म नक्षत्र पीडाओ मे त्रिगुणता को प्राप्त
किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति म ये उम दोष से स्पर्श करते
हैं ॥११०॥ इन समस्त ग्र॰ो मे आदित्य आग्नि कहा जाता है। ताराग्रहो मे
शुक्र और केतुओ मे धूमवान् है ॥१११॥ चारा दिशाओ में विभक्त ग्रहो का
ध्रुव काल होता है नक्षत्रो का श्रविष्ठा और अयनो का उत्तर होता है
॥११२॥ पाँचों वर्षो मे आद्य सम्वत्सर कहा गया है। समस्त ऋतुओ मे शिशिर
और सम्पूर्ण मासो मे माघमास आद्य होता है ॥११३॥ पक्षो मे शुक्ल पक्ष
तिथियो मे प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागो मे अह आदि कहा गया है
॥११४॥मुहूर्त्तों म आदि महूर्त रुद्र दैवत होता है तथा अक्षियो मे निमेष और
कालविदो मे काल माना गया है ॥११५॥

श्रवणान्त श्रविष्ठादियुग स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते ॥११६
दिवाकर स्म तस्तस्मात्कालस्त विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधाना भूताना प्रवर्त कनिवर्त्तक ॥११७
इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकसव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मित ॥११८
उत्पन्न श्रवणनासौ सक्षिप्तश्च ध्रुव तथा ।
न तोऽन्तेष विस्तीर्णो वृक्षाकार इति स्थिति ॥११९
बद्धिपन्ना भगवता कल्पादा सप्रकीर्तित ।
साश्रय सोऽभिमानी च स र्य ज्योतिरात्मक ।
विश्वरूप प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुत ॥१२
नय शक्य प्रस ख्यात याथातथ्येन केनचित् ।
गतागत मनुष्येषु ज्योतिषा मामचक्षुषा ॥१२१

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमा ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

श्रविष्ठा के आदि मे लेकर श्रवण के अन्त तक पाँच वर्ष का युग होता है। भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो। चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक होता है ॥११७॥ यह इतना अर्थ के निश्चय से ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है ॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव मे मश्रित सब ओर से अन्तों मे विस्तीर्ण वृक्ष के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है ॥११९॥ भगवान् ने कल्प के आदि मे बुद्धि के साथ इसे सम्प्रकीर्तित किया है। यह आश्रय के महित-अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है। विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है ॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है। मनुष्यों में ज्योतियो के गतागत को मास-चक्षु मे देखा भी नहीं जा सकता है ॥१२१॥ आगम से-प्रत्यक्षमान मे और उपपत्ति से विद्वान पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए ॥१२२॥ चक्षु-शास्त्र-जल-लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो ! ये पाँच हेतु ज्योतियो के गण के विचिन्तन मे जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकर्ण ३२—नीलकण्ठस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधन ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठ : सत्रे वर्षसहस्रके ॥२

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिन ।
तदह कीर्तयिष्यामि शृणुध्व शसितव्रता ॥३
उत्तरे शैलराजस्य सरासि सरितोह्रदा ।
पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवनायतनेषु च ।
गिरिश्रृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४
देवभक्ता महात्मानो मुनय शसितव्रता ।
स्तुवन्ति च महादेव यत्र यत्र यथाविधि ॥५
ऋग्यजु सामवेदश्च नृत्यगीतैश्च वादिभि ।
ओङ्कारेण नमस्काररर्च यन्ति सदा शिवम् ॥६
प्रवृते ज्योतिषा चक्र मध्यस्थाम दिवाकरे ।
देवता नियतात्मान सर्वे तिष्ठन्ति ता कथाम् ।
अथ नियमप्रवृताश्च प्राणेष्व्यवस्थिता ॥७

ऋषि लोग बोले किस देश मे महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् घ तिवाले ! ब्रह्म-पुरोगो का यह आख्यान किस काल मे हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे भलीभाँति कहिए जसे भी हुआ हो ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र म इस जगत् की आयु वायु के द्वारा कथ्यमान पहले ऐसा ही मैंने सुना है ॥२॥ जिसके द्वारा देवो के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूँ आप शसित व्रत वाले उस श्रवण करो ॥३॥ शैलराज के उत्तर मे सरित सर और ह्रद हैं । पुण्योद्यानों मे—तीर्थो मे—देवताओ के आयतनो मे पर्वतो के शिखरो मे जो कि बहुत ऊचे हैं और गह्वरउपवनो मे देव के भक्त शसित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ जहाँ यथाविधि महादेव की स्तुति किया करते हैं ॥४॥५॥ ऋक् यजु और साम वेदो के द्वारा नृत्य गीत और वादन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ॥६॥ ज्योतिषा के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य मे व्याप्त हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब उस कथा को कहते हैं । इसके अनन्तर नियमो मे वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही शेष व्यवस्थित होते हैं ॥७

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागति ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनय शसितव्रता· ।
वालखिल्येति विख्याता पतङ्गसहचारिण ॥८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना मूर्द्ध्वरेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वं वायु वायुपर्णाम्बुभोजना ॥९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्त त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्य पवित्राणा पुण्य पुण्यकृता वरा ॥१०
तद्वय श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापते ॥११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेषत ।
यावद्वाच प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिता ॥१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधि सप्रवर्तते ।
ज्ञान पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ॥१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तय ।
यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभा· ॥१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'—यह कहा। यह सुनकर शमित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि वालखिल्य इस नाम से विख्यात है और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्द्ध्वरेता मुनियो मे अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ॥ ८ ९ ॥ ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—यह गुह्य विषय है जो पवित्रो का, पुण्यकृतो का पुण्य एव श्रेष्ठ है। हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं। जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ॥ १०-११-१२ ॥ वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि सप्रवृत्त होती है। हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्पन्दमान होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है । जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ देहबन्ध दुर्लभ होता है ॥ १४ ॥

तत्रापि तेऽस्ति सद्भाव' सर्वगस्त्वं सदानिल ।
नान्य सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्ष सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पतिं देव मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणा भावितात्मानाम् ।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोक नमस्कृत ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्पर ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापते ॥१८
प्रपच्छ कार्तिकेय वै मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणा नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेन महात्मान मेघस्तनितनि स्वनम् ।
उमामन प्रहर्षेण बालक छद्मरूपिणम् ॥२
क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम्
वसिष्ठ पृच्छते भक्त्या कार्तिकेय महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है । आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइये उनके कण्ठ देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है । इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान् तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—पहिले समय में कृतयुग मे वेद के निर्णय करने में परायण वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण बहुत ही धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महासेन—महात्मा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के प्रहर्ष से बालक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् बल वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १६-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसप्रभे ॥२५
एतदाम्नाय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमागर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये हे गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

है । इस प्रकार से स्तवन करके शिखी के वाहन वाल महासेन से पूछा ॥ २३
२४ ॥ जो यह शुभ्र अञ्जन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु
के सदृश प्रभा वाले कण्ठ मे नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह आप भक्त-
दान्त तथा मङ्गल से संयुक्त-पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के
पूछने वाले मुझे बतलाइये । हे महाभाग । मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप
से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन
को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान तेज से युक्त वायु ने कहा
है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो
क्योंकि उमा के गोद मे बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवाद शर्वस्य च महात्मन ।
तदहङ्कीर्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुन ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।
सुखोपविष्ट मदनाङ्गनाशन प्रोवाच वाक्य गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्युल्बण नातिशुभ्र नीलाञ्जनचयोपमम् ।
किमिद दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्ग नाशन ॥ ३२
को हेतु कारण किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर ।
एतत्सर्व यथान्याय ब्रूहि कौतूहल हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्य ततस्तस्या पार्वत्या पार्वतीप्रिय ।
कथा मङ्गलसयुक्ता कथयामास शङ्कर ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्व क्षीरोदे सुरदानव ।
अग्र समुत्थित तस्मिन् विष कालानलप्रभम् ॥३५
त दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्च वरानने ।
विषण्णवदना सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित हेममय एवं परम
सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अंग को दग्ध करने वाले

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ॥२६॥ देवी ने कहा—हे भगवान् ! हे भूत भव्येश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव । आपके कण्ठ मे अम्बुद के तुल्य भ्राजमान होता है । हे काम के अङ्ग के नाशन । यह न तो अत्यन्त उल्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नीले अञ्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ॥३०-३१॥ हे ईश्वर ! मे नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध मे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥३२॥ इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ॥३३॥ पहिले समय मे देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमे काले अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ॥३४। हे वर आनन वाली । उसको देख कर देवो के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप मे गये ॥३५॥३६॥

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युति ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतस ॥३७

मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवता सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूय वै सुरसत्तमा ॥ ८

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूय सर्वे वै विगतज्वरा ।
प्रजासर्गं न सोऽस्तीह आज्ञा यो मे निवर्त्तयेत् ॥३६

विमानगामिन सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिन ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यश ।
प्रजा कर्मविपाकेन शक्ता यूय प्रवर्त्तितुम् ॥४०

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगा सिंहार्दिता इव ।
किं दु ख केन सन्ताप कुतो वा भयमागतम् ।
एतत्सर्वं यथान्याय शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥४१

इस समय मे समस्त देवो के गणो को बहुत ही भीत देख कर श्रीब्रह्मा जी जो कि महान् द्युति वाले थे बोले—हे महान् भाग वालो । आप लोग किस लिये इतने भयभीत (डरे हुए) और उद्विग्न चित्त वाले हो रहे हैं ॥३७॥ मैंने आप लोगो को आठ गुण वाला ऐश्वर्य सम्प्रकल्पित किया है । अब किसके द्वारा वह ऐश्वर्य व्यावर्तित कर दिया गया है जो आप उससे रहित से हे सुरश्रेष्ठो ! इस समय हो रहे हैं ? ॥३८॥ आप सब तीनो लोको के ईश्वर है और आप सब समस्त प्रकार के दुःख से रहित हैं । इस प्रजा की सृष्टि मे कोई भी ऐसा नही है जो कि मेरी आज्ञा को निवृत्त न कर देवे ॥ ३९॥ आप सब तो वायु मे उड़ कर जाने वाले विमानो से गमन करने वाले हैं और अत्यन्त स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले है । आप समस्त प्रजा को आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक मे नित्य ही कर्मों के विपाक से प्रवृत्त करने के लिये समर्थ हैं । ॥४०॥ फिर आप किस कारण मे सिंह के द्वारा सताये गये मृगो के समान ऐसे भय से उद्विग्न हो रहे है ? क्या दुःख है ? किसके द्वारा सन्ताप प्राप्त हो रहा है ? भय कहाँ से प्राप्त हो रहा है ? यह सभी बात न्यायानुसार शीघ्र आप लोग बताने को योग्य होते हैं ॥४ ॥४१॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मनः ।
ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः ॥४२
सुरासुरमथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः ।
भुजङ्गभृङ्गसङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं सवर्ताग्निसमप्रभम् ॥४३
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ।
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः ॥४४
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा ।
निदग्धो रक्तगौराङ्गः कृतकृष्णो जनार्दनः ॥४५
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतकृष्णं जनार्दनम् ।
भीताः सर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः ॥४६
सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः ।

प्रत्युवाच महातेजा लोकाना हितकाम्यया ॥४७
शृणुध्व देवता सर्वे ऋषयश्च तपोधना ।
यत्तदग्रे समुत्पन्न मथ्यमाने महोदधौ ॥४८
विप कालानलप्रख्य कालकूटेति विश्रुतम् ।
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतकृष्णो जनार्दन ॥ ९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियो के साथ मे रहने वाले देव असुर और दानव सभी ने कहा ॥४२॥ महात्मा देव और असुरो के द्वारा पाथोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णसर्प तथा भौंरा के समान तथ नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमे से प्रादुर्भूत हुआ है ॥४३॥ काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जोकि युग के अन्त समय मे आदित्य के वर्चस के समान वर्चा सवाना, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाले चारो ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला, है ॥४४॥ उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृतकृष्ण हो गये है ॥४५॥ उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण मे आये हुए हैं ॥४६॥ तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इस वचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोको के हित की कामना से कहा—॥ ४७ ॥ हे समस्त देवताओ और हे तप के ही धन वाले समस्त ऋषिगणो ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृत कृष्ण हो गये हैं ॥४८॥४९॥

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवा ।
न शक्नुवन्ति वै सोढु वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥५०
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभ पद्मयोनिरयोनिज ।
तत स्तोतु समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामह ॥५१
तत प्रीतो ह्यह तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ।
ततोऽह सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥५२

भगवन् भूतभ येश लोकनाथ जगत्पत ।
कि काय ते मया ब्रह्मन् कत्त व्य वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्य ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षण ।
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयता कारणश्वर ॥५४
सुरासुरमथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगव मेघ सङ्काश नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूत विषङ्घोर सवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्यरिवाद्भूत युगान्तादित्यवर्चसम् ॥५६
त्र लोक्योत्सादि सूर्याभ विस्फुरन्त समन्तत ।
अथ समुत्थित तस्मिन् विषज्वालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरों मे श्रेष्ठ आप लोग कोई सहन करने मे समर्थ नहीं है केवल शङ्कर ही उसे सहन कर सकते हैं ॥५ ॥ यह कह कर पद्मनाभ की आज्ञा वाले-अयोनिज और पद्मयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करने का आरम्भ कर दिया ॥५१॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और सूक्ष्म वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५२॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है वह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादेवें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रों वाले ब्रह्मा जी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ संवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है। वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त मे होने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रैलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की आभावाला है क्योंकि सभी ओर विशेष रूप से स्फुरित है। वह कालानल के समान प्रभा वाला सबसे आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

त दृष्ट्वा तु भय सर्वे भीता सम्भ्रान्तचेतस ।
तत् पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।
भवानग्रस्य भोक्ता च भर्ताश्चैव वर प्रभुः ॥५८

त्वामृतेऽन्यो महादेव विष सोढु न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ।।५६
एव तस्य वच श्रुत्वा ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
बाढमित्येव तद्वाक्य प्रतिगृह्य वरानने ।।६०
ततोऽह पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोर विष सुरभयकरम् ।
कण्ठ समभवत्तूर्ण कृष्णो मे वरवर्णिनि ।।६१
त दृष्ट्वोत्पलपत्राभ कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षक नागराजान लेलिहानमिव स्थितम् ।।६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामह ।
शोभसे त्व महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ।।६३
ततस्तस्य वच श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पश्यता देवसङ्घाना दैत्यानाञ्च वरानने ।।६४
यक्षगन्धर्वभूताना पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृत कण्ठे विष घोर नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ।।६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व मे निकलने वाले का भोग करने वाले है और आप ही प्रभु वरदान हैं ।।५८।। हे महादेव ! आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नही है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकी मे ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नही बताया जाता है ।।५६।। हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ।।६०।। उस अन्तिक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरो को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ।।६१।। उत्पल की आभा वाले-कण्ठ मे ससक्त उरग की भाँति-चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले।।६२।। इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ से परम शोभा को प्राप्त होते हैं ॥६३॥ हे गिरिवर की आत्मजे। इसके पश्चात् मैंने इनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष—गन्धर्व भूत—पिशाच—उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था। तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ॥६५॥

॥ प्रकरण ३७ - लिङ्गोद्भव स्तुति ॥

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वर ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्य गुणविस्तरम् ॥१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम ।
महादेवस्य माहात्म्य विभुत्वञ्च महात्मन ॥२
पूर्व त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम ।
बलि बद्धा महौजास्तु त्रैलोक्याधिपति पुरा ॥३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मु प्रभु द्रष्टु देवा सर्वासवा ॥४
यत्रास्त विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपत ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणा ॥५
नागा देवर्षयश्चैव नद्य सर्वे च पर्वता ।
अभिगम्य महात्मान स्तुवन्ति पुरुष हरिम ॥६
त्व धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्व लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याण प्राप्त त्रैलोक्यमव्ययम ।
असुराश्च जिता सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ गुण कर्म और प्रभाव में कौन अधिक है। इन गुणों के विस्तार वाले आश्चर्य को हम सुनना चाहते हैं ॥१॥ श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ॥२॥ पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान् विष्णु ने समुदाहृत किया

है। ओज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय मे बलिराजा को बांधकर ही यह उदाहृत किया था।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ॥४॥ वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग देवर्षि नदी समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते है ॥५॥ ॥६॥ हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता है आप ही कर्त्ता है और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं। आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है। आपने समस्त असुरों को जीत लिया है है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर दिया है ॥७॥

एवमुक्त सुरैर्विष्णु सिद्धैश्च परमर्षिभि. ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वास्तान् पुरुषोत्तम ॥८
श्रूयतामभिधास्यामि कारण सुरसत्तमा ।
य स्रष्टा सर्वभूताना काल कालकर प्रभु ॥९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ॥१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽह शयितस्तदा ॥११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदा पाणि शयितो विमलेऽम्भसि ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाश ज्वलन्त स्वेन तेजसा ॥१३
चतुर्वक्त्र महायोग पुरुष काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तम ॥१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और वह महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवो से कहने लगे ॥८॥ हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये। जो समस्त प्राणियों का सृजन करने

वाला है वह काल को भी करने वाला प्रभु काल है ॥६॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोको का सृजन किया गया है उसी के प्रसाद से आदि मे सिद्धत्व को आया ॥१ ॥ पहिले अव्यक्त तमसे मेरे द्वारा त्रैलोक्य के ग्रसित होने पर उस समय समस्त प्राणियो के उदरस्थ होने पर मैं लोक मे शयन करने वाला था ॥११॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षो वाला-सहस्र नेत्रो से युक्त तथा सहस्र चरणो वाला शख-चक्र गदा हाथो मे लिये हुए विमल जल मे शयन करता था। ॥१२॥ इसी बीच मे दूर से अमित प्रभा वाले तथा एक शत सूर्यो के प्रकाश अपने ही तेज से ज्वलित होते हुए चारमुखो वाले महान् योग से युक्त सुवर्ण के जसी प्रभा से परिपूर्ण कृष्ण मृग चर्मधारी कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखता हूँ जोकि एक निमिष मे ही वह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकै नमस्कृत ।
कस्त्व कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अह कर्त्ताऽस्मि लोकाना स्वयम्भूर्विश्वतोमुख ।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच तम् ॥१६
अह कर्त्ता च लोकाना सहर्त्ता च पुन पुन ।
एव सम्भाषमाणाभ्या परस्परजयैषिणाम् ।
उत्तरा दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥१७
ज्वालान्ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानघौ ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्व ज्योतिकृत जलम् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ।
अतिदुद्राव ता ज्वाला ब्रह्मा चाहञ्च सत्वर ॥१९
दिव भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्त ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२
प्रादेशमात्रमव्यक्त लिङ्ग परमदीपितम् ।
न च तत्काञ्चन मध्ये न शैल न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोको के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा —हे विभो ! आप कौन हैं-कहाँ से और क्यो यहाँ स्थित हैं मुझे

बतलाइये ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्त्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस मे सम्भाषण करने वाले दोनो के, जोकि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा मे आस्थित होकर अधिष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य से उसको देखकर विस्मित हुए। तब इनके तेज से सब जल ज्योतिकृत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एव परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अति द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टब्ध करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनो देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीपित अव्यक्त लिङ्ग था। न तो कचन था, मध्य मे न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्य पुन पुन ।
महौजस महाघोर वर्द्धमान भृश तदा ।
ज्वालामालायत न्यस्त सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्त च गच्छते मन्त्रकारणम् ।
घोर रूपिणमत्यर्थ भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रित ।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मन ॥२४
अह मूद्ध्र्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते ।
तदा तौ समय कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अह पुनरधोगत ।
न च पश्यामि तस्यान्त भीतश्चाह न सशय ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति ।
समागतो मया सार्द्ध तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मन ।
मायया मोहितौ तेन नष्टसज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

वह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार बार लक्ष्य लक्ष्य था। महान् ओज से युक्त- महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढ़ने वाला था। ज्वालामाला जैसा आयत एवं व्यस्त तथा समस्त प्राणियों को महा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण म ग ही है। वह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जाव। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लेवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग मे जाता हूं जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय उस प्रकार से वायदा करके ऊर्ध्वभाग मे तथा अधोभाग मे गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मैं वहाँ नीचे के भाग मे गया था। वहाँ मैंने उसक कहीं अन्त नहीं देखा और मैं खीन्न हो गया—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥२६॥ उसी प्रकार से ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नहीं देखते हैं और मेरे साथ उसी महाजल मे वापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनों उस महात्मा के विषय मे परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और उसक द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यवस्थित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभव निधनञ्च व लोकाना प्रभुमव्ययम् ॥२९
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभरवनादाय भीमरूपाय द ष्ट्रिण ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कार प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महाप्रभ ।
नमोऽस्तु त शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी पर ब्रह्म अक्षर परम पदम्
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्र स्कन्द शिव प्रभुः ॥३२
त्व यज्ञस्त्व वषट्कारस्त्वमोङ्कार पर पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कार. संस्कार. सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

वेदा लोकाश्चा देवाश्चभगवानेव सर्वश ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्व भूताना प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापा तेजोरूप महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोको के प्रभव तथा निधन एव अव्यक्त प्रभु थे ॥२६॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी- दष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे भूतो के पति । हे महान् । आपके लिये नमस्कार है । हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं । आप श्रेष्ठ है । वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओङ्कार है और परम पद हैं । आप ही स्वाहाकार हैं । नमस्कार है । जाप्य हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं । वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इस आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं । भूमि के गन्ध,जला के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायो स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
वुधो ज्ञानश्च देवेश प्रकृती बीजमेव च ॥३६
त्व कर्ता सर्वभूताना कालो मृत्युर्यमोऽन्तक ।
त्व धारयसि लोकास्त्रीस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्रेण लोकान् सक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्रेण वरुणत्व करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकाना प्रभवाव्यय ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनीसुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधना. ।

वालखिल्या महात्मानस्तप सिद्धाश्च सुव्रता ॥४१
त्वत्त प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रता ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ॥४२
लक्ष्मी कान्तिधृ तिर्मेधा लज्जा क्षान्तिवपु स्वधा ।
तुष्टि पुष्टि क्रिया चव वाचा देवी सरस्वती ।
त्वत्त प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथव च ॥४३

वायु का स्पर्श देव तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति मे बीज भी हे देवेश ! आप ही हैं। ॥३६॥ आप समस्त प्राणियों के कर्त्ता काल मृत्यु-यम और अ तक आप ही हैं। आप इन तीनो लोको को धारण किया करते है और हे प्रभो ! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं ॥३७॥ आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो ! आप लोको का सक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वक्त्र से वरुणत्व को करते हैं और आप अपने उत्तर वक्त्र से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ॥३८॥३९॥ हे देव ! बहुधा लोको का प्रभवाव्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं ॥४ ॥ तथा साध्य विद्याधर-नाग-चारण तपोधन वालखिल्य-महात्मा-तप सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश ! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं। उमा सीता सिनीवाली कुहू गायत्री लक्ष्मी-कीर्ति धृति मेधा लज्जा वपु स्वधा-तुष्टि-पुष्टि क्रिया और वाणियो की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश ! आप से ही प्रसूत हैं ॥४१॥४२॥४३॥

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पवतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा कराय ॥४४
नमोऽस्तु ते पटटिशरूपधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुन्पिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सहायकचक्रधारिणे ॥४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूपिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ॥४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेत ॥४७

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ॥४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ॥४९
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ॥५०

हे चन्द्रसहस्र गोचर ! अयुत सूर्यों जैसी अयुत प्रभा है आपके लिये नमस्कार है। पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ॥४४॥ पट्टिश रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है । रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेत. ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥४७॥ हे हिरण्यवर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है। हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥ हिरण्य की माला वाले और हिरण्यवाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है। भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ॥४९॥ हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है। हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ॥५०॥

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भांतिदेवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभ ॥५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वर ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ॥५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषित· ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपन ॥५३

पिनाकपाणिभ गवान् वृषभासनशूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधर' कपाली घोररूपधृक ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्कर ।
दु'दुभिस्वननिर्घोषपज न्यनिनदोपम ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभ सर्व मपूरयत् ॥५५
त न शब्देन महता वय भीता महात्मन ।
तदोवाच महायोगो प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येताञ्च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ।
युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वसनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महामति व्यक्त हो कर महायोगी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाले देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड़ मुखो से ऊपर को प्रसमान हो रहे हो ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले एक जटाधारी अनेक भूषित-नाना चिन्हों से विचित्र अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त पिनाक को हाथ मे लिये हुए वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवो को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान शब्द वाले एव मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिवने उस समय हास छोड़ा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय मे उस हास के महान् शब्द से जोकि उन महात्मा ने किया था हम सब डर गये। तब महायोगी बोले हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और समस्त भय का त्याग करदो ! तुम दोनों सनातन मेरे गात्रो में प्रसूत हुए हो ।५७

अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामह ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्य युद्ध पु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयो सम्यग्वर दद्मि यथेप्सितम् ॥५८

तत प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयो पुन ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५९
यदि प्रीति समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्य त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजता विविधा प्रजा ।
एवमुक्त्वा स भगवास्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष मयोक्तो व प्रभावस्तस्य योगिन ।
तेन सर्वमिद सृष्ट हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्त शिवसज्ञितम् ।
अचिन्त्य तददृश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुप ॥६३
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कार प्रयुड्क्त ह ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुप ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है । विष्णु मेरा वाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धो मे वर्त्तमान रहा करते हैं । मैं आप दोनो से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनो ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणो मे गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५९॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनो को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनो की आपके चरणो मे नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे । अब आप दोनो अनेक प्रकार की प्रजाओ का सृजन करो । ऐसा कह करके भगवान् वहीं पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है । उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस सज्ञा वाला रूप अव्यक्त एव अज्ञात होता है । वह रूप चिन्तन करने के योग्य नही है और अदृश्य भी है । ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवो के अधिपति के लिये नमस्कार का प्रयोग करते है जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तथा चिन्तन न करने के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहस नमोऽस्तु ते ॥६५
एतच्छ्रुत्वा गता सर्वे सुरा' स्वं स्वं निवेशनम् ।
नमस्कारं प्रयुञ्जाना शङ्कराय महात्मने ॥६६
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः ।
कामाश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥६७
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्वः सर्वमाख्यात मया माहेश्वरं बलम् ॥६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर ! हे श्रेष्ठ ! हे मनोहस ! आपके लिये नमस्कार है ॥६५॥ श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय मे सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ॥६६॥ महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढता है वह समस्त कामनाओ को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापो से छुटकारा पा जाता है ॥६ ॥ उन सर्व सदा सत प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के बल से आपसे मैंने कह दिया है ॥६८॥

॥ प्रकरण ३८—पितर-वर्णन ॥

अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृप ।
ऐल पुरूरवा सूत कथं वाऽतर्पयत् पितृन् ॥१
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभाव शांशपायन ।
ऐलस्यादित्यसंयोग सोमस्य च महात्मनः ॥२
अपासारमयस्येन्दो पक्षयो शुक्लकृष्णयो ।
ह्रासवृद्धी पितृमत पक्षस्य च विनिर्णय ॥३
सामाच्च वामृतप्राप्ति पितृ णां तर्पणं तथा ।
कव्याग्नेष्वात्तसोमानां पितृणाञ्च च दर्शनम् ॥४

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ॥५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रं कमण्डले ॥६
सगच्छति तदा द्रष्टु दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्या मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्ष प्रतीक्ष्यते ॥७

श्री शाशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरुरवा माम-मास में अमावस्या मे दिव मे कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरो को तृप्त किया था। सूतजी ने कहा—हे शाशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा। ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो सयोग हुआ वह भी बताया जायगा ॥२॥ जलो का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षो में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है। यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ॥३॥ सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरो का दर्शन होता है ॥४॥ इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरो की तृप्ति किया करता था। यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ॥५॥ जिस समय वे दोनो चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते है तो अमावस्या मे एक रात्रि तक मण्डल मे निवास किया करते हैं ॥६॥ उस समय वह दिवाकर और निशाकर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता है। अमावस्या मे मातामह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ॥७॥

प्रसीदमानान् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐल पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नत ।
उपास्ते पितृमन्त त ससोम स दिवास्थितः ॥८
द्विलव कुहुमात्र तु ते उभे तु विचार्य स· ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासक ॥९
कुहूमात्रा कलाश्चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहु पुन ।
स तदा भानुमत्येक कालावेक्षी प्रपश्यति ॥१०

सुधामृत कुत सोमात् प्रस्रवे मासतृप्तये ।
दशभि पञ्चभिश्च व सुधामृतपरिस्रव ॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमान तथाशुभि ।
सद्य पक्षरता त न सौम्येन मधुना च स ॥१२
निर्वापणार्थ दत्त न पित्रेण विधिना नृप ।
सुधामृते न राजेन्द्रस्तर्पयामास च पितृ न् ।
सौम्या बर्हिषद काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३
ऋतुरग्निस्तु य प्रोक्त स नु सवत्सरो मत ।
जज्ञिरे ह्य तवस्तस्माहतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४

प्रसीदमान अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त हुए सोम से पितरो के लिये उसके परिस्रव से ऐल पुरूरवा विश्न् मास मास मे प्रयत्न के साथ वह दिव मे आ विस्मत होता हुआ ससोम पितृमान् उस की उपासना करता है ॥८॥ दो कर्ष कुहूमान् वे दोनो विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनावाली का उपा सक होता है ॥९॥ कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है । वह उस समय मे मानुमान मैं एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकप रूप से देखता है ॥१ ॥ मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रस्रव होता है । दश और पाँच सुधामृत परिस्रवो से प्राप्त करता है ॥११॥ उस समय कृष्ण पक्ष मे अशुओ से दुह्यमान को पीकर सद्य वह उस सौम्य मधु से पक्षरत होता है ॥१२॥ वह राजा पित्र विये हुए से जोकि निर्वाण के लिये ही दिया गया है विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरों को तृप्त किया करता था । उनमे सौम्य-बर्हिष- काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी है ॥१३॥ ऋतु अग्नि जो कहा गया है उससे ऋतुएँ उत्पन्न हुई और ऋतुओ से ये आर्त्तव उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्या पितरो ह्यब्दसूनम ।
ऋतु ितामहा मासा ऋतुश्च वाब्दसूनव ॥१५
प्रपितामहास्तु व देवा पञ्चाब्दा ब्रह्मण सुता ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेया काव्या ज्ञेया कवे सुता ॥१

उपहूता. स्मृता. देवा. सोमजा सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृता काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातय ॥१७
काव्या वर्हिपदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्वर्हिपदो ध्रुवम् ॥१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवा. ।
अष्टकापतय काव्या पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥१९
एषा संवत्सरो ह्यग्नि सूर्यस्तु परिवत्सर ।
सोम इद्वत्सर प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सर ॥२०

जो आर्त्तव है वे अर्धमास नाम वाले है । पितर अब्द के पुत्र है । ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु है ॥१५॥ इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्चा अब्द हैं । जो सौम्य हैं वे सोमपज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ॥१६॥ उपहूत देव सोमज तथा सोमज कहे गये हैं । जो आज्य है वे काव्य कहे गये हैं । ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ॥१७॥ वे काव्य वर्हिपद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं । जो यज्वान गृहस्थ होते है उनका वर्हिपद ऋतु होता है । गृहस्थ यज्वान जो होते है अग्निष्वात्त उनके आर्त्तव होते है । अष्टका पति काव्य है । उनको पञ्चब्द जानना चाहिए ॥१८॥१९॥ इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है । सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ॥२०॥

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषा पञ्चाब्दा ये युगात्मका ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृता ॥२१
एते पिवन्त्यमावास्या मासि मासि सुधा दिवि ।
तास्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ॥२२
यस्मात् प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृत तद्वै पितॄणा सोमापायिनाम् ॥२३॥
एव तदमृत सौम्य सुधा च मधु चैव ह ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दो' कला' पञ्चदश क्रमात् ॥२४

पिबन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिशत्तु छन्दसा ।
पीत्वा च मास गच्छन्ति चतुर्दश्या सुधामतम् ॥२५
इत्येव पीयमानस्तु देवतश्च निशाकर ।
समागच्छदमावास्या भागे पञ्चदशे स्थित ॥२६
सुषुम्नाप्यायातिञ्च व अमावास्या यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकल काल पितरस्ते सुधामतम् ॥२७
तत पीतक्षये सोम सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितृ णा सोमपायिनाम् ॥२८

एव उनका वत्सर होता है ये युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं। ये लेखा उष्मपा और दिव्याकीर्त्या कहे गये है ॥२१। ये अमावस्या मे मास मास मे विधि मे सुधा का पान किया करते हैं। उससे पुरूरवा जब तक है उनका तपण करता था ॥२२॥जिससे मास मास मे सोमो का प्रस्रवण करता है उसे जान लो। उससे सुधामृत सोमपायी पितरो का होता है ॥२३॥ इस प्रकार से वह सौम्य अमत सुधा और मधु होता है। जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष मे च द्रमा की क्रम से प द्रह कलाएँ होती हैं ॥२४॥ देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तेतीस छन्दम होते हैं और चतुदशी मे मास तक सुधामृत को पाकर चले जाते हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवो के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पञ्चदश भाग मे स्थित आ गया था ॥२६॥ सुषम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल तक पितर सधामृत का पान करते है ॥२७॥ इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सय एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ॥२८॥

निश्शेषायां कलायान्तु सोममाप्याययत् पुन ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भाग भाग मह क्रमात् ।
कला क्षीयन्ति ता कृष्णा शुक्लाश्चाप्याययन्ति च॥ २९
एव सूयस्य वीर्येण च द्रस्याप्यायिता तनु ।
दृश्यते पौणमास्यां वै शुक्ल सम्पूणमण्डल ।

ससिद्धिरेव सोमस्य पक्षयो शुक्लकृष्णयो ॥३०
इत्येप पितृमान् सोम स्मृत इद्वत्सर क्रमात् ।
क्रान्त· पञ्चदशे सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवे ॥३१
अत पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणा सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ॥३२
तथार्द्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदु ।
पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियो सन्धयश्च वै ।
अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ॥३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स काल पौर्णमासिक· ॥३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्धन्तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्धं शशिन क्रमात् ॥३५

कला के निशेण होने पर भी फिर सोम को आप्यापित करता है । सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है । पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षो मे सोम की ससिद्ध होती है ॥३०॥ यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है । पन्द्रह सुधामृत परिस्रवो के साथ क्रान्त होता है ॥३१॥ इस के आगे अब मैं पर्वो को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा । जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ॥३२॥ उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए । पूर्णिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ है । अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ॥३३॥ जिसमें पर्वोंपर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है। सायाह्न मे प्रतिपद् ही वह पौर्णमासिक काल होता है ॥३४॥ सूर्य के व्यतीपात मे स्थित होने पर युगान्तर में लेखोद्ध्वं होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोद्ध्वं शशि का होता है ॥३५॥

पौणमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्त स व्यतीपात एव तु ॥३६
काल सूर्यस्य निर्देश दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सप ति ।
स वै पय क्रियाकाल कालात्सद्यो विधीयत ॥३७
पूर्णेन्दो पूणपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दवत सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकर ।
रञ्जनाच्च व चन्द्रस्य राकेति कवयो विदु ॥३९
अमा वसेतामक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिममावास्या तत स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य तैथ्य क्त पौणमास्या निशाकर ।
यदीक्षत व्यतीपाते दिवा पूर्णं परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्ण तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्ना ताममावास्या पश्यन्श्च समागतौ ।
अन्योन्य चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दश उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात मे जो परस्पर मे देखते हैं जिसकाल मे वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नही है ।३६॥ सूर्य काल के निर्देश को देख कर सख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल से तुरन्त ही पथ का विधान किया करता है ॥३७॥ पूण चन्द्र के पूण पक्ष मे रात्रि की सन्धियो मे पूर्णिमा है जिससे देवों के साथ पितर उसे देखते हैं। इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ॥३८॥ जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्य धिक रूप से भ्राजमान होता है। चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका—यह पड गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ॥३९॥ अमा अक्ष में वास करती है जब कि चन्द्र और दिनकर दोनों एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं। इसी स अमावस्या ही कही गई है ॥४ ॥ फिर दूसरे का उनके द्वारा पौणमासी मे निशाकर व्यतीपात मे पूर्ण दिन मे परस्पर में

दीखता है। अपराह्न मे तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ॥४१॥ समागत वे दोनो उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनो चन्द्र और सूर्य अन्योन्य मे जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ॥४२॥

द्वौ द्वौ लवावमावास्या य. काल पर्वसन्धिषु ।
द्वाक्षर कुहुमात्र तु एव कालस्तु स स्मृत ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण सङ्गता । ४३
दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्य प्राप्त तु चन्द्रमा ।
सूर्येण सहसा मुक्ति गत्वा प्रातस्तनोत्सवो ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रवि ॥४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमा. सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ॥४५
स तदा ह्याहुते कालो दशस्य च वषट्क्रिया ।
एतदृतुमुख ज्ञेयममावास्यास्य पर्वण ॥४६
दिवा पर्वण्यमावास्या क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्या गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्या दिविक्षये ॥४७
कलानामपि वै तासा बहुमान्याजडात्मकैः ।
तिथीना नाम धेयानि विद्वद्भि स ज्ञितानि वै ॥४८
दर्शयेतामथान्योन्य सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमश सूर्यमण्डलात् ॥४९

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियो मे जो काल होता है वह द्वाक्षर कुहूमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ॥४३॥ दिवसार्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रात कालीन उत्सव वाले दो काल है और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निष्पतन होता है ॥४४॥ शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

उन निमु ज्मान मण्डलों के मध्य मे होता है ॥४५॥ उस समय में वह आहू ति का काल तथा दश की वषटक्रिया होती है। इस पव की अमावस्या यह स्मृ मुख जानना चाहिए ॥४६॥ दिवा पव मे अमावस्या को अधिक च द्र के क्षीण हो जाने पर इससे दिवा मे अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है। दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिविक्षयो से अमावस्या होती है ॥४७॥ उन कलाओ की भी अवात्माओ के द्वारा बाहुमान्या होती है। विद्वानों ने तिथियों के भी नामो की सज्ञा की है ॥४८॥ सूय और च द्रमा दोनो अन्यो य को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूय मण्डल से निकलता ॥४९॥

द्विलवेन ह्यह्नो रात्र भास्कर स्पृशते शशी।
स तदा ह्याहुते कालो दर्शस्य च वषट क्रिया ॥५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो य काल परिचिह्नित ।
तत्काल स ज्ञिता यस्मादमावास्या कुहू स्मता ॥५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकर ।
अमावास्या विशत्यक सिनीवाली तत स्मता ॥५२
पवण पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट क्रिया ।
च द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मते ॥५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पवकालो द्विमात्रक ।
काल कुहूसिनीवाल्यो समुद्रो द्विलव स्मत ॥५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पव काल कलाश्रय ।
एव स शुक्लपक्षो व रज या पवस धिषु ॥५५
सम्पूणमण्डल श्रीमाश्च द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोम पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ॥५६

अहोरात्र मे च द्रमा दो लव भास्कर का स्पर्श किया करता है। उस समय वह आहूति का तथा दश की वषट क्रिया काल होता है ॥५ ॥ कोकिल से उक्त जो काल कुहा ऐसा परिचि ह्नत होता है उसकाल से सज्ञा वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ॥५१॥ सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य मे प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है।

॥५२॥ पर्व का पर्व काल तो वषट क्रिया के तुल्य ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात मे वे दोनो पूर्णिमा कही गई हैं ॥५३॥ प्रतिपद् और पञ्चदशी का पर्वकाल द्विमात्रिक ही होता है। सिनीवाली और कुहू का समुद्र द्विलव कहा गया है ॥५४॥ सोम के अर्काग्नि मण्डल मे पर्व का यान गन्ता के आश्रय वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की संधिया मे रात मे शुक्ल पक्ष होता है ॥५५। सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपरञ्जित होता है जिस से पञ्चदशी मे सोम आप्यायित होता है इसमे पूर्णिमा होती है ॥५६॥

दशभि पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्या महाक्षय ॥५७
इत्येते पितरो देवा सोमपा सोमवर्द्धना ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च ॥५८
अत पितॄन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषा गतिञ्च सत्त्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ॥५९
न मृताना गति शक्या विज्ञातु पुनरागति ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०
श्राद्धदेवान् पितॄनेतान् पितरो लौकिका स्मृता ।
देवा सौम्याश्च यज्वान सर्वे चैव ह्ययोनिजा ॥६१
देवास्ते पितर सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्या पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिका स्मृता ॥६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृता ॥६३

दश और पाँच कलाओं से दिवसो के क्रम से पन्द्रह कला सोम मे होती हैं सोलहवी नही होती है। इससे सोम का पञ्चदशी मे महान् क्षय होता है। ॥५७॥ इतने ये पितर देव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तक और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ॥५८॥ इसलिये पितृगण को बताऊँगा जोकि मास श्राद्ध के भोजी होते हैं। उनकी गति और सत्त्व तथा श्राद्धकी गति

को भी बताया जायगा ॥५९॥ द मृमनुष्यों को गति तथा पुनरागति बताई नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नहीं बता सकते हैं इन मांस चक्षुओं की बात ही क्या है। ६ ॥ श्राद्धदेव व इन पितरो को लौकिक पितर कहा गया है। देवसौम्य और यज्वान ये सब आयोनिज होते है ॥६१॥ वे सब देव पितर है और उनको देव ही भावित किया करते है। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता पितामह और प्रपितामह जो सोम के द्वारा य नान होते हैं वे सोमव त कहे गये है ॥६३॥

ये यज्वान स्मृतास्तेषा ते व बर्हिषद स्मृता ।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ता स्मृतास्तेषा होमिनो याज्ययाजिन ।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिता ॥६५
अन्ते च नव सीदन्ति श्रद्धायुक्त न कम णा ।
ब्रह्मचर्येण त रसा यज्ञ न प्रजया च व ॥६६
श्रद्धया विद्यया च व प्रदानेन च सप्तधा ।
कम स्वेतेष ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवस्त पितृभि सार्द्धं सूक्ष्मकै सोमपायक ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावता प्रशसव स्मृता सिद्धा क्रियावताम् ।
तेषां निवापदत्तान्न तत्कुलीनश्च बान्धव ॥६९
मास श्राद्धभुजस्तृप्ति लभन्त सोमलौकिका ।
एत मनुष्या पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये है उनके वे बर्हिषद कहे गये है । इन कर्मों में युक्त वे देह सम्भव तक तृप्त होते है ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये है । अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों मे व्यवस्थित है । ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते है । इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप यज्ञ और प्रजा से युक्त होते है व भी दु खी नहीं होते

हैं ॥६६॥ श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों मे जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते है वे उन देवो के-पितरो के और सूक्ष्मक सोमपायकों के साथ स्वर्ग मे गये हुए मादयुक्त होते हैं तथा दिवि मे पितृमान् की उपासना किया करते हैं ॥६८॥ प्रजा वालो की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालो की वह सिद्ध है। उनके नियाप दत्त अन्न को जो कि तत्कुलीनो के द्वारा एव बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्ध भोजी सोम लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं। ये जोकि मास में श्राद्ध-भोजी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ॥७०॥

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णा कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य स्वधास्वाहाविवर्जिता ॥७१
भिन्नदेहा दुरात्मन प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागता ॥७२
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवासस ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्तत ॥७
सरित्सरस्तडागानि वापिश्चैव जलेप्सव ।
परान्नानि च लिप्सन्ते कम्पमानास्ततस्तत ॥७४
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ।
शाल्मलौ वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ॥७५
करम्भवालुकायाञ्च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमाना स्वकर्मभि ॥७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दु खानामप्यनाकवत् ।
लोकान्तरस्थाना विविधैर्नामगोत्रत ॥७७

उनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमो के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ॥७१॥ भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमक्षय मे प्रेत भूत यातना के स्थानो मे आये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही शोचा करते हैं ॥७२॥ दीर्घ आयुवाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इधर—उधर

विद्रवण किया करते हैं ॥७३॥ प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने की इच्छा वाले नदी सरोवर-तालाब और बावड़ी तथा पराये अन्न को इधर-उधर काँपते हुए चाहा करते हैं ॥७४॥ उन व तायाओं के स्थानों मे पाञ्चनाम शाल्मली मे और वैतरणी मे और उन कुम्भीपाकों मे-करम्भ व लुका मे असिपत्र वन मे और शिला सम्पेषण मे अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ॥७५॥७६॥ अनाक की भाँति यहाँ पर उन दुःखों के स्थान अन्य लोकों मे स्थित उनके विविध नाम और गोत्र स होते हैं ॥७७॥

भूम्यापसव्यदर्भेष दत्वा पिण्डत्रयन्तु व ।
पति तास्तपयन्त च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिना ॥७८
अप्राप्ता यातनास्थान सृष्टा ये भुव प चधा ।
पश्वादिस्थावरान्त षु भूताना त षु कमसु ॥७९
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाहारा भवन्त्येत तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिन्तदाहार श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ॥८०
काले न्यायागत पात्र विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्न यथा दत्त व न्धुर्यत्रावतिष्ठत ॥८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्ध तदिष्टाना मन्त्र प्रापयत पितॄ न् ॥८२
एव ह्यविकल श्राद्धदत्तन्तु मन्यत ।
सनत्कुमार प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञ प्रेतानां प्राप्त्याद्धस्य चव हि ॥८३
बह्लीकाश्चोष्मपाश्च व दिवाकीर्त्यांश्चव ते स्म ता ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्त पा शुक्ल स्वप्नाय शवरी ॥ ४

भूमि स अपसव्य दर्भों मे तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानों में अधिष्ठित उन पतितों का तपण किया करते हैं ॥७ ॥ जो यातना के स्थान ने अप्राप्त भूमि से सृष्ट है व पाँच प्रकार के होन हैं। पशु आदि स्थावरान्तों में भू तों के उन कर्मों मे नाना प्रकार की जातियों मे तिर्यग्योनियों मे यताहार होते हैं। उस

इससे उनका आहार श्राद्ध में दिया हुआ उपस्थित होता है ।।७९।।
।।८०।। काल मे स्थान में आया हुआ नाम विधि से प्रतिपादित नाम मन्त्र
का प्राप्त किया करता है वहीं पितृ उपस्थित होता है ।।८१।। जिस तरह से
गायों के प्रविष्ट होने पर वत्स माता का लाभ किया करता है उसी प्रकार से
श्राद्ध में तद्विद्धो का मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ।।८२।। मन्त्र से दिया
हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखते हुए सन-
त्कुमार ने कहा था क्योंकि गतागति के ज्ञान रखने वाले तथा प्रेतों के प्राप्त श्राद्ध
के ज्ञाता थे ।।८३।। क्योंकि उष्मपा और दिवाकीर्त्य ये कहे गये हैं। उनका कृष्ण
पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष तो स्वप्न के लिये शर्वरी (रात्रि) होती
है ।।८४।।

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।
अन्योन्यजा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ।।८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ।।८६
इत्येव पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ।।८७
इत्येक पितृसोमानामैलस्य च समागमः ।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितॄणाञ्चैव तर्पणम् ।।८८
पूर्णिमावास्ययोः काल पितॄणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्त्तितस्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ।।८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्वस्य कथितं ह्यैकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।।९०
स्वायम्भुवस्य ह्येष सर्गः क्रान्तो मयात्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा अन्योन्यज ऐसे अनेक अ-
न्योन्य पितर कहे गये हैं ।।८५।। ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं। श्रद्धा
से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रसन्नतायुक्त होते हैं ।।८६।। इस

प्रकार से वितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरों का यह पितृमतत्व निश्चय रूप से पुराण में माना गया है ॥८७॥ यह अर पितृ सोमों का तथा ऐल का समागम और पुरूरवा की अकारि और पितरों का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरों का स्थान ये सभी का सक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ॥८८॥ ॥८९॥ सबका यक्ष्य और दैनिक कह दिया है। यह परिसंख्या वाला नहीं हो सकता है। भक्तिको चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ॥९०॥ यह मैंने स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ मैं क्या वर्णन करूं ? ॥९१॥

॥ प्रकरण ३९—युगप्रथा वर्णन ॥

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्व स्वायम्भुवेन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वञ्च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ।
तेषाञ्चतुर्युगं ह्य तत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥२॥
सङ्ख्ययेह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदं च युगधर्मं तथैव च ॥३॥
युगसन्ध्यंशकं चैव युगसन्धानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पन्नोऽब्दस्तु मानुषः ।
तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ॥५
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्त्तकाः ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं चयत् ॥६
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तैस्त्रिंशता राज्यहनी समेते ॥७॥

ऋषियों ने कहा—स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्त्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री सूतजी ने

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग मे जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, उसे भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ सख्या से प्रसख्यान करके और सब प्रकार से एव विस्तार से युगसन्ध्य शक तथा युग सन्धान ऐसे इन छै प्रकार के युग नाम वालो को मैं तत्त्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३॥४॥ लौकिक प्रमाण से विवुद्ध अब्द तो मानुष होता है। उस अब्द से प्रसख्या करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जायेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा कला और मुहूर्त्तक होते है। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर हृता है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह् निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
तत्राह् कर्मचेष्टाया रात्रि स्वप्नाय कल्पते ॥८
पित्र्ये रात्र्यहनी मास प्रविभागस्तयो पुन ।
कृष्ण पक्षस्त्वहस्तेषा शुक्ल स्वप्नाय शर्वरी ॥९

त्रिशच्च मानुषा मासा पित्र्यो मासश्च स स्मृत ।
शतानि त्रीणि मासाना षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्य सवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणा यच्छत भवेत्।
पितृणा त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह् तानि वै।
चत्वारश्चाधिका मासा पित्र्ये चैवेह कीर्त्तिता ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुष स्मृत ।
एतद्दिव्यमहोरात्र शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो गत ॥१२
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुन ।
अहस्तत्रोदगयन रात्रि स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयो पुन ।
त्रिंशद्यानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृत ॥१४

मानुष और दविक अहोरात्र का राय ही विभाग किया करता है। उस मे दिन तो कर्मो की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिए कल्पित की जाती है ॥८॥ पित्र्य और रात्रि और दिन तथा मान उनका पुन विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ॥६॥ मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरो का वह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासो का पितरो का सम्वत्सर यह मानुष से विभाजित किया जाता है ॥१ ॥ मानव मान से ही वर्षों का जो एक सैकड़ा होता है वे पितरो के यहाँ पर तीन वप सङ्ख्यात होते हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये है ॥११॥ लौकिक मान स ही जो मानव अब्द कहा गया है यह दिव्य अहो रात्र होता है। यह इस शास्त्र मे निश्चय माना गया है ॥१२॥ दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनो का प्रविभाग कहते हैं। वहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसङ्ख्यात किये गए है उन दोनो के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गय हैं ॥१४॥

मानुष च शत विद्धि दि यमासास्त्रयस्तु ते ।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्य प विधि स्मत ॥१५
त्रीणि वप शतान्येव पष्टिवर्षाणि यानि च ।
दिव्य सवत्सरो ह्य प मानुषेण प्रकीर्तित ॥१६
त्रीणि वप सहस्राणि मानुषेण प्रमाणत ।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मत सप्तर्षिवत्सर ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
अन्यानि नवतिश्च व कौञ्च सवत्सर स्मत ॥१८
षट् त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
वर्षाणान्तु शत ज्ञ य दिव्यो ह्य प विधि स्मत ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणां मानुषाणि च ।
षष्टिश्च व सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया ।
दिव्यवर्ष सहस्रन्तु प्राहु सङ्ख्याविदो जना ॥२०

इत्येवमृषिभिगीत दिव्या सङ्ख्ययान्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष तो सो होते हैं किन्तु वे मी वर्ष तीन दिव्यमास हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कही गई है ॥१५॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते हैं वह ध्रौव सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य वर्षों का एक सैकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१९॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो संख्या के संख्यात होते हैं उनको संख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य संख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गया गया है। दिव्य प्रमाण से ही युग संख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदु ।
पूर्वं कृतयुग नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणान्तु कृत युगम् ।
तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविध ॥२३
इत रासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्यांशश्च तथाविधि ॥२५
द्वापर द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिण ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांश सन्ध्यया सम ॥२६
कलि वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिण ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांश सन्ध्यया सम ॥२७

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्च व चतुष्टयम् ॥२८

भारतवर्ष मे कविगण चार युग बतलाते हैं । पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है । फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ॥२२॥ चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये है । वहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है॥२३॥ इतर सन्ध्याओं मे तथा तीन सन्ध्यांशो मे एकापाय से सहस्र और शत होते है । ॥२४॥ त्रेता की संख्या तीन सहस्र सङ्ख्यात कर परिकीर्तित की जाती है । उसकी त्रिशती सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ॥२५॥ मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं । उसकी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्या के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ॥२६॥ कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते हैं । उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है॥२७॥ यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमे कृत त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ॥२८॥

अत्र संवत्सरा सृष्टा मानुषेण प्रमाणत ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणा तत्प्रमाणत ॥२९
सहस्राणा शतान्यत्र चतुर्दश तु सङ्ख्यया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकालयुगस्य तु ॥३
एव सङ्ख्यातकालश्च कालेष्विह विशेषत ।
एव चतुर्युग कालो विना सन्ध्यांशके स्मृत ॥३१
चत्वारिंशत्त्रयाणि चैव नियुतानि च सङ्ख्यया ।
त्रिंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युग ॥३२
एव चतुर्युगाख्या त साधिका ह्येकसप्तति ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३३

मन्वन्तरस्य संख्यातुवर्षाग्रेण निबोधत ।
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुष के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का सृजन किया गया है। तब तक कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२९॥ सौ हजार चौदह संख्या से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ कालों में विशेष रूप से इस प्रकार का संख्यात काल है। इस तरह बिना सन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ संख्या से तेतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका है। कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनु का अन्तर कहा जाता है ॥३ ॥ मन्वन्तर की संख्या वर्षाग्र से जाननी चाहिए। मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्येषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तितः ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमन्तत् कृतं युगम् ।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते ।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ।
श्रौतं स्मार्त्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परम्परागतं धर्मं स्मार्त्तं त्वाचारलक्षणम् ।

वर्णाश्रमाचारयुत मन स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४१
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै ।
तेषां सुतप्तपसामार्ष येण क्रमेण तु ॥४२

सदश के विद्वान् ब्राह्मणो ने मन्वन्तर की यह सख्या बतलाई है। मन्व न्तर का यह काल युगो के साथ प्रकीर्तित किया गया है ॥१६॥ चार सहस्र से युक्त प्रथम वह कृत युग है। त्रेता द्वापर कलि जो अवशिष्ट है उन्हें बतलाया जायेगा ॥३७॥ एक साथ समवेत अर्थ दो प्रकार से कहा नही जा सकता है। क्रम से आया हुआ यह मैने तुम से दो युग कह दिये है। ऋषियो के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ॥३८॥ यहाँ पर त्रेता युग के आदि मे मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ॥३९॥ दाराग्निहोत्र सम्बन्ध ऋग यजु और साम सज्ञा से युक्त इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियो ने कहा था ॥ ४ ॥ परम्परा से आया हुआ आचार के प्रसग से युक्त तथा वर्णों और आश्रमो के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ॥४१॥ सत्य ब्रह्मचर्य श्रुति और तप से भलीभाँति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ॥४२॥

सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्य त्रेतायुगस्य तु ।
अबुद्धिपूर्वक तेषाम क्रियापूर्वमेव च ॥४३
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः ।
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिनामन्यासाच्च प्रवर्तनम् ।
आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः ।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ॥ ५४
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च ।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ता स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ॥४६
त्रेतादौ संहिता वेदा केवला धर्मसेतवः ।

सरोद्यादानुपूर्व्यं च व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ।।४७
ऋषयस्तपसा देवा कुर्वते च द्वापरेषु वै ।
अनादिनिधना दिव्या पूर्वं सृष्टा स्वयम्भुवा ।। ४८
सधर्मा सप्रजा साङ्गा यथाधर्म युगे युगे ।
विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ।। ४९
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पते ।
परिचार यज्ञाशूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमा ।। ५०

त्रेता युग आद्य मे महर्षियो के और मनु के उनके अबुद्धि पूर्वक तथा अक्रिया पूर्वक ही कहा गया है ।।४३।। तारकाद्य निदर्शनो मे वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं देवो के आदि कल्प मे तो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ।।४४।। इनके अनन्तर सिद्धियो के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ। व्यतीत कल्पो मे जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुन उनके प्रतिभास मे समुत्थित हुए है। ।।४५।। ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रो को महर्षियो ने कहा था और स्मार्त धर्म को मनु ने कहा था ।।४६।। त्रेता के आदि मे केवल वेद सहिता थी धर्मसेतु से और आयु के सक्षेप मे वे द्वापर मे व्यस्यमान होते है ।।४७।। कलियुग मे और द्वापर मे तप से ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधान (मृत्यु) न होने वाले एव दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ।।४८।। धर्म के सहित प्रजा के सहित और अङ्गों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेष क्रीडा किया करते है ।।४९।। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य-परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ।।५०।।

तथा प्रामुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिता ।
क्रियावन्त प्रजावन्त समृद्धा सुखितस्तथा ।।५१
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रिया क्षत्रियान् विश ।
वैश्यान् वर्तिन शूद्रा परस्परमनुव्रता ।।५२
शुभा प्रवृत्तयस्तेषा धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।
सङ्कल्पि तेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।

वाले मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले महान् धनुधारी ऐसे विशेष गुणों से भूषित समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले त्रेता युग में चक्रवर्ती राजा थे ॥६४॥६५॥६६॥

अग्राजी तौ समनौ बाहू श्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामेनवोच्छ्रयाद्यस्य सम ऊर्ध्वन्तु देहिन ।
समुच्छ्रय परीणाहो न्यग्रोधमण्डल ॥६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजास्तथा ।
सप्तानि रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥६८
चक्रं रथो मणि खड्ग धनू रत्नश्च पञ्चमम् ।
केतु निधिश्च सप्त त प्राणहीना प्रकीर्तिता ॥६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च य ।
मन्त्र्यश्व कलभ श्चैव प्राणिन सम्प्रकीर्तिता ॥७
रत्नान्येतानि दिव्यानि स सिद्धानि महात्मनाम् ।
चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिन ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ॥७२
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगादिके त्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिन ॥ ३

वे दोनों अग्राय बाहु कहे गये हैं और जो श्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारीका नाम से ही उच्छ्रय स उर्द्ध्व सम है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने के यो ७ होता है ॥६७। चक्र रथ मणि पञ्चगा धन यह पाँचवां रत्न था। केतु और निधिये सात रत्न प्राणों स हीन कहे गये हैं ॥६८॥६९॥ भार्या-पुरोहित स नानी और रथकृत् मन्त्री अश्व कलभ ये साथ प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जो क सर्वातिशय रत्न चक्रवर्तियों के होते थे ॥७ ॥ ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के स सिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्तियों के ये चौदह वैधेय थे ॥७१॥ समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत है। तथा अनागत हैं पृथिवी में चक्रवर्ती विष्णु भगवान् के अश से ही उत्पन्न

हुआ करते ? ॥ ७२ ॥ भूत भव्य और जो वर्त्तमान है, यहाँ ऐसा युगादि में चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं ।७३॥

भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ।
अद्‌भुतानि च चत्वारि बल धर्मं सुख धनम् ॥७४
अन्यान्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपं समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषे ।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठा श्रीवत्साश्चोर्द्ध्वरोमशा ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किता ।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धा सुमेहना ।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयो ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपा ।७९
असङ्गा गतयस्तेषां च चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम भद्र और अत्यन्त अद्‌भुत चार बल धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप में प्राप्त किये जाते हैं वे अर्थ धर्म-काम यश और विजय हैं ॥७५॥ वे अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं। बल और तप से समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त वे उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण भी ऐसे हैं जो कि अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों में

नहीं होते था। होते हैं। केशों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रभा जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा ऊर्ध्व रोमश थे ॥७७॥ जानुपर्यन्त बाहुओं वाले जाल हस्त तथा बृषाङ्कित न्यग्रोध के समान परिणाह संवृत्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महद् हनु (ठोढ़ी) वाले थे ॥७८॥ जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिह्न थे तथा हाथों में शङ्ख और पद्म के चिह्न थे ऐसे पिच्चासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे। ॥७९॥ उन चक्रवर्तियों की चार गतियाँ अगम्य थी? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति था ॥८०॥

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते।
हृष्टपुष्टा प्रजाः सर्वा ह्यरोगा पूर्णमानसाः ॥८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ॥८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्धौ निबोधत ॥८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्तते।
सन्ध्यायां च स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ॥८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ॥८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै।
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ॥ ७

इज्या दान तप और सत्य ये चारों बातें त्रेता युग में धर्म कही जाती है। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ॥८१॥ मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

प्रजाजन परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण तथा जब समाक्षीण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी। ८७॥

सम्भारांस्ताश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सततो यज्ञकर्मणि ।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

नही होने वाले होते हैं। नेत्रों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रभा
अंत करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले
श्रीवत्स तथा ऊर्ध्व रोमश थे। ७॥ जानुपर्य्यन्त बाहुओं वाले जाल हस्त तथा
वृषाङ्कित यग्रोध के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और
सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महान् हनु (ठोडी) वाले थे
॥७८॥ जिनके पैरो मे चक्र एवं मत्स्य के चिह्न थे तथा हाथो मे शङ्ख और
पद्म के चिह्न थे ऐसे पिच्चासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे।
॥७६॥ उन चक्रवर्तियों की चारों गतियाँ असङ्ग थी? अन्तरिक्ष मे समुद्र मे
पाताल मे और पर्वतो मे गमन उनकी गति था॥८०॥

इज्या दान तप सत्य त्रेतायां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः॥८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते।
हृष्टपुष्टा प्रजाः सर्वा ह्यरोगा पूर्णमानसा॥८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः॥८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्धौ निबोधत॥८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते।
सन्ध्यायां व स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति॥८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्त्तनम्।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे॥८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै।
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा तच्च व पुनः॥८७

इज्या दान-तप और सत्य ये चारो बातें त्रेता युग मे धर्म कही जाती
हैं। उस समय मे वर्ण और आश्रमो के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था॥८१॥
मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

प्रजाजन परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण तथा जब समाकीर्ण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शाशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी। ८७॥

सम्भारास्ताश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शाशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सततो यज्ञकर्मणि ।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥९५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवा कल्पादिषु भवन्ति ये ॥९६

इन सम्भारों को सम्भृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये । यह सुनकर श्री सूतजी बोले हे शांशपायन ! अब तुम मुझ से श्रवण करो ॥८८॥ जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी । वृष्टि के सम्पन्न होने में औषधियों के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमों की पूर्ण व्यवस्था करके तथा मन्त्रों और संहिता को व्यवस्थित बनाकर एवं यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रों का संयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जोकि समस्त देवों के साथ समस्त सम्भारों से सम्भृत था ॥८९॥९०॥९१॥ इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षि गण समागत हुए थे । और सबने समागमन करके मेध्यजगमों तत्वों के द्वारा यजन किया था ॥९२॥ वितत होने वाले यज्ञों के कर्म ऋत्विकों के कर्म करने में व्यग्र होने पर और सस्वर ही उन समस्त आगमों के सम्प्रगीत होने पर तथा लघु अध्वर्यु और वृषभों के परिक्रान्ति होने पर तथा मेध्यों के आलभन होजाने पर एवं अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जोकि महान् आत्मा वाले देव यज्ञों के भाग को ग्रहण करने वाले थे जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते है ॥९३॥९४॥ ॥९५॥

अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्रं सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ॥९७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञ सुरोत्तम ॥९८

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मणाव्यहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥१००
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा ॥१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ॥१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप
उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो ॥१०४

प्रवृष्ट काल मे जो महर्षि अध्वर्यु व्युत्थित हुए थे तो उस समय मे उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियो ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ॥ ९८॥ आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह बड़ा जबदस्त अधर्म किया जाता है ! हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ मे यह पशुओ का वध तो इष्ट नही है ॥९८॥ आपने पशुओ के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नही है । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नही कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही है तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म मत्यय या हेतु विधिदृष्ट यज्ञसे तथा यज्ञ-बीजो के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न हो वे ॥१००। हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल मे अप्ररोहियो के द्वारा उषित रहते हुए यह धर्म महान् स्वयभू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ॥१०१॥ इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्त्व के द्रष्टा महर्षियो के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरो से ही हमको यजन करना चाहिए ॥१०२। वे तत्त्वो से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सम्मान करके ईश्वर वसु से उन्होंने पूछा था ॥१ ३॥ ऋषियों ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! हे नृप ! आपने यज्ञ कभी और क्या यज्ञ की विधि देखी है ? उत्तान पाद के विषय में बताइये हे प्रभो ! हमारे इस संशय का छेदन करिये ॥१ ४॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ।
यथोपदिष्ट यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः । १ ५
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजं फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः ॥१०६
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभि ।
दीर्घेण तपसा युक्त दर्शनैस्तारकादिभि ।
तत्प्रामाण्यान्मया प्रोक्त तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ॥१०७
यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि वं द्विजा ।
तदा प्रावर्त्तता यज्ञो ह्यथा नोऽनृतं वच ।
एवं कृतोत्तरास्ते वं युञ्जमानास्तपोधना ॥१ ८
अथ च भवनं दृष्ट्वा तमथ वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥१ ९
इत्युक्तमात्रे नृपति प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधागत ॥११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशय ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मादूरमुपागति ॥११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तु धर्म संशयस्तु केनचित् ।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥११३
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभि ।
ऋषिकोटिसहस्राणि कर्मभि स्वैर्दिवं ययु ॥११४

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्त्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओ द्वारा, बीजों के द्वारा और फलो के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिखलाई देता है कि यज्ञ का हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहाँ पर जैसा सहिता के मन्त्र है जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीर्घ तप से युक्त महर्षियो ने और तारिकादि दर्शनों ने कहा है। उसी के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए इस विषय मे मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नही होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो ! यदि वे ही मन्त्र वाक्य प्रमाण है तो यज्ञ को प्रवृत करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपो धन हृतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उसके लिये वचत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल मे प्रवेश किया था ॥१०९॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल मे प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी वसु होकर रसातल मे चरण करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मों के सशय का छेदन करने वाला राजा वसु इसके अनन्तर आगया ॥१११॥ इसलिये चाहे बहुत कुछ जानने वाला भी क्यो न हो कभी भी किसी एक को सशय का निराकरण नही बोलना चाहिए। बहुत उद्धार वाले धर्म की सूक्ष्मता से दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नही जा सकता है। केवल देवो को और ऋषियो को लेकर स्वायम्भुव मनु ही हो धर्म को जानते हैं। इनको छोड़कर अन्य कोई नही जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नही कहा है। सहस्रो करोड ऋषि अपने कर्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दान यज्ञ वा प्रशसन्ति महर्षय ।
तुच्छ मूल फल शाकमुदपात्र तपोधना ।
एव दत्त्वा विभवत स्वर्गलोके प्रतिष्ठिता ॥११५

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तप ।
ब्रह्मचर्य तथा सत्यमनुक्रोश क्षमा धृति ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्मेमन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् ।
यज्ञ न देवानाप्नोति वैराग्य तपसा पुन ॥११७
ब्राह्मण्य कर्मसन्न्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्य पञ्च ता गतय स्मृता ॥११८
एव विवाद सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने ।
ऋषीणा देवतानाञ्च पूर्व स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा ह्रुत धर्म बलेन तु ।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागता ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयु ।
श्रूयन्ते हि तप सिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपा ॥१२१

इससे महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। तपो धन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल फल शाक और उदकका पात्र देकर इस प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह लोभ न करना दम प्राणियों पर दया-तपस्या ब्रह्मचर्य-सत्य अनुक्रोश क्षमा धृति यह सब सनातन धर्म का दुरासद (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक यज्ञ होता है। और अनशन स्वरूप वाला तप होता है। यज्ञ से देवो को प्राप्त किया करता है और फिर तप से वैराग्य का लाभ करता है ॥११७॥ कर्मों के सन्यास (त्याग) से ब्रह्मण्य को और वैराग्य से लय को प्रेक्षण किया करता है। ज्ञान से कैवल्य (अपवर्ग) को प्राप्त करता है ये पाँच ही गतियाँ कही गई हैं। ११८॥ पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर मे इस प्रकार से देवताओं का और ऋषियों का यज्ञ के प्रवर्त्तन मे बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥११९॥ इसके अनन्तर ऋषिगण बल से अद्भुत मार्ग देख कर और वसु के वाक्य का अनादर करके जैसे आये थे वैसे ही वे चले गये थे ॥१२०॥ देवो के सङ्घ के चले जाने पर देवो ने यज्ञ की प्राप्ति की और तप से सिद्ध ब्रह्मक्षत्रमय नृप श्रूयमाण होते हैं ॥१२१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।
प्राचीनवर्हि पर्जन्यो हविर्द्धानादयो नृपा ॥१२२
एते चान्ये च बहवो नृपा सिद्धा दिव गता ।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तप सर्वेषु कारणै ।
ब्रह्मणा तपसा सृष्ट जगद्विश्वमिद पुरा ॥१२४
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञ तपोमूलमिद स्मृतम् ।
यज्ञप्रवर्त्तन ह्येवमत स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
तत प्रभृति यज्ञोऽय युगै सह व्यवर्त्तत ॥१२५

प्रियव्रत उत्तान वाद-ध्रुव मेधातिथि-वसु-सुमेधा विरजा शख वाव रज प्राचीनवर्हि पर्जन्य और हविर्धानि आदि राजा-ये नृप तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे । ये राजर्षिगण महान् सत्व से युक्त थे जितनी कि कीर्त्ति प्रतिष्ठित है ॥१२३॥ इसलिये सबमे कारणो के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है । पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ॥१२४॥ इसलिये वह यज्ञ अधिक नही होता है । यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वयम्भुव मन्वन्तर मे यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था । तब से लेकर यह यज्ञ युगो के साथ विशेष रूप से हुआ था ॥१२५॥

॥ प्रकर्ण ४० —चारों युगो का आख्यान ॥

अत ऊर्द्ध्व प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधि पुन ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापर प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिस्तत सा सम्प्रणश्यति ॥२
तत प्रवर्त्तते तासा प्रजाना द्वापरे पुन ।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्ध तत्त्वानामविनिश्चय ॥३
सम्भेदश्चैव वर्णाना कार्याणाञ्चा विनिर्णय ।
यज्ञौपधे पशोर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ।

एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥
आद्य कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रपद्यते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥
वर्णानां विपरिध्वंसः सकीर्यते तथाश्रमः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं निगद्यते ।
धर्मतत्त्वं तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे पुनः द्वापर की सिद्धि को कहूँगा। वहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ॥ १ ॥ प्रजा-जनों को त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आदिम युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ धृति वणिग्युद्ध तत्त्वों का अविनिश्चय वर्णों का सम्भेद कार्यों का अविनिर्णय यज्ञौषधि पशु का दण्ड मद दम्भ अक्षमा बल ये सब प्रवृत्त होते हैं और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता में वह सम्पन्न होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ॥ ५ ॥ वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस सकीर्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी उसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व कहा जाया करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ॥ ८ ॥
कारणानां च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तै' कृत शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ।। १० ।।
सरोधादायुपश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।। ११ ।।
ऋषिपुत्रै पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमै ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासै स्वरवर्णविपर्ययै ।। १२ ।।
सहिता ऋग्यजु साम्ना सहन्यन्ते श्रुतर्षिभि ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नै क्वचित्क्वचित् ।। १३ ।।
ब्राह्मण कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थै केचित्तान् प्रत्यवस्थिता ।। १४ ।।

परस्पर मे विभिन्न उन मनुष्यो के द्वारा और दृष्टियो के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नही है' यह निश्चय नही किया जाता है कि वस्तुत धर्म क्या है ।। ८ ।। कारणो के वैकल्प होने से और कारण का भी निश्चय नही होने से और उन के मतिभेद होने से दृष्टियो का विभ्रम हो जाया करता है ।। ९ ।। इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल दिया गया है । इस त्रेता मे यहाँ एक वेद चार पादो वाला विधान किया जाता है ।। १० ।। हृदयों में आपके सरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि मे वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ।। ११ ।। ऋषियो के पुत्रो के द्वारा दृष्टि के विभ्रमो से वेदो के पुन भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासो के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययो के द्वारा भेद किये जाते हैं ।। १२ ।। ऋग्-यजु और साम वेदो की सहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से सहन्यमान होती हैं ।। १३ ।। ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित है । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित है ।। १४ ।।

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजा ।
एकमाध्वर्यव पूर्वमासीद्द्वैध पुनस्तत ।। १५ ।।
सामान्यविपरीतार्थै कृत शास्त्रकुलन्त्विदम ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुल कृतम् ।। १६ ।।

तथवाथवऋकसाम्ना विकल्पश्चाप्यसक्षयै ।
याकुल द्वापरे भिन्ने क्रियते भिन्नदर्शन ॥ १७ ॥
तेषा भेदा प्रभेदाश्च विकल्पश्चाप्यसशया ।
द्वापरे सम्प्रवत ते विनश्यन्ति पुन कली ॥ १८ ॥
तेषा विपय याश्चव भवन्ति द्वापरे पुन ।
अवृष्टिमरणञ्चव तथव व्याध्युपद्रवा ॥ १९ ॥
वाड मन ।कर्मजदु खनिर्वेदो जायते पुन ।
निर्वेदाज्जायते तेषा दु खमोक्ष विचारणा ॥ २ ॥
विचारणाच्च वराग्य वराग्याद्दोपदर्शनम् ।
दोषाणा दशनञ्चव द्वापरे ज्ञानसम्भव ॥ २१ ॥

द्वापर मे भिन्न वृत्त और आश्रमो वाले हुआ प्रवर्तित होते हैं। एक पहिले आध्वयव था वह फिर दु ष हो गया ॥ १५ ॥ सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र कुल किया गया है। आध्वयव के प्रस्तावो से बहुधा व्याकुल कर दिया है ॥ १६ ॥ उसी प्रकार से अथर्व ऋक और सामो के असक्षय विक ो से भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है। १७ ॥ उनके भेद और प्रभेद और विकल्पो से भी असशय द्वापर मे सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग मे विनष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ द्वापर मे फिर उन के विपयय भी होते है। अवृष्टि मृत्यु और उसी प्रकार से व्याधियो के उपद्रव होने हैं ॥ १९ ॥ वाणी मन और कर्म से उत्पन्न दु खो से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है। निर्वद हो जाने से उनको दु ख से छुटकारा पाने की विचारणा होती है ॥ २ ॥ विचारणा से वराग्य होता है और वराग्य से सामारिक वस्तुओ मे दोषो का दर्शन होने लगता है और दोषो के देखने से द्वापर मे ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणा द्वापरे परिपन्थिन ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गाना ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्रा वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ।
द्वापरे सर्वभूताना कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्ध तत्वानामविनिश्चय ।
वेदशास्त्रप्रणयन धर्माणा सकरस्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वस कामद्वेषी तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादत ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन सातो शास्त्रो के द्वापर मे परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गो के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं । अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक पृथक् प्रस्थान हैं । द्वापर मे उस प्रकार से मनुष्यो के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है । द्वापर मे समस्त प्राणियो की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिज्युद्ध तत्त्वो का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमो का परिध्वस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यो की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है । उस द्वापर के निशेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्याशशेषेतु प्रतिप्रत्ति कलेरत ॥ ३० ॥

हिंसासूयानृत माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजा ॥ ३१ ॥
एष धर्म कृ न कृ नो धर्मश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तु या वार्त्ता सिद्धयति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोग सतत क्षुद्भयानि च ।
अनावृष्टिभय घोर द्वन्द्व विपर्ययम् ॥ ६३ ॥
न प्रमाण स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापर ।
स्थाविर मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजा ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण कोपाल्पतेजस ।
अनतब्रुवश्च सतत तिष्ये जायन्ति च प्रजा ॥ ३५ ॥

द्वापर का यह धर्म गुणो से हीन प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार से सन्ध्यापाद से उसका अंश अवस्थित होता है ॥ २९ ॥ द्वापर के अन्त मे जो तिष्य की है उसे समझ लो। द्वापर के अंश शेष मे इससे कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३ ॥ हिंसा असूया अनृत, माया और तपस्वियो का वध ये स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं। उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ १ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है। मन से कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्त्ता सिद्ध होती है और नही भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग मे जो रोग होता है वह प्रकृष्ट रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के भय का भय बना रहा करता है। वर्षा के बिल्कुल न होने का भय तथा घोर द्वन्द्व एव विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक मे युग युग मे स्मृति का प्रमाण नहीं होता है। कोई गर्भ मे स्थित ही मर जाता है और दूसरा पूर्ण यौवनावस्था मे स्थित ही मृत्युगत हो जाता है। कलियुग मे स्थाविर मे मध्य कौमार प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य मे प्रजा अधार्मिक अनाचार से युक्त तीक्ष्ण कोप वाली अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
सक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
शूद्राणां मन्त्रयोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणो के इन कर्म दोषो से प्रजा जनो को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य मे सब ओर से जन्तुओ को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवो को अत्यन्त सक्षोभ हुआ करता है । उस कलि के समय मे द्विजाति वेदो को नही पढा करते हैं और न वे भजन ही किया करते हैं । इससे मनुष्य और वैश्यो के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीडित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ क्षुद्रो का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणो के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रो की अधिकता वाले प्राय हुआ करता है और पाषण्डो के प्रवर्त्तक होते हैं । उनमे प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है । जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणो जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रो के समान आचार हुआ करते हैं

क्षीण-लोक हो जायगा । युगान्त का यह लक्षण है कि पश्चिम मे मलाच्छा हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती नरों से रहित एवं शून्य हो जायगी । देशों से और नगरों में यही मंडल होंगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोड़े बल वाली और थोड़ा ही फल देने वाली हो जायगी । जो रक्षा करने वाले है वे ही अरक्षक और शासन रहित होंगे ॥५६॥

हर्त्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः ।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात् साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
अनष्टचेतना पुन्सो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः ।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५९ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः ।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥ ६ ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते ।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्य सामर्थ्य दुर्लभ भवेत् ।
कौशिका प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६२ ॥
दुःखेनाभिप्लुतानाञ्च परमायु शत भवेत् ।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदा कलियुगेऽखिला ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नो का हरण करने वाले और पराई स्त्री का प्रधर्षण करने वाले कामात्मा और दुष्ट आत्मा वाले और अधर्म के काम मे साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चुटिया खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७ ॥५८॥ शुक्ल दन्त जिताक्ष मुण्ड और काषाय वस्त्रो के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५९॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्शन करने वाले चोर के हरण करने वाले चोर तथा हनन करने वाले का हरण करने वाले लोग होंगे ॥६०॥ ज्ञान

कि कर्म में उपरत लोक मे जबकि वह सर्वथा निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सर्प मनुष्यो का धर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एव सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और प्यास के भय से पीडित देशों मे कोए निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगो की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग मे सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञा केवला धर्मपीडिता ।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ६४ ॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ।
वर्णाश्रमाणा ये चान्ये पाषण्डा परिपन्थिन ॥ ६५ ॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै सप्राप्ते तु कलौ युगे ।
नाधीयन्ते तदा वेदा शूद्रा धर्मार्थकोविदा' ॥ ६६ ॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजान शूद्रयोनय ।
स्त्रीवध गोवध कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ।
उपहन्युस्तदान्योन्य साधयन्ति तथा प्रजा ॥ ६७ ॥
दु खप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्साद सरोगता ।
मोहो ग्लानिस्तथासौख्य तमोवृत्त कलौ स्मृतम् ॥ ६८ ॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते ।
तस्मादायुर्बल रूप कलि प्राप्य प्रहीयते ।
दु खेनाभिप्लुताना वै परमायु नृणाम् ॥ ६९ ॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदा कलियुऽखिला ।
उत्सीतन्ते तदा यज्ञा केवला धर्मपीडिता ॥ ७० ॥

केवल धर्म पीडित यज्ञ उत्सन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्गन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमो के पाषण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नही किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग अश्वमेध

का यजन नहीं किया करते हैं तथा स्त्री का वध-गौ का वध करके और परस्पर मे हनन करके तब एक दूसरे का उपहनन करेंगे और इस तरह से प्रजा का साधन किया करते हैं ॥६७॥ दुःखो के प्रचार से अल्प आयु देशोत्साद मोह सरोगन ग्लानि तथा असौख्य इस तरह से कलियुग मे तमोवृत्त कहा गया है ॥६८॥ प्रजा सब भ्रूण हत्या मे सम्प्रवृत्त होती है इसी से कलियुग को प्राप्त करके आयु बल और रूप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं और सब ओर से दुःखों में डूबे हुए मनुष्यो की आयु सबसे अधिक सौ वर्ष की हो जाती है ।६९॥ समस्त वेद तो इस कलियुग मे दिखलाई देते हैं और नही भी दिखलाई दिया करते हैं। उ। समग्र केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७०॥

तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवा ।
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमा ॥ ७१ ॥
श्रुतिस्मृत्युदित धर्म ये चरन्त्यनसूयका ।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥
एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्यांश तु निबोध मे ।
युगे-युगे तु हीयन्ते त्रीस्त्रीन् पादांश्च सिद्धय ॥ ७३ ॥
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादश ।
सन्ध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्त प्रतिष्ठिता ॥ ७४ ॥
एव सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तथा शास्ता ह्यसाधूना भृगूणां निधनोत्थित ॥ ७५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते ।
माधवस्य तु सौंशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ७६ ॥
समा स विंशतिं पूर्णां पर्यटन् वै वसुन्धराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रै शतशोऽथ सहस्रश ।
स तदा तै परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥ ७८ ॥
स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान्
पाषण्डान् स ततः सर्वान्नि शेषान् कृतवान् प्रभु ॥ ७९ ॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वश ।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च तानुपजीविन ॥ ८० ॥

उस युगान्त मे जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते हैं वे मानव अल्प काल मे ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति मे कहे हुए धर्म का आचरण किया करते है । त्रेता मे वार्षिक धर्म होता था—द्वापर में वह मासिक कहा गया है और कलियुग में प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन मे प्राप्त कर लेता है ।७१॥७२॥ यह तो कलियुग की अवस्था है अब इसका सन्ध्याश भी समझ लो । युग युग मे तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती हैं ॥७३॥ युग के स्वभाव मे ये सन्ध्या पाद से रहा करती हैं । सन्ध्या के स्वभाव से अशो मे पाद मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ७४॥ इस तरह से युगान्त मे सन्ध्याश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधू भृगुओं का शास्ता निधन से उत्थित होता है ॥७५॥ गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले वह माधव के अश से होती है ।७६। पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए उसने घोडे हाथियो से युक्त सेना का आकर्षण किया ।७७॥ आयुध ग्रहण करने वाले विप्रो के द्वारा जो सख्या में सैकडो और हजारो थे उनसे परिवृत होकर हजारो ही म्लेच्छो का हनन करता है ॥७८॥ वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियों मे समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पापण्डो को वह प्रभु नि शेष कर देते हैं ॥७९॥ जो अत्यर्थ धार्मिक नही है उन सबको सब ओर से मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्या से उत्पन्न हुए हैं और अनुताप देने वाले हैं ॥८०॥

उदीच्यान्मध्यदेशाश्च पार्वतीयास्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्याश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥ ८१ ॥
तथैव दाक्षिणात्याश्च द्रविडान् सिंहलै सह ।
गान्धारान् पारदाश्चैव पह्लवान् यवनास्तथा ॥ ८२ ॥
तुपारान् ववंराश्चीनान् शूलिकान् दर दान् खसान् ।
लम्पाकानथ केताश्च किरातानाञ्च जातय ॥ ८३ ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभु ।

अघृष्य सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोंशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मविधिज्ञश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमस पूर्वे कलियुगे प्रभु ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशति समा ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रश ।
कृत्वा बीजावशेषान्तु पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्त सहानुग ॥ ८८ ॥

उत्तर मे रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम मे रहने वाले एव विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक दाक्षिणात्य और सिंहलो के साथ द्रविड़ गान्धार-पारद-पह्लव तथा यवन-तुषार बर्बर चीन-शूलिक-दरद-खस-लम्पक देश और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छों का प्रवृत्त चक्र बलवान् विभु अन्त करने वाले थे जोकि समस्त प्राणियो के अघृष्य थे उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विज्ञत किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रों मानवों का हनन करते हुए क्रूर कर्म से पृथ्वी को बीजावशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमे वृषलो की जोकि प्राय अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य मे निष्ठा प्राप्त कर ली थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥ ।

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रश ॥ ८९ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्-क्वचित् ।

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दश ।
उपहिंसन्ति चान्योन्य प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ९१ ॥
अराजके युगवशात् सशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै तत सर्वा परस्परभयार्दिता ॥ ९२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठा प्राप्ता सुदु खिता ॥ ९३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा नि स्नेहा निरपत्रपा ॥ ९४ ॥
नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वका पञ्चविंशका ।
हित्वा दाराश्च विषादव्याकुलेन्द्रिया ॥ ९५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक अमात्य के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवो का तथा सहस्रो म्लेच्छो का उत्सादन करके वहाँ सन्ध्याश काल मे युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कही-कही पर अत्यन्त अल्प प्रजाओ के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर प्रग्रह रहित और वृन्दो मे लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस मे उपहिंसन करते हैं ॥८९॥९०॥९१॥ युग-वश से अराजकता के सशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दु खित थी ॥९२॥ अत्यन्त व्याकुल—परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियो को तथा घरो को छोडकर अपने ही प्राणो को देखते हुए सुदु खित होते हुए निष्ठा को प्राप्त हुए ॥९३॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले—निराक्रन्द—नि स्नेह और निरपत्रप होगये थे ॥९४॥ वर्ष के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियो एव पुत्रो का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियो वाले थे ॥९५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दु खिताः ।
प्रत्यन्तास्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ९६ ॥
सरित सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतास्तदा ।
मधुमासंमूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदु खिता ॥ ९७ ॥

चीरवस्त्राजिनधरा निष्प्रग्रा निष्परिग्रहा ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्कर घोरमास्थिता ॥ ९८ ॥

एता काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजा ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दु खान्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥

विचारणन्तु निर्वेदान् साम्यावस्था विचारणात् ।
साम्या वस्थासु सम्बोध सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १० ॥

तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु च स्वयम् ।
अहोरात्र तदा तासा युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥

चित्तसम्मोहन कृत्वा तासान्त सप्तमस्तु तत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत' कृतमवर्त्तत ॥ १०२ ॥

प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्ना कलिशिष्टास्तु कार्त्तयुग प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय मे अनावृष्टि स आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दु खित होरहे थे। अपने-अपने जन पदों को त्याग कर प्रत्यन्तो का सेवन करते थे। नदियाँ—सागर कूप और पर्वतो का सेवन करते थे। अत्यन्त दु खित होते हुए मधुमास तथा मूल फलो से जीवित रहते थे। ९६।९७॥ चीर वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले निष्प्रग्र एव निष्परिग्रह वर्णाश्रम से परिभ्रष्ट घोर सकर मे आस्थित थे ॥९८॥ ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाले वह थोडी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दुख से निर्वेद को प्राप्त हुई थी ॥९९॥ निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से साम्यावस्था हुई। साम्यावस्थाओ मे कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से धर्मशीलता उत्पन्न हुई ॥१ ॥ कलियुग मे अव शिष्ट और उपशम से युक्त उन मे स्वय उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्तित होते है ॥१ १॥ उनके चि । का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर सप्तम कृत हुआ था ॥१ २॥ फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय मे कलिशिष्ट कार्तयुग्य प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥१ ३॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा सुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिता ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविश शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ।
कलिजै सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषा सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुक्त श्रौत स्मार्तो द्विधा तु स ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजा कृते ।
श्रौत स्मार्त्त कृतानान्तु धर्मं सप्तर्षिदर्शित ॥ १०७ ॥
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वतराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ।
नवाना प्रथम दृष्टस्तेषा मूले तु सम्भव ॥ १०९ ॥
एव युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षय ॥ ११० ॥

यहा पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदृष्ट होते हुए विचरण करते हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ॥१०४॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि मे समुत्पन्न होने वालो के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ॥१०५॥ उनके धर्म को और इतरो मे सप्तर्षि कहते हैं । वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ॥१०६॥ इसके अनन्तर कृत मे क्रियावान उनमे प्रजा कृती है और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत्व तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ।१०७॥ यहाँ पर युग के क्षय से उनमे धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारो मे मुनिगण स्थित रहते हैं ॥१०८॥ जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणो पर तप ऋतु मे उनके मूल मे सम्भव नवीन तृणो का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ॥१०९॥ इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है । जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ॥११०॥

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥
ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिश्च कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ॥ ११२ ॥
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ॥ ११३ ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अत्राजवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥ ११४
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्तति ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ ११५
चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥ ११६
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥ ११७

सुख—आयु बल रूप धर्म-अर्थ और काम ये सब तीन युगों में पाद क्रम से हीयमान होते हैं ॥१११॥ ससन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं। हे द्विजो! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्त्तित कर दिया है। चारों युगों का इससे ही प्रसाधन होता है। यह चतुर्युगों की आवृत्ति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ॥११३॥ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है। यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय तक जड़ीभाव होता है ॥११४॥यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की गणना इकहत्तर होती है। क्रम से परिवृत्त वह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ॥११५॥ यहाँ एक चतुर्युग में उस प्रकार से यथाश्रुत होती है। उसी प्रकार से अन्यों में भी वह फिर यथाक्रम हुआ करती है ॥११६॥ सर्ग-सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या में परिमित होते हैं। न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ॥११७॥

तथा कल्पयुगं सार्द्धं भवन्ति समलक्षणा ।
मन्वन्तराणा सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११८
तथा युगाना परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोक· क्षयोदयाभ्या परिवर्त्तमान ॥११९॥
इत्येतल्लक्षण प्रोक्त युगाना वै समासत ।
अतीतानागताना वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्क कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्व कल्पे कल्पेन चैव हि ॥१२२
अस्याभिमानिन' सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वरा ॥१२३

उस प्रकार से कल्प युगो के साथ समान लक्षण वाले होते हैं । समस्त मन्वन्तरो का यह ही लक्षण होता है ॥११८॥ उस प्रकार से युगो के परिवर्त्तन युगो के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं । उस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एव उदय से परिवर्तमान होता हुआ नही संस्थित रहा करता है ॥११९॥ इतना यह युगो का सक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये है, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरो मे होते हैं ॥१२०॥ जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरो में जो अतीत एव अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ॥१२१॥ एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरो की व्याख्या करदी गई है । कल्प मे कल्प से उसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥ इसके अभिमानी सब नाम और रूपो से यहाँ मन्वन्तर मे आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ॥१२३॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्या प्रयोजनै ।
एव वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभु ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ॥१२५

पर्यन्त नवताल होता है और जो आजानु बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ९ ॥ गौ अश्व हस्ती महिष और स्थावर स्वरूप वालों की क्रम से इस योग से युग युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊंचाई सड़सठ अंगुल और ककुद की होती है। हाथियों का उत्सेध हर एक सौ आठ अंगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अंगुल के बिना एक सहस्र अंगुल और पश्चात् हयों (अश्वों) का शाखियों (वृक्षों) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवों का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है। देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते व परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषा ।
पशूना पक्षिणाञ्चैव स्थावराणा निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिन पक्षिणो नगा ।
उपयुक्ता क्रियास्वेते यज्ञियास्त्विह सर्वश ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुन ।
यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तय ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपस्तै प्रमाणै स्थाणुजङ्गम ।
मनोज्ञैस्तत्त्वभावैश्च सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अत शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सत साधूंस्तथैव च ।
सदिति ब्रह्मण शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।
सायुज्य ब्रह्मणोऽत्यन्त तेन सन्त प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न कुप्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृता ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वशेषिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातय ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रान्त किये हैं। अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरों का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ-अजा (बकरी) महिषी

(भंस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओ में उपयुक्त होते हैं। यहाँ पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ॥ १६ ॥ देवस्थानो में जो उत्पन्न होते है वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथाशयोपभोग वाले देवो की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ॥ १७ ॥ उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणो से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ॥ १८ ॥ इससे आगे शिष्टो तथा सत् और साधुओ को बताऊँगा। सत् पद-ब्रह्म का शब्द है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ॥ १९ ॥ जो दशात्मक विषय मे और आठ लक्षणो वाले कारण में न तो क्रोधित होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ॥२०॥ सामान्य धर्मो मे तथा वैशेपिको में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिण ।
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्म स उच्यते ॥ २२ ॥
विद्याया साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हित ।
क्रियाणा साधनाच्चैव गृहस्थ साधुरुच्यते ॥ २३ ॥
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानस स्मृत ।
यतमानो यति साधु· स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥
एवमाश्रमधर्माणा साधनात् साधव स्मृता ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक ॥ २५ ॥
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः ।
अय धर्मो ह्यय नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शना ॥ २६ ॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ।
कुशलाकुशल कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ॥ २७ ॥
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्म· प्रकीर्त्तित· ।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ॥ २८ ॥

वर्णाश्रमो मे युक्त तथा स्वर्ग गोमुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ॥ २२ ॥ विद्या के साधन से

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी और क्रियाओं के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ जङ्गल में तप के साधन से साधु वखानस कहा गया है। जो यशमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन से साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव न पित र-न मुनिगण को न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते है ॥ २६ ॥ यहाँ पर धम और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनो ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कम धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का धृति यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने से यह अधम ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अत्रेष्टप्रापका धर्मा आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भका ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचार स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमै सन्नियमैर्युत ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौत सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुति ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचार पुनर्जगौ
तस्मात्स्मार्त स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागज ॥ ३२ ॥
स एष द्विविधो धर्म शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचार प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिका ।
मनु सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थ ये च शिष्टा वै याथातथ्य प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिता ।
तै शिष्टैश्चरितो धम सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक है उन्हें धर्म उपदेश

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भाँति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते है ॥२९॥ स्वय भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमो से युक्त होता हुआ शास्त्रो के अर्थों का चारो ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व मे होने वालो से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियो ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्–यजु–साम–ब्रह्म के अङ्गो को और श्रुति उन्होने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आचार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत धर्म स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शब्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरो जो शिष्ट है यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते है। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टो के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग मे अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचयते यस्मान्मनुना च पुन पुन ।
पूर्वं पूवगतत्वाच्च शिष्टाचार स शाश्वत ॥३६॥
दान सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनी दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येन मनु सप्तपयश्च वै ।
मन्वन्तरेपु सर्वेपु शिष्टाचारस्तत स्मृत ॥३८॥
विज्ञेय श्रवणात् श्रौत स्मरणात् स्मार्त्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मक श्रौत स्मार्तो वर्णाश्रमात्मक ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३९॥
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं य पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

ब्रह्मचर्य जपो मौन निराहारत्वमेव च।
इत्येतत् तपसो मूल सुघोर तद्दुरासम् ॥४१॥
पशूना द्रव्यहविषाभृक्सामयजुषा तथा।
ऋत्विजा दक्षिणानाञ्च सयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टो के द्वारा बार-बार आचरित होते है पूर्वगत होने से पूर्वो के द्वारा यह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या—इज्या–प्रजनी और दया—ये आठ वे चरित्र हैं जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योकि इसका शिष्ट चरण करते हैं मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते हैं ऐसा सभी मन्वन्तरो मे किया जाता है इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाता है। इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है। अब उस धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गो को बताऊँगा ॥३९॥ बहुत-सा अर्थ देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नही है। जैसा भूत प्रवाह है यही सत्य का लक्षण होना है ॥४ ॥ ब्रह्मचर्य—जप–मौन–निराहारत्व यह इतना तपका सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओ का द्रव्य-हवियो का ऋक्, साम और यजु का ऋत्विजो का और दक्षिणाओ का जो सयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च।
समा प्रवर्त्तते दृष्टि कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा।
वाड्मन कर्मभि' क्षान्तिस्तितिक्षा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च भूत्सु च।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम्।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्र दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थ वा परार्थ वा इन्द्रियाणीह यस्य वै।
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यै तत्तु लक्षणम् ॥३७॥

दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येन् प्रतिहत स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतम द्रव्यं न्यायेनोपागतश्च येत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४९॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियो मे अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा-भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा-पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी मे यो ही उत्सृष्ट पराये धनो का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अछिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नही होती हैं यही शम का अवसर होता है अर्थात् इसी को शम कहते हैं ॥४७॥ जो दशात्मक विषय मे और आठ लक्षण वाले कारण मे प्रतिहत होता भी क्रोध नही करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ॥४९॥

दान त्रिविध मित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ।
तत्र नैश्रेयस ज्येष्ठ कनिष्ठ स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्य सुविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्या विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मक ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्म सत्साधुसम्मत ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
सन्यास कर्मणो न्यास कृतानामकृतं सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाण त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञान ज्ञानमुच्यते ॥५४॥

प्रत्यङ्गाना तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षण स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञ पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५५॥
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिमन्वन्तरस्य य ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥५६॥

दान भी तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। उनमें जो दान निश्चय से सम्बन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने अर्थ की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है। जो करुणा से समस्त प्राणियों के लिये बन्धुओं में भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ॥५ ॥ श्रुति और स्मृति के द्वारा विदित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एवं साधु पुरुषों के द्वारा सङ्कृत धर्म है ॥५१॥ अभीष्ट वस्तुओं में प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति ताप और विषादों से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ॥५२॥ कर्म का भली भाँति न्यास ही सन्यास होता है। अकृतों के साथ कृतों का कुशल और अकुशलों का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ॥५३॥ जो अव्यय से और अविशेष से इस चेतन में विकार है तथा चेतना चेतनाऽन्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ॥५४॥ धर्म के प्रत्यङ्गों का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्त्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऋषियों ने कहा है ॥५५॥ यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चतुर्वर्ण का प्रति मन्वन्तर में अन्य श्रुति का विधान किया जाता है ॥५६॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आभूत सम्प्लवस्यापि वर्ज्यैक शतरुद्रियम् ॥५७॥
विधिर्होत्र तथा स्तोत्र पूर्ववत्सम्प्रवर्तते ।
द्रव्यस्तोत्र गुणस्तोत्र कर्मस्तोत्र तथैव च ।
चतुर्थमाभिजनिक स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥५८॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयति तेषा वै ब्रह्मस्तोत्र चतुर्विधम् ।
एव मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ।।५९।।
अथर्वयजुषा साम्ना वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तप परमदुश्चरम् ।।६०।।
मन्त्रा प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दु खात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ।।६१।।
ऋषीणा तप कात्स्न्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणा यदृषित्व हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणै ।।६२।।
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणा वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ।।६३।।

ऋक्-यजु और साम प्रति दैवत यथावत है । आभूत सम्प्लव का भी एक शतरुद्रिय वर्ज्य होता है ।।५७।। विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भाँति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र-गुण स्त्रोत-कर्म स्त्रोत और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ।।५८।। समस्त मन्वन्तरो मे जो देव जिस प्रकार से होते है उनका चारो प्रकार का ब्रह्म स्त्रोत प्रवृत्त होता है । इस प्रकार से अनन्त गुणो की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ।।५९।। अथर्व यजु और साम वेदो मे यहाँ पृथक्-पृथक् होती है । तप करते हुए ऋषियो का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ।।६०।। पूर्व मन्वन्तरो मे यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे । वे परितोष से—भय से—दु ख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के है ।।६१।। तप की कृत्स्नता से ऋषियो के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियो का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणो के द्वारा बतलाऊगा ।।६२।। अतीत और अनागतो मे पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते है । इसलिए ऋषियो के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ।।६३।।

गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यथा ।।६४।।

अबुद्धिपूवक तद्ध चेतनाथ प्रवत्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूव तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वत्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठित तत्त्व प्रवत्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा काय तदा तस्य प्रवत्तते ।
विषये विषियात्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मका ।
ससिध्यन्ति तदा व्यक्ता क्रमेण महदादय ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
ससिद्धिकारण काय सद्य एव विवत्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्त्रुटन्नूद्ध मेककाल प्रवत्तते ।
तथा विवृत्त क्षेत्रज्ञ कालेनकेन कमणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योत सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्वण ॥७१॥

गुणो के साम्य के वर्तमान होने पर उस समय मे सबका सम्प्रलय होने पर—देवो के प्रतिचार होने पर उन दोनो के प्रतिदेश होने पर अबुद्धिपूवक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से ये दोनो मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्त्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से काय प्रवर्त्तित होता है। विषय मे विषयत्व होने से तथा अर्थ मे अर्थित्व होने से प्रवर्त्तित होता है ॥६७॥ प्रापणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय मे महदादि व्यक्त होते हुए से सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतो के भेद तो भेदो से परस्पर मे उत्पन्न होते हैं। संसिद्धि कारण काय तुरन्त ही विवर्त्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर मे उल्मुक टूटता हुआ एक काल मे प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन धर्म से

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार मे सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त उल्वण खद्योत की भांति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थित ।
तत्रैव सस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थित ॥७२॥
महास्तु तमस पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रैव सस्थितो विद्वास्तमसोऽन्त इति श्रुति ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा।
ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सासिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ।
महत सशरोरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुप क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मक स वै ।
ससिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान सस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार मे वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर सस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान–वैराग्य–ऐश्वर्य और धम ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये मासिद्धिक सुप्रतीक है। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी मे जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी मे शयन करने से पुरुप क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ–भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करना है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। ससिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

एव निवृत्ति क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञ नाभिस हिता।
क्षेत्रज्ञ न परिज्ञातो भोग्योऽय विषयस्त्रिबति ।।७८।।
ऋषीत्येप गतौ धातु श्रुतौ मत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषि स्मृत ।।७६।।
निवृत्तिसमकाल तु बुद्ध याव्यक्तमृषि स्वयम् ।
पर हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्तत स्मृत ।।८०।।
गत्यर्थादृपतेर्द्धातोर्नामनिवृ त्तिरादित ।
यस्मादेप स्वयम्भूतस्तस्मान्नात्मर्षिता स्मृता ।
ईश्वरा स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मण सुता ।।८१।।
यस्मान्न ह्यते मानमहान् परिगत पुर ।
य स्मादृषन्ति ये धीरा महान्त सवतो गुण ।
तस्मा महर्षय प्रोक्ता बुद्ध परमदर्शिन ।।८२।।
ईश्वराणा शुभास्तेषा मानसान्तरसाश्च ते ।
अहङ्कार तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गता ।।८३।।
तस्मात्तु ऋषयस्ते व भूतादौ तत्त्वदशना ।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मथुनाद्गर्भसम्भवा ।।८४।।

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ से अभिसहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है। क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विषय होता है ।।७८।। ऋषि यह धातु गति मे—श्रुति मे—सत्य मे और तप मे होती है। उसके इस सन्नियत होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋषि कहा गया है ।।७६।। निवृत्ति के समकाल मे ऋषि स्वय बुद्धि से अव्यक्त होता है। जिस कारण से पर को ऋष करता है इससे परमर्षि कहा जाता है ।।८ ।। गत्यर्थक ऋष धातु स आदि नाम की निवृत्ति होती है। क्योंकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मर्षिता कही गई है। ईश्वर स्वयं उद्भूत हुए हैं और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।।८१।। क्योंकि यह मानो से ह्यमान नही होता है आगे महान् परिगत है। जिस कारण से ये धीर सब ओर से गुणो के द्वारा महान् को रिषते है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्षि कहे गए है ।।८२।। उन ईश्वरो के शुभ ये मानशान्त रस हैं और अहङ्कार तथा तम का

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए है ॥८३॥ उनसे वे ऋषिगण भूतादि मे तत्त्व के देखने वाले हैं। ऋषियों के पुत्र ऋषीक तो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥८४॥

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजस ।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमा सत्यदर्शना ॥८५॥
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रका ।
ऋषन्ति वै श्रुत यस्माद्विशेषाश्चैव तत्त्वत ।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शना ॥८६॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषा तज्ज्ञानमुच्यते।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभि पञ्च वै शृणु ॥८७॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु ।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूता स्वयमीश्वरा ॥८८॥
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महास्तस्मान्महर्षय ।
ईश्वराणा सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ॥८९॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा ।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चैशिजस्तथा ॥९०॥
कर्दमो विश्रवा शक्तिर्वालखिल्यस्तथा धरा ।
इत्येते ऋषय प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गता ॥९१॥

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करते है इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ॥८५॥ ऋषियो के जो पुत्र है वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं। क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं और तत्त्व से विशेषो को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते है ॥८६॥ अव्यक्तात्मा–महात्मा–अहङ्कारात्मा–भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है। इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच है उन्हे सुनो ॥८७॥ भृगु–मरीचि–अत्रि–अङ्गिरा–पुलह-

षष्ठस्तु मत्रावरुण कुण्डिन सप्तमस्तथा ।
सद्यु म्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पति ।
दशमस्तु भरद्वाजो म न्त्रब्राह्मणकारका ॥१०६॥
एते चैवहि कर्तारो विषमध्वंसकारिण ।
लक्षण ब्रह्मणस्चैतद्विहित सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हिते स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितम्पर ।
अथ वाथपरिप्राप्तेर्हिनोनेगतिकमण ॥१ ८॥
तथा निवचन ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् ।
निन्दा तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वच ॥१०९॥
प्रपूर्वाच्छसतेर्धातो प्रशसा गुणवत्तया ।
इदन्त्विदमिद नेदमित्यनिश्चित्य सशय ॥११०॥

काश्यप वत्सार विभ्रम रैम्य-असित देवल—ये छ ब्रह्मवादी होते ह ॥१ ३॥ अत्रि-अर्चिसम-श्यामावान् निष्ठुर-वल्गूतक मुनि धीमान्-पूर्वातिथि—महर्षि म न्त्रकार कहे गए है ॥१ ४॥ वशिष्ठ-शक्ति पाराशर-चौथा इन्द्र प्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु—छठा मैत्रावरुण—सातवाँ कुण्डिन—आठवाँ सुद्युम्न—नवम् बृहस्पति—दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले है ॥१ ५॥१ ६॥ ये सब करने वाले और विषम के ध्वस करने वाले हैं। यह ब्रह्मा का लक्षण समस्त शाखा वालो म विदित है ॥१ ७॥ हिति धातु से हेतु कहा गया है जो परो के द्वारा उदित का निहनन करते हैं। अर्थ परि प्राप्ति गतिक्रम वाली हिनोत से होता है ॥१ ८॥ तथा वाक्यार्थ कर अव धारण निवचन बोलना चाहिए। आचार्य लोग जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है उसको निन्दा कहते हैं ॥१ ९॥ प्रपूर्वक शस धातु से गुणवत्ता के कारण से प्रशसा होनी है अर्थात् प्रशसा कही जाती है। यह है—यह नही है ऐसा अनिश्चय करके ही सशय होना है ॥११ ॥

इदमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वाद्बुध परकृति स्मृता ॥१११॥
यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्प स उच्यते ।
पुराविक्रान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैं शुद्धविस्तरै ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥११३॥
यथा हीद तथा तद्वै इद वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्य पदेशोऽय दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥११४॥
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहित लक्षण बुध ।
तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपद द्विजै ॥११५॥
मन्त्राणा कल्पन चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥११६॥
अल्पाक्षरमसन्दिग्ध सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्र सूत्रविदो विदु ॥११७॥

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है। अन्य-अन्य के कथन होने से बुधो के द्वारा परकृति कही जाती है ॥१११॥ जो अत्यन्ततर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है। पुरा विक्रान्त वाची होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ॥११२॥ मन्त्र ब्राह्मण कल्पो के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमो के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ॥११३॥ जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है। यह अथवा उमी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ॥१४४॥ यह आदि मे ब्राह्मण का लक्षण बुधो के द्वारा किया गया है। ब्राह्मणो के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ॥११५॥ विधि दृष्ट कर्मो में मन्त्रों का कल्पन होता है। मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ११६॥ सूत्रो के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला—असदिग्ध—सार वाला—विश्वतोमुख—अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं ॥११७॥

॥ प्रकरण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ॥

ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूतमाहु सुदुस्तरम् ।
कथ वेदा पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥१॥
द्वापरे तु परावृत्ते मनो स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेद तद्वदिष्ये महामते ॥२॥

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वर प्रभु ॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तश्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥१७॥
आध्वर्यव यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्र तथैव च ।
उद्गात्र सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभि ।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञ वेदेनाथर्वणेन तु ॥१८॥
तत स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेद समकल्पयत् ।
होतृक कल्प्यते तेन यज्ञवाह जगद्धितम् ॥१९॥
सामभि सामवेदञ्च तेनोदगात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥
आख्यान श्चाप्युपाख्य नर्गाथाभि कुलकर्मभि ।
पुराणसंहिताश्चक्र पुराणार्थविशारद ॥२१॥

सामवेद के मध्य का श्रावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था। उसी प्रकार से अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप मे ग्रहण किया था ॥१५॥ इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ॥१६॥ यजुर्वेद एक ही था उसको चार प्रकार के भेदो मे कल्पित किया था। उसने उसमे यज्ञ की कल्पना की जो कि चतुर्होत्र था ॥१७॥ यजु से आध्वर्यव ऋक मे उसी प्रकार होत्र साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया। अथर्व वेद से यज्ञ मे ब्रह्मत्व किया था ॥१८॥ इसके अनन्तर उसने ऋक का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी। उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत हित की कल्पना की जाती है ॥१९॥ सामो से सामवेद को और उससे उद्गात्र को रोचित किया था। राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ॥२ ॥ आख्यानो से तथा उपाख्यानो से गाथाओ के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणो के अर्थ के विशारद ने पुराण संहिता की अर्थात् पुराण संहिता की रचना की ॥२१॥

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुजत् ।
युञ्जान म यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चय ॥२२॥

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनाद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते तु सः ॥२३॥
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विःकृत्वा सयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥२४॥
इन्द्रप्रमतये चैका द्वितीया बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तम ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥२५॥
बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥२६॥
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तम ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ॥२७॥
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवा सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विज ॥२८॥

जो कुछ यजुर्वेद मे शिष्ट था उससे इसके पश्चात् यज्ञ को योजित किया था । यजुर्वेद मे वह युञ्जान थे यही शास्त्र का विशेष रूप से निश्चय है ॥२२॥ पदों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम है । इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ॥२३॥ पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार से विभाजित किया था । दो करके प्रभु ने सयुग मे शिष्यों के लिये दे दिया था ॥२४॥ एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को बाष्कलि के लिये दिया । द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा मे अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन कर दिया था ॥२५॥ प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढाया और दूसरी शाखा को अग्निमाठर को पढाया था । तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ॥२६॥ द्विजो मे परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढा दिया

मन मे ऐसा निश्चय करके उस जनो के स्वामी ने बुद्धि की अर्थात् विचार किया था ॥३६॥ सहस्र गौओ को लाकर और बहुत-सा सुवर्ण ग्राम रत्न दासो को लाकर यह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालो को शिरसे प्रणत हूँ ॥३७॥ जो यह सब धन लाया गया है आप लोगो मे परम श्रेष्ठ द्विज होगा हे उत्तम ब्राह्मणो ! विद्या के धन वाले को यह उपवीत किया जायगा ॥३८॥ उन श्रुतिक्षम मुनियो मे उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि से उसे ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वेद के ज्ञान के मद से उत्कट्ट वे सब अन्योन्य मे श्रद्धा करने लगे ॥३९॥ मन से गतचित्त वाले यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नही अथवा कोई अन्य बोले क्या विकल्प किया जाता है। इस प्रकार से धन के दोष से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ॥४ ॥ उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाह का पुत्र कवि महान् तेज वाला तपस्वी और ब्रह्म वित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग से समुत्पन्न हुये थे शिष्य से सुस्वर वाक्य बोले—ओ ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ ! आप इस धन को ग्रहण करिये ॥४२॥

नयस्व च गृह वत्स ममैतत्राग संशय ।
सववेदेष्वहं वक्ता नान्य कश्चित्तु मत्सम ।
यो वा न प्रीयते विप्रा स मे ब्रूयत माऽचिरम् ॥४३॥
ततो ब्रह्माणव क्षुब्ध समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच तत स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ॥४४॥
क्रोध माकापु विद्वांसो भवन्त सत्यवादिन ।
वन्महे यथायुक्त जिज्ञासन्त परस्परम् ॥४५॥
ततोऽभ्युपागमस्तेषा वादा जग्मुरनेकश ।
सहस्रधा शुभैरर्थ सूक्ष्मदशनसम्भवै ॥४६॥
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानरलङ्कृता ।
शापोत्तमगुणयुक्ता नयीधपरिवर्जना ।
वादा समभवन्स्तत्र धनहेतोमहात्मनाम् ॥४७॥

ऋषयस्त्वेकत सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकत ।
सर्वोमिति होवाच वादकर्त्तारमञ्जसा ॥४६॥

हे वत्स ! इसे गृह मे ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमे तनिक-भी सशय नही है । समस्त वेदो मे मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नहीं है । जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नही करता हो वह मेरे साथ शीघ्रता करे । इसके पश्चात् सम्प्लव के समय मे समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणो का सागर क्षुब्ध हो उठा था । इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ॥४३॥४४॥ आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए । परस्पर मे जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ॥४५॥ इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रो प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थो के द्वारा अनेको वाद हुए ॥४६॥ लोक मे तथा वेद मे विद्या स्थानो से विभूषित—शापोत्तम गुणो से युक्त—नृपो के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओ के वहाँ अनेक वाद हुये थे ॥४७॥ एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे । वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमे से उनका उत्तर नही बोला था ॥४८॥ तब उस ब्रह्म की राशि महान् द्युति वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियो को विजित करके वाद के कर्त्ता शाकल्य से अचानक बोले ॥४९॥

शाकल्य वद वक्तव्य किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वत्व जडमानेन वाताध्मातो यथा दृति ॥५०॥
एव स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचन ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्य त पुरुष मुनिसन्निधौ ॥५१॥
त्वमस्मास्तृणवत्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधन महासार स्वयग्राह जिघृक्षसि ॥५२॥
शाकल्येनैवमुक्त स्यादाज्ञवल्क्य समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठाना बल विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम् ॥५३॥

प्रोवाच संहितास्तिस्र शाकपूणरथीतर ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थ द्विजसत्तम ॥६५
तस्य शिष्यास्तु चत्वार केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजा ॥६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्तापरा प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषित पवने पुरे ।
तत्र गच्छत यूय व सर्व पाप प्रणश्यति ॥६८
द्वादशार्क नमस्कृत्य तथा च वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुत्र विशेषत ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्या तरिष्यथ ॥६९॥
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुर समुपागता ।
स्नान कृत विधानेन देवाना दर्शन कृतम् ॥७०॥

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुद्गल—गोलक—खालीय—मत्स्य—और शशिरेय पाँचवें थे ॥६४॥ शाकपूण रथीतर ने तीन संहिता बोली और द्विज श्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ॥६५॥ उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव—दालकि—धर्म शर्मा—देव शर्मा थे । ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ॥६६॥ शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे । इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप मे गए ॥६७॥ ब्रह्माजी ने उनको चित्त से ही जानकर पवनपुर मे प्रेषित किया । उन्होने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप तुरन्त नष्ट हो जायगा ॥६८॥ द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारो कुण्डो मे स्नान करके आप सब इस ब्रह्म हत्या से तर जाओगे ॥६९॥ वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर मे आगये । वहाँ उन्होने विधानपूर्वक स्नान किया और देवो का दर्शन कर के पाप मुक्त हो गए ॥७०॥

॥ इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ॥